महाका

अमृतलाल ना

महाका
अमृतलाल ना
महाका
अमृतलाल ना

ग्रन्थ-संख्या—१२६
प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भण्डार
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

2004

प्रथम संस्करण
सं० २००४
मूल्य ३)

समर्पण

बंग दुर्भिक्ष की कहानी आज पुरानी पड़ गई है। साम्प्रदायिक समस्या ही आज की जलती हुई समस्या है। लेकिन मेरे मत से इस समस्या की पृष्ठभूमि में भी पेट की समस्या ही प्रमुख है। राजनीतिक दाँव पेंचों के बल पर यह समस्या जनमन की ... विक अशान्ति, और उससे उत्पन्न घृणा को भूटे रूप से भड़का रही है। समस्या अन्न की है, कपड़े की है, घर की है, चैन-आराम की है—जीने की है। व्यक्तिगत सत्ता का मोह, सामूहिक रूप से मानव की इस समस्या पर परदा डाल रहा है। परन्तु समाज की समस्या से व्यक्ति क्या किसी भी रूप में अछूता बच सकता है? यह अशान्ति व्यक्ति के गलत स्वार्थ की कहानी कहती है। एटम की क्रान्तिकारी खोज मनुष्य के वेद को अन्त से अनन्त बनाती है; उसके विकास की निरन्तर गतिशीलता की गवाह है। जीवनी-तत्व के अणु को अपनी इच्छा के अनुसार संचालित करने की ईश्वरीय शक्ति आज मनुष्य को प्राप्त है, परन्तु उसका उपयोग वह करता है बम बनाने के लिये। जीवनी-शक्ति से जीवन का नाश करने का हठ—ये कैसा मोह है? बुद्धि का यह विरोधाभास क्यों? एटम के युग में—व्यक्ति के स्वार्थ और समाज की आर्थिक गुलामी के युग में—यह भयंकर खून-खराबी, यह अमानुषिकता, भूख का यह ताण्डव, महामारी, दुश्चिन्तायें, यह घृणा, यह निराशा—यह प्रलय ही सर्वथा शोभन और सम्भव है। यदि कुछ अशोभन है, असम्भव है, तो विवेक, सद्‌बुद्धि, सद्‌ज्ञान, सदाचार, ऐक्य और प्रेम।

यह 'अशोभन-असम्भव' ही 'महाकाल' के रूप में आपके कर-कमलों में साग्रह समर्पित है।

सेरा ह्विला।
शिवाजी पार्क रोड नं० २, बंबई २८
गांधी जयंती, १९४७

—अमृतलाल नागर

आमुख

पर्त पर शत पर्त तम के, गर्त जीवन का अगम !
डोर लघु करुणा-किरण की ! मुक्ति भी कितनी सुगम !

स्वार्थ की छैनी लिए, लेकर हथौड़ा लोभ का,
मनुज ने निज पूर्ण पावन मूर्ति को खंडित किया !
सत्य से आंखें चुरा, मुंह फेर कर जब न्याय से,
'कुछ न दूं, पाऊं सभी कुछ !'--यह नियम अपना लिया ;
खो गया गत स्वर्ण युग चैतन्य के इतिहास का,
प्रेम को सहयोग को, कर्त्तव्य को ठुकरा दिया !
खंड मानव को मिला पर दंड भी कितना विषम !
पर्त पर शत पर्त तम के, गर्त जीवन का अगम !

शुद्ध समिधा के सदृश निर्दोष अगनित जन मिटे,
सर्वभक्षी होम ने निज अंश जब बलि का लिया !
हिल गई सत्ता मनुज की नींव मानव जाति की,
मिट गए संस्कार, प्रज्ञा को अगति ने ढँक दिया !
पर मनुज को इस अगति के इस विकृति के गर्भ से
विगत युग की गोद में फिर जन्म नवयुग ने लिया !
यह प्रसादी है प्रलय की ! बन गया करुणा अहम् !
डोर लघु करुणा-किरण की ! मुक्ति भी कितनी सुगम !

—नरेन्द्र

कथा-प्रवेश

बर्मा पर जापानियों का क़ब्ज़ा हो गया । हिन्दुस्तान पर महायुद्ध की परछाईं पड़ने लगी ।

हर शख्स के दिल से ब्रिटिश सरकार का विश्वास उठ गया । 'कुछ होने वाला है,—कुछ होगा !'—हर एक के दिल में यही डर समा गया ।

यथाशक्ति लोगों ने चावल जमा करना शुरू किया । रईसों ने बरसों के खाने का इन्तज़ाम कर लिया । मध्यवर्गीय नौकरपेशा गृहस्थों ने अपनी शक्ति के अनुसार दो-तीन महीने से लगा कर ६ महीने तक की ख़ूराक जमा कर ली । खेतिहर मजदूर भूख से लड़ने लगा ।

व्यापारियों ने लोगों को कम चावल देना शुरू किया।

हिन्दू और मुसलमान व्यापारी और धनिकवर्ग, अपनी-अपनी कौमों को थोड़ा-बहुत चावल देते रहे।

खेतिहर मजदूर भीख मांगने पर मजबूर हुआ।

शुरू में भीख दे देते थे; फिर अपनी ही कमी का रोना रोने लगे। दया-दान की भावना मरने लगी।

भूख ने मेहनत-मजदूरी करने वाले ईमानदार इन्सानों को खूंख्वार लुटेरा बना दिया।

भूख ने सतियों को वेश्या बनने पर मजबूर किया।

मौत का डर बढ़ने लगा।

मौत का डर आदमियों को परेशान करने लगा, पागल बनाने लगा।

और एक दिन चिर आशंकित, चिर प्रत्याशित मृत्यु, भूख को दूर करने के समस्त साधनों के रहते हुए भी, भूखे मानव को अपना आहार बनाने लगी।

तब आशावादी मानव कठोर होकर मृत्यु से लड़ने लगा। उपन्यास का प्रारम्भ यहीं से होता है।

१

मोहनपुर ऐंग्लो-बंगाली स्कूल के बरामदे में पैर रखते ही हेडमास्टर पांचू गोपाल मुखर्जी को ध्यान हो आया कि हीरू बाग्दी का लड़का गणेश लगातार दस दिन तक मलेरिया ग्रस्त शरीर की सारी शक्ति के साथ भूख से लड़ कर, आज सबेरे चल बसा।

पांचू ने अपने दिल पर एक गहरा धक्का महसूस किया। उसे लगा जैसे कि आज उसका स्कूल मर गया। चार दिनों के अटूट उपवास और काले भविष्य की चिन्ता भी जो आघात उसे न पहुँचा सकी थी, वह सहसा गणेश के मरने की ख़बर से उसे पहुँचा था। लगा, जैसे मौत बहुत निकट से उसे अपना परिचय देने के लिए आई हो।

अकाल की न हल होने वाली समस्या, 'क्या होगा' प्रश्न के साथ, सारी मानसिक और शारीरिक शक्ति छीन कर, घोर अंधकार के 'कल' में जब उसे फेंक देती थी, तब वह मोहवश अपने आने वाले कल को ठीक-ठीक देख न पाता था। लेकिन आज गणेश की मृत्यु ने सहसा उसकी और उसके परिवार के आने वाले 'कल' की तस्वीर उसके सामने लाकर खड़ी कर दी थी।

आंखों के आगे अँधेरा छा गया। सहसा पांचू को किसी सहारे की जरूरत महसूस हुई। उसका हाथ अपने-आप खम्भे की तरफ़ बढ़ गया और उसके सहारे, गिरते शरीर को टेक देकर, उसने अपने को सम्हाल लिया।

खम्भे के सहारे टिका हुआ वह गणेश की, सिर्फ़ गणेश की, बात सोचने लगा। गणेश बाग्दी उसका पहला शिष्य था।

पांचू की आंखों के सामने वे सब दिन, एक झलक दिखा कर, तेजी से आपस में घुल-मिल गए। फिर एक-एक बात उसे याद आने लगी। इन्टरमीजिएट पास करने के बाद एक ओर सरकारी वज़ीफ़ा लेकर आगे

पढ़ने का प्रलोभन और दूसरी ओर मा का पत्र । जीवन में पहली बार उसे अपना कर्तव्य सोचने के लिए गम्भीर होना पड़ा था ।

पांचू अपनी वर्तमान परिस्थितियों को, बीते दिनों की बातें सोच कर, बहलाने लगा—"अगर मैं बराबर पढ़ता ही जाता ! कितना अच्छा कैरियर था मेरा । प्रिंसिपल जॉर्डन मुझे शर्तिया स्कॉलरशिप दिला देते..... लेकिन उससे क्या आज की परिस्थिति में कुछ सुधार हो जाता ?"

पांचू के विचारों को सहसा एक झटका लगा । अपने कल्पित स्वर्ग को ठोकर से तीन-तेरह करने के लिए उसने फिर सोचा—"मैं होता इग्लैंड में, और यहां घर-भर सब खतम हो चुका होता । आई० सी० एस० होकर ही मुझे कौन सुख मिलता ।"

पांचू को अपना आई० सी० एस० न होना अच्छा लगा । इतने 'सिविल सर्वेन्ट' होकर आए, और अभागे देश के सर पर डॉसन के बूट झाड़ कर चले गए । भारतीय नागरिकों के नौकर भारतीय नागरिकों के हुक्काम बन कर अपनी असलियत और अपना कर्तव्य भूल गए ।

पांचू सोचने लगा—"वह भी इसी तरह का एक नागरिक नौकर होता । एस० डी० ओ० होकर वह भी शायद इसी तरह भुखमरों का निरीक्षण करने आता । दयाल जमींदार का आतिथ्य ग्रहण कर स्कॉच ह्विस्की के जोर पर नवाबी प्लेटें हजम करता । मोनाई बनिया इसी तरह उसके अहलकार के सामने खीसें निपोर-निपोर कर अहलकार की जेब को फुला देता । और थोड़ी ही देर बाद अहलकार की जेब की अधिकांश सूजन खुद उसकी—एस० डी० ओ० पांचू गोपाल मुखर्जी आई० सी० एस० की—जेब को उड़नी बीमारी की तरह छू जाती ।"

पांचू को अपने गांव में एस० डी० ओ० की 'विज़िट' याद आने लगी । दयाल जमींदार के यहां जिस तरह और जो कुछ उसने देखा था, एस० डी० ओ० के रूप में उसी तरह अपने लिए भी वह उसकी कल्पना करने लगा ।

सहसा पांचू का मन घृणा से भर उठा। ध्यान दूसरी तरफ़ करने के लिए उसने स्कूल के बरामदे के सामने फैले हुए मोहनपुर गांव की तरफ़ से अपनी खोई हुई आंखें फिरा लीं, खम्भे का सहारा धीरे-धीरे हाथ हटा कर छोड़ा और क्लास-रूम की तरफ़ चला। दीवाल पर स्कूल में लगाए जाने के लिए भेजे गए सरकारी पोस्टर चिपके थे। क्लास के दरवाजे के पास ही पहला पोस्टर था—"अन्न की पैदावार बढ़ाओ।"

घृणा की भावना का एक झोंका उसे फिर लगा। झुंझलाहट में उसके मुंह से अपने आप ही निकल पड़ा—"किसके लिए?"—

फिर उसके हाथ ने झटक कर पोस्टर को चीर डाला।

पांचू ने जैसे बदला ले लिया हो। उसकी उत्तेजना कम हुई। तभी उसके मन में एक आशंका भी उठ खड़ी हुई—"किसी ने उसे पोस्टर फाड़ते कहीं देख न लिया हो!"

पांचू ने झटपट मुड़ कर सामने की ओर देखा। आसपास में कोई नहीं था। दूर, मोनाई बनिए की दूकान पर, जीवित नर-कंकालों की भीड़ हो-हुल्लड़ मचा रही थी। शायद किसी की निगाह उस पर नहीं पड़ी।

पांचू ने एक निश्वास छोड़ी और कमरे का ताला खोलने लगा। वह सोच रहा था—"अगर किसी ने देख लिया हो ...नहीं-नहीं ......मान लो, अगर कोई देख लेता? मोनाई की दूकान पर पुलीसमैन तो खड़ा ही है। अगर उसकी नजर पड़ गई हो। तब तो बड़ी आफ़त होगी। वह आएगा, हाथ पसारेगा, नहीं तो फिर थाने में रिपोर्ट! दूंगा कहां से साले को? देने को ही होता तो आज चार दिन से घर में ये एकादशी न होती। पर वह क्या समझे? गांव में तो सब यही समझते हैं कि पांचू मास्टर ने न जाने कहां-कहां की जमा गाड़ कर रख ली है।"

पांचू ने मुड़ कर फिर देखा, कहीं कोई आ तो नहीं रहा है। फिर झटपट क्लास-रूम में घुस गया, जैसे वह सुरक्षित जगह में पहुंच जाना चाहता हो।

कमरा स्तब्ध। डेस्कों और बेञ्चों की लम्बी-लम्बी चार कतारें; डेस्कों पर स्याही के तमाम दाग़ और गर्द का पर्त; कुर्सी-मेज़; दीवालों पर टंगे हुए बंगाल, हिन्दुस्तान और योरप के तीन नक्शे; कोने में छोटी-सी मेज़ पर रखा हुआ ग्लोब; ब्लैकबोर्ड पर लिखी हुई अंग्रेज़ी की एक कविता।

पांचू का ध्यान उधर गया। बोर्ड पर भी धूल जम रही थी। आज हफ्ते भर से स्कूल का चपरासी नहीं आया था। जब से वह गांव छोड़ कर गया है तब से किसी ने स्कूल की सफ़ाई नहीं की, उसने भी नहीं। एक दिन था जब वह हर शनिवार की शाम को छुट्टी से पहले लड़कों के साथ ख़ुद सारे स्कूल की सफ़ाई करता था।

पांचू के होठों पर एक फीकी-सी हँसी की रेखा खिंच गई। उन दिनों की चहल-पहल, वह जोश, उसका और उसके स्कूल का वह ऐश्वर्य.......

मीठे स्वप्न-सी इस तेज़ याद को पांचू का चार दिन का भूखा शरीर और चिंताक्षत मन सह न सका। बड़ी मुश्किल से अपने शरीर को सम्हाल कर कुर्सी पर अपने आपको जैसे छोड़ कर वह बैठ गया। दोनों बाहें मेज़ पर टिका कर उसने सिर झुका लिया।

"तो क्या स्कूल बन्द हो जायगा ?"

यह प्रश्न इतना साफ़-साफ़ और कुछ इस तरह स्पष्ट होकर पांचू के मन में आज उठ आया था, मानो पहले इस प्रश्न से उसका कभी वास्ता ही नहीं पड़ा हो। असल बात यह थी कि अब से पहले इस प्रश्न के उठने की सम्भावना होने पर पांचू अपने मन को बहलाने में सफल हो जाता था; लेकिन आज गणेश की मृत्यु ने उसकी आंखों के सामने से भुलावे का पर्दा हटा दिया था।

"तो फिर.........?"

यह एक ऐसा प्रश्न था जो स्कूल बन्द हो जाने की कल्पना के बाद पांचू के मन में फांस की तरह चुभता था और अँधेरे में भूत की तरह उसकी सारी शक्तियों को स्तम्भित कर देता था।

ग्यारह आदमियों के परिवार का यह स्कूल ही तो आसरा था। तुलसी इस साल पार लगती। मां के सिर से चिन्ता का बोझ उतर जाता। लेकिन जाने कहां से आ गया यह अकाल। क्या हो गया, कुछ समझ में नहीं आता--"दुनिया जायगी किधर? क्या यह अकाल कभी खत्म न होगा? क्या यही प्रलय है ....?"

पांचू के दिमाग़ को प्रलय के घनघोर बादलों ने ढँक लिया। उसकी बन्द आंखों के आगे घना अँधेरा-सा छा गया। उसे लगा जैसे उस घने अँधेरे में वह कहीं बहुत ऊँचे पर से नीचे की तरफ़, तेज़ी के साथ, खींच कर ले जाया जा रहा हो।

पांचू के लिए यह एक नया अनुभव था--"क्या मैं मर रहा हूँ? लेकिन मरूंगा किस तरह? गणेश को भूख के साथ-साथ उसका इतना पुराना मलेरिया भी तो था। मैं तो ख़ाली भूखा ही हूँ--और मा-वां सब लोग भी बस भूखे ही हैं। फिर चार दिन की भूख भी कोई भूख है? हिन्दू का घर, हमारे यहां चातुर्मास का उपवास होता है। और वैसे तो आज शाम तक चावल मिल ही जायगा। कुछ नहीं, डर की कोई बात नहीं है।"

एक बार अपनी सारी शक्तियों को बटोर कर पांचू ने मेज़ पर से अपना सिर उठाया। फिर उसी जोश में कुर्सी से उठ कर क्लास-रूम में टहलने लगा। दो चक्कर पूरे किये, तीसरा चक्कर लगाते ही एक डेस्क पर हाथ टेक कर खड़ा हो गया।

अँधेरे में नीचे की तरफ़ खिचते चले जाने के कल्पनामिश्रित अनुभव ने पांचू के मन को जैसे कील दिया था। मृत्यु के समान उस स्तब्धता के बंधन से अपने को मुक्त करने के लिए ही जैसे उसने उठ कर टहलना शुरू कर दिया था। वह जैसे यह प्रकट करना चाहता था कि उसमें अभी शक्ति है--यह देखो, वह टहल रहा है। लेकिन दो चक्कर लगाने के बाद ही उसे चक्कर-सा आने लगा। फिर तुरन्त ही उसने अपने को सम्हाल लिया--"नहीं-

नहीं, मुझे चक्कर नहीं आ रहा है, यों ही खड़ा हो गया हूं। छिः, छिः, कितनी गर्द जम गई है, देखो तो।"

पांचू ने अपनी जेब से रूमाल निकाल, बेंच पर बैठ, धीरे-धीरे डेस्क साफ़ करना शुरू कर दिया—"जब ये डेस्कें बन कर आई थीं, कितनी अच्छी लगती थीं। लेकिन अब ये स्याही के दाग़—अरे, ये तो लग ही जाते हैं। फिर लड़के जो ठहरे। लेकिन गणेश उन सब में......... अच्छा-अच्छा होगा; बचपन में सब यों ही लापरवाह होते हैं। हम लोग नहीं थे क्या? लेकिन मुझे अपनी हर एक चीज का बड़ा ख़याल रहता था। यह देखो, ताला तक नहीं लगा के जाते, बेवकूफ़!"

पांचू ने दराज खोली। देखा, दराज में एक स्लेट रक्खी हुई थी। उस पर एक पाउण्ड-शिलिंग-पेन्स का जोड़ किया हुआ था। आदत ने पांचू को काम दिया। उसने हिसाब जांचा, हर बार 'हासिल' में दो और जुड़े हुए। पांचू की मास्टर-वृत्ति उभरी—"बेईमान......!"

पांचू ने स्लेट फेंक-सी दी। अगर कहीं स्लेट वाला सामने होता तो उसके कानों की रगें इस वक्त फड़क रही होतीं।

पांचू की नजर फिर दराज की तरफ़ गई। उसने देखा, एक काग़ज पर कैंची की मदद से आदमी से मिलती-जुलती और बनमानुसों से जुदा एक नई क़िस्म की नस्ल ईजाद की गई है। हाथ में उठा कर देखा तो दूसरी तरफ़ मोटी और महीन क़लमों तथा लाल-नीली पेन्सिल से, आदिम युग के चित्रकार की भांति, अपनी कला से पूर्ण संतुष्ट किसी नन्हे चित्रकार ने अपने तथा साथियों के मनोरंजन के लिए एक तस्वीर बना रखी थी। सब से ऊपर सिर का एक छोटा गोला, उसमें कान कटे हुए, चोटी फ़रमायशी तौर पर टोपी से बाहर, मगर सिर के उस कटे हुए गोले के अन्दर ही, इसके अलावा दो आंखें—उन पर चश्मा मय कमानियों के, नाक की जगह पर एक लम्बी लकीर और उसके नीचे साढ़े तीन हाथ की लम्बी मूंछे, उसी गोले के अन्दर समाई हुई।

इस छोटे गोले को एक बहुत बड़े गोले से मिलाने के लिए गले से बाबा आदम के पुल का काम लिया गया है। मालूम पड़ता है, कैंची से गला मन मुताबिक कट न सका, इसलिए बाप के ब्लेड से फ़िनिशिंग टच दिया गया है। बड़े गोले में से दो मुसल्लम हाथ और दो पैर निकालने में किस मशक्कत से काम किया गया है, इसकी गवाही कैंची और कटाई का रुख देती है। पैरों के नीचे जमीन है, और उस पर अंगरेजी अक्षरों में लिखा हुआ है--"दिस इज दि कानाई मास्टर=रट्टूबीर।"

पांचू देखते ही हँस पड़ा--"लड़के भी कैसे शैतान होते हैं !"

मन बहल गया। शायद और कुछ हो, यह देखने के लिये दराज जरा बाहर खींची। अंग्रेज़ी किताब का फटा हुआ एक वर्क पांचू ने देखा—"लेसन नम्बर ट्वन्टीफ़ोर, हम्प्टो-डम्प्टी..........पढ़ते क्या हैं, कम्बख्त किताबों से कुश्ती लड़ते हैं !"

पांचू ने उसी हेडमास्टराना तिनतिनाहट, और बदले हुए तेवरों से पन्ने के दूसरी तरफ़ देखा। कोने पर दो जुदा-जुदा लिखावटों में कुछ लिखा हुआ था। पहले बंगला में लिखा था 'खुट्टो'; और उसके नीचे अंगरेज़ी में दस्तख़ती-लिखावट से डो० आर०। दूसरी लिखावट, उसके ठीक नीचे ही, अंगरेज़ी में 'ग्रांटेड', बक़लमखुद तीन हुरूफ़, जी० के० सी०। नीचे ठाठ से लकीर मार कर तारीख़ तक लिख दी गई थी--२७-१-४३।

"जी० के० सी०, ये कौन बिगड़े दिल हैं ?" पांचू अपने शिष्यों में खुट्टी ग्रांट करने वाले जी० के० सी० महाशय को पहचानने की कोशिश करने लगा—"गोपाल, अच्छा ! अपना वो, काकी नम्बर आठ का भतीजा।"

पड़ोस के रिश्ते से रिटायर्ड सब-पोस्टमास्टर रामतनु बाबू पांचू के काका हुए। रामतनु बाबू की क़िस्मत को शुरू से ही जोरुओं का नाश्ता करने की आदत थी; लेकिन ये काकी नम्बर आठ, मालूम पड़ता है, काका को ही पचा कर मानेंगी। इस अकाल में भी अमर रहने की चुनौती देती हैं। गोपाल उनके भाई का लड़का है।

अप्रत्याशित रूप से पांचू का मनोरंजन हो रहा था। एक सेकंड के लिए वह भूख, परिवार, बंगाल, अकाल--सारे वर्तमान को ही भूल गया। शायद कुछ और मसाला मिले, पांचू के हाथ ने छोटी-सी दराज को खींच कर बाहर ही निकाल लिया।

"अरे, यह क्या ?" आश्चर्य की सीमा तक ही, इस नए अनुभव से, पांचू को पीड़ा भी हुई। आश्चर्य के भाव का पारा तो नीचे उतरने लगा, लेकिन पीड़ा उतनी ही बढ़ती गई--"ये दीमकें कहां से आ गईं ?"

एक क्षण के लिए वह जिस तरह अपने वर्तमान को भुला कर बच्चों के खिलवाड़ में बहल गया था, उसी तरह, दराज को दीमकों द्वारा खाया हुआ देख कर, प्रतिक्रिया के रूप में, उसका दर्द दूना हो गया। चारों ओर से असफलता और हीन भावना जैसे उसे घेर कर दबोचने के लिए चली आ रही हो।

दराज को उलट कर देखा, पीछे देखा, डेस्क के नीचे झुक कर देखा, कौतूहलवश पास की दूसरी डेस्कों के नीचे भी झांक कर देखा, दीमकें सारा काठ चाटे जा रही थीं। उनके गुच्छे के गुच्छे अपने आहार पर चिपके हुए थे।

पांचू को लगा जैसे दीमकों के कारण ही उसका स्कूल सदा के लिए बन्द हो जायगा। यों कभी न कभी तो अकाल खत्म होता ही--होगा ही। उसके बाद फिर यही डेस्कें काम में आतीं। लेकिन अब ?

पांचू के मन में आशा इस रूप में पहले कभी नहीं झांकी थी; फिर भी इस समय यह विचार उसे अपना पूर्व परिचित-सा लगा।

स्कूल का भविष्य आज कई दिन से पांचू के मस्तिष्क की बहुत बड़ी उलझन बना हुआ था। फ़रवरी के आख़िरी हफ़्ते से ही लड़के कम होने लगे थे।

एक सौ बाईस लड़कों में से धीरे-धीरे बीस गए, पच्चीस गए, पचास गए। आज १९ मार्च है और स्कूल में एक भी लड़का नहीं। यों तो आज हफ़्ता-भर

से कभी वह ख़ुद अकेला हो, और कभी-कभी मोनाई बनिये के चिरंजीव न्याड़ा, बगल में बस्ता दबाए, नमूदार हो जाते हैं। चपरासी खिद्दू हफ़्ता-भर से गांव छोड़ कर चला गया है, तब से तीन कमरे तो खुले ही नहीं। कानाई मास्टर जनवरी में ही गांव छोड़ कर पछांह चला गया था। बाद में सुना, सी० ओ० डी० में मिस्त्री हो गया है।

कानाई मास्टर है बड़ा अच्छा आदमी। जब सारा गांव स्कूल और पांचू के खिलाफ़ खड़ा हो गया था तब कानाई लुहार ही बढ़ कर उससे हाथ मिलाने आया था। पांचू की आंखों के सामने वह तस्वीर साफ़ खिंच गई, जब वह और कानाई दिबू पंडित की पाठशाला में एक साथ पढ़ते थे। कानाई दिबू पंडित की पाठशाला से आगे न पढ़ सका, मगर उतने में ही वह मज़े की बंगला लिख-पढ़ लेता था। बाद में कानाई का पढ़ना-लिखना छुड़ा कर बाप ने उसे अपनी 'विद्या' देकर मिस्त्री बना दिया—ऐसा कि दो-चार-पांच गांवों में कानाई मिस्त्री का डंका बजने लगा। अपने साथ के पढ़े-लिखों में पांचू कालेज में फ़र्स्ट आया था और सरकार से वज़ीफ़ा लेकर उसके विलायत जाने की भी कुछ अफ़वाह कानाई ने सुनी थी।

पांचू जब से गांव आया है, कानाई उससे मिलता तो इस तरह मानो पांचू का सहपाठी होने के नाते उसे भी आत्मगौरव का बोध हो रहा हो। यह बात दूसरी है कि कानाई उससे मिलता कम ही था। दिन-भर अपने काम में फंसा रहता था।

फ़ालतू वक्त काटने के लिए कानाई साप्ताहिक 'देश' का ग्राहक बन गया था, सो हफ़्ते-भर में एक-एक विज्ञापन तक घोट के पी जाता था। जब से 'देश' उसके पास आने लगा, तब से किसी अंक, किसी भी पेज, कविता-कहानी, लेख, नाटक-फाटक से लेकर विज्ञापन तक, किसी विषय में कानाई मास्टर को ज़रा कोई छेड़ भर दे और फिर देखे कि खट से मशीन चालू हो जाती है।

पांचू ने एक बार उसका रिकार्ड स्थापित करवाया था। 'आनन्द मठ' पूरा का पूरा रट कर सुनाने के लिए उसने कानाई मास्टर को चैलेञ्ज दिया। उस वक्त

तो वह कुछ बोला नहीं, किताब लेकर चला गया । चार दिन बाद आया, किताब सामने पटक दी और जनाब ने जो शुरू किया तो पहले पेज के कॉमा-कोलन-फुलस्टॉप से लगा कर प्रेस की भूलें तक ज्यों-की-त्यों फुलझड़ी की तरह ज़बान से वनावन छूटने लगीं । तीन घंटे में सारी किताब खतम—घाते में पुस्तक के अन्त में छपी हुई प्रकाशक के अन्य प्रकाशनों की सूची भी, कुल तारीफ़ों के साथ, सुना डाली, सजिल्द-अजिल्द के दाम तक । तब पानी पिया ।

कानाई मिस्त्री की यह सनक दूर-दूर तक कहावत बन गई थी। पांचू ने जब स्कूल शुरू किया तो सारा गांव खिलाफ़ । इधर स्कूल भी बराबर चालू रखना, और बीच-बीच में प्रिंसिपल जॉर्डन से मदद और सलाह मांगने के लिए शहर भी जाना । बड़ी मुसीबत हो गई थी । घर में हिम्मत बंधाने वाली एक अकेली मा थी, जब कहे तो यही—"पांचू घबराना मत बेटा, मुसीबत में ही तो नारायण परीक्षा लेते हैं । उन्हें जब उबारना होता है, तो आप आते हैं ।"

एक दिन कानाई मिस्त्री आया । आते ही बड़े रोब के साथ कहने लगा—"तुम्हारे साहस को देख कर मुझे तुम पर श्रद्धा हो गई है । तुम हमारे गांव के नेपोलियन बोनापार्ट हो !"

फिर कुछ सोच कर कानाई बिलकुल नज़दीक आ गया और धीरे-धीरे कहने लगा—"मेरे पास कोई जमा तो है नहीं भाई । हां, जो कमाई है उस हैसियत से जो कहो तुम्हारे स्कूल की सेवा करूं ।"

पांचू को उस समय पैसे से अधिक सहयोगी की चाह थी । कानाई छाती भरकर बोला—"जहां तक मैं पढ़ा हूं, सब लड़कों को पढ़ा दूंगा । तुम बेफिकर रहो । शहर जा के स्कूल के लिए मदद मांगो। यहां मैं सम्हाल लूंगा । बाकी एक बार ऐसा स्कूल बनाओ मास्टर, कि लाट साहब को भी यहां आना पड़े । तब इन गांव वालों को मालूम होगा कि विद्या पढ़ने में कोई जात छोटी-बड़ी नहीं है ।"

यह कहके उसने पांचू के कंधे पर हाथ से एक थपकी दी और बस, बाबू राइट-अबाउट टर्न ! पांचू को एक सेकंड लगा जैसे मा के नारायण ही विमाग

से निकल कर कानाई के रूप में सामने दिखाई दिए हों। चित्त की सिसकती हुई अवस्था में उसे कानाई का यह अयाचित, अप्रत्याशित सहारा मिला था।

प्रसन्नता-मिश्रित आश्चर्य से स्तब्ध पांचू अभी कानाई के बारे में सोच ही रहा था कि कानाई फिर से कमरे में लौट कर बोला—"उस वक्त बोलने में मुझसे कुछ भूल हो गई थी, पांचू बाबू। मैंने तुम्हें भूल से गांव का नेपो-लियन बोनापार्ट कह दिया। दरअसल मैं तुम्हें शेक्सपियर कहना चाहता था। तुम भी शेक्सपियर से कम विद्वान नहीं हो, पांचू बाबू! उसने 'पोट्री' लिख कर लोगों को पढ़ाया और तुम स्कूल खोल कर पढ़ाते हो।"

फिर जरा एक सेकंड निश्चय करके बोला—"बस, यही ठीक है। तुम शेक्सपियर हो, नेपोलियन बोनापार्ट तो लड़ता था।"

"हः हः हः!"

जोर-जोर से हंसने की अपनी ही आवाज़ को सुन कर पांचू को होश आया। दीमकों-भरी दराज़ सामने आई। अकाल, इस अकाल ने ही कानाई मास्टर को छुड़ाया। गोविन्द मास्टर भी मार्च के पहले हफ्ते में चले गए—"बारह रुपए में अब पोसाता नहीं पांचू बाबू! कोई दयाल जमींदार से पूछे, सांस के बिना भी आदमी जी सकता है जो बैल खोल कर ले गए। इससे तो भीख मांग कर जीना भला। चार पेटों की आग से तो बचा रहूँगा।"

चले गए, गोविन्द मास्टर भी चले गए—सब चले गए—गणेश भी चला गया। ये स्कूल भी आज बन्द हो जायगा। इसे बन्द करना ही पड़ेगा। अब तो यहां भी जी नहीं लगता। फिर?

इस 'फिर' की खोज में पांचू ने एक बार इधर-उधर, अपने चारों ओर, खोई हुई-सी आंखों से देखा।

जी न लगने की समस्या पांचू के दिमाग़ में घुन बन कर समा गई थी। घर में जी नहीं लगता। गांव जैसे काटने को दौड़ता है। कहां जाय? स्कूल में एक लड़का न आने पर भी पांचू नियमित रूप से रोज़ स्कूल आता है, दिन-भर बैठा रहता है और आई-गई, नई-पुरानी बातों से अपना जी बहलाया करता।

है। लेकिन आज गणेश की मृत्यु ने स्कूल की बिल्डिंग से उसका मन एकदम उचाट कर दिया है, किसी तरह भी मन नहीं लगता। अब वह अपना जी कैसे बहलाए—कहां जाय ?

पांचू का मन इस वक्त चिड़चिड़ा हो रहा था।

बाहर निकाल कर डॅस्क पर रखी हुई दीमकों-भरी दराज से पांचू के हाथ अपने आप ही खेलने लगे। इससे उसका ध्यान बंटा। उसने अपने हाथों को उन दीमकों वाली दराज पर महसूस किया। उसने चौंक कर फ़ौरन अपने हाथ हटा लिये। उसे अनायास ही ऐसा महसूस होने लगा जैसे दीमकों वाली दराज पर इतनी देर तक हाथ रखकर उसने कोई बहुत बड़ी ग़लती की है।

"दीमकों की यह दराज ! मतलब यह कि दीमकों की फौज की फौज डटी है। वह यहां से नहीं हटेगी। और साहब, क्यों हटे ? लकड़ी, काग़ज़ वगैरा उसकी खूराक है। और आदमी ने उस पर भी अपना अधिकार कर लिया लिया है—वह भी खाने के लिए नहीं ! ओफ़्फ़ोह, इतना अन्याय ! भला सोचिये, हजारों साल से, जब से आदमी ने लकड़ी पर अपना अधिकार कर उसका प्रयोग करना सीखा, दीमकों की जाति में अकाल पड़ रहा होगा। ओफ़्फ़ोह, इस तरह दीमकें हजारों साल से अकाल की यातनाएं भुगत रही हैं ? बेचारी !"

पांचू की आंखों में आंसू छलछला उठे। अकाल की सारी यातनाओं को सहते हुए, अपने को मजबूत बनाने के लिए, वह बार-बार आंसुओं का दमन करता आया है। लेकिन अगर आज हजारों साल से अकाल पीड़ित दीमक जाति की दुर्दशा की कल्पना से उसकी आंखों में आंसू दिखाई पड़ गए तो इसका यह अर्थ नहीं कि उसका धैर्य घुटने टेक रहा है। नहीं, उसका धैर्य भंग नहीं हो सकता। उसका धैर्य अडिग है।

और, उसने अपने अडिग धैर्य को और भी अधिक अडिग बनाने के लिए दीमकों के अकाल पर आंसू आजाने की बात के बारे में, अंगरेज़ी में, बढ़-चढ़ कर सोचना शुरू किया—

"जस्ट इमेजिन, देयर चिल्डरन--सन्स, डाटर्स, नेफ़्यूज़, नोस--अँ, नोस--यस, यस, नोस आलसो। नोस मस्ट बी देयर, शुड बी देयर, आट टू बी............"

पांचू ने एकाएक अपने में एक हलकी-सी चेतना का अनुभव किया। उसे लगा कि वह विचारों में बहक रहा है। पर यह चेतना उसे अच्छी न लगी। मन को भुलावा देकर बहलाने का और कोई साधन उसके पास नहीं था। अपने 'विचारों' को जबर्दस्ती न्यायपूर्वक सत्य सिद्ध करने के लिए जो कुछ भी वह सोच रहा है, वह सब निहायत ही समझदारी के साथ सोच रहा है। विधि का विधान ही ऐसा है। हमने दीमकों को भूखा मारा और दीमक हमें......"रिमेम्बर दिस आलवेज़ माई ब्वाय, देयर इज लिमिट फ़ॉर एवरीथिंग.........तुम अभी दीमकों पर चाहे जितना अत्याचार कर लो, लेकिन दीमकों को सहनशक्ति का भी अन्त होता है। तो? लेकिन वह तुम्हारा बिगाड़ ही क्या सकती है?"

पांचू ने एकदम से अपने दोनों हाथों को बहुत पास लाकर देखना शुरू किया। ग़ौर से देखा। इतनी देर से दीमकों वाली दराज़ पर हाथ रखे हुए थे, शायद एक-आध चढ़ गई हो।

"तब फिर? काटेगी? ज़रूर काटेगी। अरे, जब लकड़ी और कागज़ को काट सकती है तो आदमी के मांस में क्या रखा है--मुलायम गोश्त और पीने को आदमी का गर्म-गर्म ख़ून। अगर कहीं दीमकों की ज़बान को चस्का लग गया! फिर...........तो क्या होगा? अरे, अभी हफ़्ते में ६ मौतें हुई हैं, तब छः सौ, छः हज़ार, लाख, दस लाख, करोड़, दस करोड़, अरब, पद्म, शंख, महाशंख--इसके माने सब गिनती ख़त्म। तब तो बस प्रलय --एकदम प्रलय!"

पांचू अपने दिल को बेलगाम बहलाए जा रहा था--"दीमकों द्वारा पृथ्वी का अंत? ऐसा तो कहीं......"

तभी पट से ध्यान आया--"अरे, अपने बाल्मीकि! जस्ट इमेजिन, आदमी इतना बेहोश कि शरीर पर दीमक चढ़ने की खबर न हुई। नानसेन्स, दरअसल इसका अर्थ है कि इस बार आदमी पर दीमकों की विजय होगी—बल्मीकि-विजय। ठीक तो है, पहली प्रलय में मनु बचे और उनकी संतान—मानव, निकम्मी सिद्ध हुई। इस बार प्रलय के बाद बाल्मीकि की संतानों से नया ग्लोब बसेगा। बाल्मीकि के राम-राज्य की अमर कल्पना। प्रलय के बाद--हां, यह प्रलय तो है ही। दीमकों की--दीमक-प्रलय!"

पांचू एकाएक चौंक कर उठा। उसे अपने दिमाग़ की इस हालत पर बड़ी शर्म आने लगी। अब इतना भी अपने दिमाग़ पर अधिकार न रहा। उसे अपने दिमाग़ की कमजोरी दूर करने के लिए दवा खाने की ज़रूरत यकायक महसूस होने लगी। वह कौन सी दवा खाय? उसकी दराज में एस्प्रो की टिकिया है। जब सर्दियों में एक दिन सिर दुखा था, तब यहीं तो मंगा के खाई थी और बाकी यहीं दराज में रख दी थी। जरूर होगी।

पांचू कुछ सम्भला। लेकिन मेज की दराज में भी अगर कहीं दीमकें .....छि:, वाट नानसेन्स...............फिर बहका। बुरी बात। यू कान्ट अफ़ोर्ड टु डू दिस मिस्टर पी० मुखर्जी, तुम्हारे ऊपर इतनी बड़ी जिम्मेवारी है, सारे घर की जिम्मेदारी है।

"लेकिन कहां? मैं सतर्क तो हूं। मैंने अभी तक कोई गलत बात नहीं की। मैं बिलकुल ठीक हूं। तब फिर यह दवा किस लिए.........एस्प्रो की टिकिया................"

इस वक्त तक पांचू अपनी मेज के पास पहुंच कर कुर्सी पर बैठनेवाला था कि यह विचार आते ही वह एकदम गंभीर हो गया। उसके हाथ मेज पर टिक गए, और वह वैसे झुक कर खड़ा-खड़ा सोचने लगा—"खाऊं कि न खाऊं?"

पूरी चेतना के साथ, निष्पक्ष-भाव से, उसने अपने स्वास्थ्य की मन-ही-मन परीक्षा लेनी शुरू की--"कहीं दर्द है? हाथ-पैरों में, पेट मे, सिर में?"

बगैर जबान चलाए उसने पूरी चेतना के साथ अपने आप से सवाल-जवाब करना शुरू किया और महसूस किया कि एड़ी से लेकर चोटी तक रग-रग में, पोर-पोर में, दर्द समाया हुआ है। इसके बाद उसने महसूस किया कि उसकी आंखें जल रही हैं, और उसका बदन भी गर्म है। तब तो दवा जरूर ही खानी चाहिए। हां, सांस भी गर्म है।

पांचू ने अपने हाथ को नाक के पास ले जाकर सांस को महसूस किया--"इसके माने ये कि मुझे बुख़ार है, मलेरिया।"

मलेरिया का ख़याल आते ही उसे तुरंत ध्यान आया कि वह भूखा भी है। डर ने उसे फिर घेरना शुरू किया। उसे फिर से चक्कर आने लगा, मेज पर टिके हुए हाथ कांपने लगे, पैर एकदम सुन्न पड़ गए--उनमें जैसे दम न रहा हो।

अपना सारा मानसिक बल शरीर को देकर वह फिर सीधा तन कर खड़ा हो गया--"मैं बिलकुल ठीक हूँ। मुझे कोई बीमारी नहीं है। जरा भी बुख़ार नहीं है। ये सब मेरी ख़ामख़याली है। मैं बड़ा बेवकूफ़ हूँ जो यह सब ख़ुराफ़ात सोचता हूं। मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि आख़िर मैं यह सब सोचता ही क्यों हूं? नहीं नहीं, अब ऐसे बेहूदे विचार अपने मन में आने ही न दूंगा!"

अपने को जगा कर पांचू दिल को बहलाने के लिए फ़ौरन ही काम की सोचने लगा। उसने एक बार चारों तरफ़ नजर डाली--ऊँचे प्लेटफ़ार्म पर मेज और कुर्सी रखी थी। कुर्सी पर बैठे हुए पांचू की आंखें, अपनी दृष्टि के क्षेत्र को बहुत संकुचित कर, अपनी बाईं तरफ़ से दाहिनी ओर तक अर्धचन्द्राकार में क्रमशः प्लेटफ़ार्म के सहारे घूमने लगीं। आंखों को फ़ोकस करते हुए पहले फ़्रेम में उसने प्लेटफ़ार्म के नीचे सीमेन्ट-बालू के फ़र्श को जरा दूर तक देखा। सीमेन्ट के चौके जड़े हुए हैं, यह शुबहा दिखाने के लिए ही शायद इमारत बनाने वाले कारीगरों ने फ़र्श भर में यह चौकोर लकीरें काटी होंगी।

प्लेटफ़ार्म के चारों ओर अर्द्ध चन्द्राकार में अपनी आंखें घुमाते हुए, दृष्टि-सीमा के पहले फ्रेम में ही, मेज का कोना आ जाता था। गोलार्द्ध में यात्रा करती हुई आंखें मेज की सतह को छूती हुई उसके ऊपर से गुजरीं — तीन-चार डेस्कों के सामने दिखाई पड़ने वाले हिस्से पर से होती हुईं। पांचू सोचने लगा, समझो, क्लास में सब लड़के मौजूद हैं। जिस हद तक पांचू की आंखें, प्लेटफ़ार्म के आस-पास उस गोलार्द्ध में घूमी थीं, उस हद में सारा दर्जा लड़कों से भरा होने पर भी, वे उसके लिए अदृश्य ही रहते थे।

पांचू की गर्दन इन डेस्कों को देख घूमते-घूमते जरा थम गई। आंखों की पुतलियों को उसी सीमा के अंदर वापिस लौटा कर उसने आंखों से डेस्कों को महसूस किया और पुतलियां फिरने के साथ ही गर्दन फिर उसी सीमा में घूमती और क्रमशः आने वाले कुछ ज्यादह उजाले को देखती, प्लेटफ़ार्म के नीचे जरा दूर तक, सीमेन्ट-बालू के चौके कटे हुए फ़र्श पर टिक गईं। सूर्य का प्रकाश दरवाज़े से कमरे में मद्धिम होकर आ रहा था। सीलन की हलकी-सी नमी लिए हुए सीमेन्ट-बालू के चौके कटे हुए फ़र्श पर वह मद्धिम रोशनी उसे बड़ी हलकी और शीतल मालूम हुई। उसने अपने आप में संतोष का बोध किया और इससे उसको आनन्द हुआ।

गोलार्द्ध में नज़र दौड़ाने की क्रिया के इस एक सेकंड में पांचू ने अपने-आप में एक तरह की उमंग का अनुभव किया। और उसी उमंग के सहारे उसने अपने को यह सोचने दिया कि तमाम बेंचों पर लड़के बैठे हैं। उसने उन सबों को कुछ काम दे रखा है—गाय पर लेख लिखने के लिए आज्ञा दी है और वह स्वयं मेज पर झुका हुआ—रजिस्टर पर —फ़ीस का हिसाब जोड़ रहा है।

उसने अपना फ़ाउन्टेनपेन कमीज की जेब से निकाल कर मेज़ पर रखा। फिर ताला खोल कर दराज बाहर खींची। चाक-स्टिकों का आधा भरा हुआ डिब्बा, ब्लेक-बोर्ड साफ़ करने के लिए 'डस्टर', 'काजल-काली' की एक दावात और पीछे की तरफ़ बंधे हुए काग़ज़ों का एक बंडल था।

"चाक चुराने का शौक लड़कों में कितना होता है। जिस दिन दराज ज़रा देर के लिए भी खुली रह गई कि चार-पांच चाकें गायब!"

पांचू अपने मन को गुदगुदाने लगा।—"मैं अभी ज़रा देर के लिए दराज खुली छोड़ कर बाहर चला जाऊँ....लेकिन लड़के कहां हैं?"

पांचू इस बार अपने को धोखा न दे सका—सहसा उसके मुंह से सच निकल ही पड़ा।

सूने क्लास-रूम को देखने के लिए, फांसी के तख्ते पर कदम रखे हुए शहीद की दृढ़ता के साथ, पांचू ने अपना सिर ऊँचा उठाया।

कमरा स्तब्ध। डेस्कों और बेंचों की लम्बी-लम्बी चार सूनी कतारें, डेस्कों पर स्याही के तमाम दाग़ और उन पर गर्द का पर्त। अन्दर आते ही सामने वाली डेस्क पर उसने ताला खोल कर रखा था। पीतल के उस बड़े ताले पर पांचू का ध्यान एक सेकंड के लिए अटका। ताला इस जगह कभी भी नहीं रखा जाता। दीवालों पर टँगे हुए बंगाल, हिन्दुस्तान और योरप के तीन नक्शे, कोने में छोटी-सी मेज पर रखा हुआ एक ग्लोब। ब्लैकबोर्ड पर अंग्रेज़ी की एक कविता और उस पर धूल जमी हुई। पांचू का दम घुटने लगा। तीव्र पीड़ा तीर की तरह सन-सनाती हुई उसके दिल में समा गई।

सूनापन, अपनी असमर्थता और निष्क्रियता का अनुभव कर उसका हृदय फटने सा लगा।

दराज खुली हुई थी। सामने ही चाक-स्टिकों से आधा भरा हुआ डिब्बा रखा था। आज इसका क्या उपयोग है? आज इसे चुराने वाला कौन है? आज उसके दर्जे में अगर लड़के बैठे होते तो वह कहता—"लो, यह सब लूट ले जाओ।"

काश कि अपने स्कूल का सब कुछ लुटा कर इन सूनी डेस्कों को एक बार भी लड़कों से भरी हुई अगर आज वह देख सकता!

अपनी असमर्थता पर उसे बड़ी जोर से झुंझलाहट आ गई। चॉक-स्टिकों से आधे भरे हुए डिब्बे पर छूटते ही उसको नजर गई और उसने फ़ौरन ही उसे उठा कर सामने की डॅस्कों पर उछाल दिया। चाकों के गिरने से डॅस्कों पर पचीसों हलकी 'ठक-ठक' की आवाजें, प्रायः सामूहिक रूप से, उसके कानों में गूंज उठीं। ढालुवां डॅस्कों से नीचे लुढ़कती हुईं चाकें, आपस में टकराती हुईं, ठक-ठक फ़र्श पर गिर कर टूट गईं। कुछ चाकें डॅस्कों पर ही पड़ी रहीं।

इस तरह मानो चाक-स्टिकों का अभिमान भंग कर, एक विजेता की दृष्टि से उनकी तरफ़ देखते हुए, दार्शनिक की मुद्रा में, पांचू ने सोचना शुरू किया—"हाय रे इनका दुर्भाग्य, आज ये चाकें इस तरह लुटी हुई पड़ी हैं।"

आज इनका कोई भी प्रेमी नहीं। वो खुशी से चमकती हुई शैतान आंखें, वो किलकारियां, सबसे ज़्यादा चाकें हथियाने के जोम में कुश्तम-कुश्ता, धौल-धप्पा।

लड़कों ओर चाकस्टिकों के रिश्ते की एक अधूरी-सी, भावनामय तस्वीर, उन सूनी बेंचों और डॅस्कों पर उसकी आंखों के सामने खिच गई।

उसका दिल भर आया।

चार दिन के भूखे शरीर ओर चिंताक्षत मन से दिल का यह भार सम्हल न सका।

स्वयं अपने लिए संवेदना प्रकट करने में भी आज वह असमर्थ था।

पांचू अपने से मान करने लगा। एक निहायत बारीक विद्युत्रेखा की तरह तड़पती हुई झुंझलाहट-सी उसने अपने सिर में महसूस की।

झुंझलाहट ने अजाने में ही पांचू के दिमाग़ को लखलखा सुंघा कर बेहोशी की दशा में उस पर अधिकार जमा लिया। शरीर ने मस्तिष्क

के प्रभुत्व को अस्वीकार कर मनमानी करना शुरू करदी। आंखों और चेहरे पर तमतमाहट आ गई। हाथ जरूरत से ज्यादा फुर्ती दिखाने लगे। डस्टर निकाल कर बाहर पटक दिया। काजल-काली की दावात फेंकने के लिए दाहिना हाथ झटके के साथ आगे बढ़ा, फिर एकाएक रुक कर धीरे से मेज पर वापस चला आया। दावात मेज पर रख दी।

अब क्या करे?

फ़ाउन्ट्रेनपेन पास रखा था। उसे याद आया परसों रात को घर में जॉर्डन साहब को चिट्ठी लिखते-लिखते ही स्याही ख़तम हो गई थी।

पांचू फ़ाउन्टेनपेन में स्याही भरने लगा। तभी उसे एकाएक सूझा —"मुझसे तो यह क़लम ही अच्छी। इसे अपनी ख़ूराक तो मिल गई!"

रोते-रोते सो जाने वाला बच्चा जैसे सपने में फिर से सिसकियां भरने लगे, पांचू ने अपने ख़ाली पेट में सुरसुराहट महसूस की। छाती से नीचे आने-जाने वाली सांस का दौरा उसे भारी-भारी-सा लगने लगा।

फिर उसका मन गिरा। फिर उसने अपने को सम्हाला—"यह क्या मि० पांचू गोपाल! अरे, जाओ भी, ज़रा-सी भूख भी नहीं बर्दाश्त होती तुमसे? औरों को देखो, सारा गांव, सारा बंगाल भूखा है।"

"सारा बंगाल!"—पांचू की आंखें सामने दीवाल पर लटके हुए बंगाल के नक्शे पर घूमने लगीं।

पिछले दिनों की बात है। पांच ही महीने तो हुए हैं। बारह रुपए मन के भाव से चावल बेच कर गांव का हर किसान कितना ख़ुश नज़र आता था। बारह रुपए मन चावल बिकेगा, कभी बाबा राज में भी ऐसा हुन नहीं बरसा। तीन-साढ़े तीन के भाव में बिका करता था। बारह रुपए मन के लोभ में लोग अन्धे हो गए। घरों का धान भी उठा-उठा कर बेच दिया। दो-तीन उपास करना या आधे-पेट रह कर जिन्दगी गुजार देना —इसकी आदत तो हमारे देश के हर किसान को जन्म से ही होती है। पेट की ओर से तो वह प्रायः उदासीन हो चुका है। लेकिन रुपया!

अरे, वह तो सपने की चीज़ है। लक्ष्मी का सुख भोगना तो सदा से ही बड़े आदमियों के भाग में रहा है। इस बार बड़े भाग्य से मा लक्ष्मी किसानों पर दया कर रही हैं--दुर्गा पूजा के अवसर पर!

हज़ार-हज़ार, आठ-आठ सौ की गठरियां बांध कर किसानों के पीले चेहरों पर लाली दौड़ गई। सुहागिनों की शिकायतें जागीं, सुनारों के भाग जागे। कपड़े-गहने, शौक़-सिंगार की चीज़ें--गांव के आठ-दस घरों में ग्रामोफ़ोन तक बजने लगे। लोग-बाग पक्के मकान बनवाने की सोचने लगे। बूढ़ों को तीरथ-बरत की उतावली पड़ने लगी। पैसे के अभाव में किसान जिन सुखद कल्पनाओं से अपना मन बहलाया करता था--अगर उसके पास पैसा होता तो वह यह करता, और वह करता--अब वह अपने जी के सारे हौसले निकाल लेगा। इस वक्त वह लाट साहब का भी बाप है। दयाल जमींदार और मोनाई अब उसके ऊपर धौंस नहीं गांठ सकते।

पैसे की गर्मी से किसान बौरा गया।

दयाल जमींदार और मोनाई की उधार-वसूली शुरू हुई। पैसे के जोश में, दुर्गापूजा के अवसर पर, किसान जैसे यह भूल ही गया था कि उसे कर्ज़ा भी पाटना पड़ेगा। पैसा अनेक मदों में खर्च हो चला था।

मोनाई की तरफ़ से, दयाल जमींदार की तरफ़ से, कचहरियों के सम्मन आने लगे। चार दिन की चांदनी दिखा कर सुहागिनों के तन पर चमकते हुए सोने और चांदी के गहने उतर गए। ग्रामोफ़ोन बजने बंद हो गए। पक्के मकान अब सुरग में बनेंगे। दस का माल दो में लुट गया। बचा-खुचा नाज, कपड़ा-लत्ता, चोर-डाकू लूट ले गए।

परजा मुंह देखती रह गई।

चावल का भाव अठारह रुपए मन!

चावल चौबीस रुपए मन!!

पैंतीस रुपए मन--चालीस रुपए मन!!!

यह क्या हो रहा है? क्या होगा?

कइयों ने फांसी लगा कर जानें दे दीं। पोखरों में आए दिन एकाध लाश उतराने लगी। लोग नौकरी की तलाश में गांव छोड़-छोड़ कर शहर भागे, इस लालच से कि शहर से कमा कर घर भेजेंगे। गांव-भर में इने-गिने जवान ही दिखाई पड़ने लगे।

माताएं अपने नन्हे-मुन्नों की भूख को दिलासा देने लगीं--"तेरे बाबा शहर से रुपया भेजेंगे, तब चावल खरीदेंगे। बिना पैसे लिए मोनाई भला क्यों देने लगा!"

बूढ़े मां-बाप डाकिये को घेर कर पूछते--"मेरे बेटे का मनीआर्डर लाए? उसने जरूर भेजा होगा। तुम लोग सब डाकखाने वाले मिल कर हमारा रुपया खा गये।"

मनीऑर्डर के आसरे में भूख न रुकी।

घर-मकान, खेत-खलिहान, कपड़े-लत्ते, चिथड़े-गुदड़े, सब बेच-बेच कर खा गए। मोनाई ने सब कुछ खरीदा, और चावल भी बेचा!

जमींदार के डंडे खाकर तालों की मछलियां ज़्यादा न खा सके। पेड़-पत्ते, घास-फूस, कुत्ते-बिल्ली-चूहे का मांस, जो भी मिला, पेट की ज्वाला में भस्म हो गया। भूख इतने पर भी नहीं मानती---रोज लगती है।

भूख का ध्यान आते ही पांचू की चेतना वापस आ गई। उसकी आंखें इतनी देर से बंगाल के नक्शे पर टिकी होने पर भी उसे देख नहीं रही थीं। विचारों से जाग कर उसकी आंखों ने फिर से बंगाल को देखा। अनगिनत टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों और काले-काले अक्षरों में सैकड़ों गांवों, क़स्बों और शहरों के नाम इतनी दूर से आंखों के लिए अस्पष्ट होने पर भी उसके दिमाग़ में साफ़-साफ़ उभर कर आए। हर गांव में, हर घर में, इसी तरह भात की समस्या होगी। और हर गांव का मोनाई इसी तरह बेहिसाब दाम मांग रहा होगा। लोग मोनाई की दूकान पर इसी तरह

ख़ुशामद करते होंगे, मोनाई को स्वर्ग से भी ऊँचे-ऊँचे आशीर्वाद दे-देकर हाथ-पांव जोड़ते होंगे। सारे गांव की भूख मुनाफ़े का लोभ बन कर मोनाई के पेट में समा चुकी होगी। लोग मोनाई को घेर कर रोते होंगे, कोसते होंगे, गालियां देते होंगे। और हर गांव का मोनाई आशीर्वाद और गालियों को समान रूप से सुनता हुआ, स्थिर चित्त होकर बैठा-बैठा अपने खाते का हिसाब जोड़ता होगा। हजारों लोग मर रहे होंगे। गांव छोड़ कर भाग गए होंगे। लड़के भी चले गए होंगे। हर गांव का स्कूल भी इसी तरह सूना हो गया होगा। और वहां के मास्टर!

पांचू को अपने घर की याद आई। पूरे तौर पर आज चार दिन से उसके घर में भी अकाल पड़ रहा है। किसी ने भात की एक कनी भी मुंह से नहीं लगाई। उसकी दस बरस की छोटी बहन कनक ने भी अपने छोटे-छोटे भतीजों—दीनू और परेश के पक्ष में अपना हिस्सा त्याग दिया है। सिर्फ़ इन्हीं दोनों को दो-चार कौर खिला कर चावल का मांड़ पिला दिया जाता है। लेकिन वह उनका पेट भरने के लिए काफ़ी नहीं। सारा दिन 'भात-भात' चिल्लाते ही बीतता है। उसकी आठ महीने की नन्ही-सी भतीजी चुन्नी भूख के मारे रोते-रोते अधमरी-सी हो गई है। मा का दूध पीती है; जब उसे ही खाने को नहीं मिलता तो वह बेचारी दूध कहां से पाएगी? चावल का मांड़ उसे भी थोड़ा बहुत चटा दिया जाता है। मां, बौदीदी, उसकी पत्नी मंगला, तुलसी, कनक, बाबा, दादा और वह ख़ुद भी तो आज चार दिन से बस पानी पी-पी कर ही जी रहे हैं।

लेकिन आज तो शाम को दयाल जमींदार के यहां से चावल मिल ही जायगा। पर इस तरह कितने दिन चलेगा? आबरू कब तक बचेगी? फिर आबरू किसकी बचेगी और किससे बचेगी? घर-घर में यही ठंडे चूल्हे हैं। क्या कुलीन, क्या अकुलीन—एक मोनाई और दयाल जमींदार तथा उनके जैसे दस-पांच को छोड़ कर अब किसके यहां चूल्हे में बराबर

आग दिखाई देती है? सारा गांव इसी तरह भूख से तड़प-तड़प कर जान दे देगा। पार्वती काकी मरीं, हारान मरा, तिनकौड़ी मरा, गणेश मरा। गांव में बराबर मौतें होती जा रही हैं। और इसी तरह एक दिन उसके घर के लोग भी एक-एक करके....

"ओह!"--पांचू के माथे पर सिकुड़नें पड़ गईं। चेहरा खिझलाहट से भर उठा। उसका जी बुरी तरह से विचलित हो गया।

लाख न चाहने पर भी बार-बार अपने विचारों में मृत्यु तक पहुंच जाने की आत्म-दुर्बलता पर पांचू की आंखों में आंसू बरबस छलछला उठे। इन आंसुओं पर वह और भी खीझ उठा--वह यह सब बातें सोच ही क्यों रहा है? क्या उसे दुनिया में और कोई काम नहीं है?

धोती के छोर से आंखें पोंछ कर पांचू ने खुली दराज की तरफ़ देखा। पीछे की तरफ़ काग़ज़ों का बंडल बंधा रखा था। उसने झट उसे बाहर निकाल कर उस पर बंधी हुई सुतली खोल डाली। उसमें चिट्ठियां-पत्रियां, डिग्रियों के सार्टिफ़िकेट वग़ैरा, बंधे रखे थे। एक बार जब उसके दादा ने अपने जोम में आकर उसका एक सर्टीफ़िकेट फाड़ डाला था, तब से वह अपने निजी काग़ज़-पत्र स्कूल की दराज में ही रखता है।

पांचू ने काग़ज़ों को उलटना शुरू किया। प्रोफेसर बनर्जी का दिया हुआ सर्टीफिकेट, जॉर्डन साहब का सर्टीफ़िकेट, जॉर्डन साहब की चिट्ठी, फिर जॉर्डन साहब की दूसरी चिट्ठी, राय भुवन मोहन सरकार की चिट्ठी, गणेश की लिखावट....

सुचारु रूप से बंगला लिखना-पढ़ना सीख लेने के बाद गणेश एक बार कुछ दिनों के लिए अपने काका के पास ढाका गया था। वहां से उसने यह चिट्ठी लिखी थी--"श्रीचरण कमलेषु....."

अपने दिल के अन्दर-ही-अन्दर उसने यह जाना कि गणेश के इस पत्र पर ज़रा-सा ध्यान देते ही फ़ौरन मृत्यु उसके विचारों में आ जायगी। और जब

तक मृत्यु स्पष्ट रूप से उसके दिमाग़ में आए-आए, उसे अपना ध्यान किसी और तरफ़......

अरे हां, वह तो पिछले महीने की फ़ीस का हिसाब देखने बैठा था न!

उसके अपने आगे रखे हुए कागज़ों को बाएं हाथ से झटक कर एक ओर सरका दिया। कागज़ ऊंचे-नीचे होकर ज़रा बिखर गए।

फ़ौरन ही दूसरी दराज़ का ताला खोलकर उसमें रखे हुए दोनों रजिस्टर उसने बाहर निकाल लिए। रजिस्टर बाहर निकालते समय बीच से कोई चीज़ खिसक कर प्लैटफ़ार्म पर जा पड़ी। पांचू ने उसे देखा। उसकी आंखें खुशी से चमक उठीं--एस्प्रो का पैकट!

फ़ौरन ही रजिस्टरों को मेज़ पर पटक और फुर्ती से झुककर उसने एस्प्रो का पैकट उठा लिया। लिफ़ाफ़े के अन्दर दो टिकियां रखी थीं।

"खा लूं?--यानी बीमार--नहीं जी, बीमार नहीं, योंही सिर में दर्द है। सच? हां-हां, इतने ढंग-कुढंगे विचार सिर में समाए हुए हैं तो क्या दर्द भी न होगा। ज़रूर दर्द हो रहा है।"

कागज़ के अन्दर चमकती दो सफ़ेद टिकियों को पांचू ने भूखी आंखों से देखा। फिर कागज़ फाड़ कर उसने दोनों टिकियां हाथ में रखीं और इससे पहले कि कोई नया तर्क दिमाग़ में उठे, पांचू ने अपने से चुरा कर उन्हें झट से मुंह में रख लिया।

"निगल जाऊं?--नहीं, चबाना चाहिए। ज़रा देखें तो इसका स्वाद कैसा होता है।"

कट-कट, दोनों टिकियां दांतों में बोल गईं। जैसे कोई खाने की चीज़ हो, इस तरह उसने उन दोनों टिकियों को चबाया और फिर-फिर चबाना चाहा; लेकिन वे तो घुलने लगीं। दांतों की अक्षमता को समझ कर पांचू ने घुली हुई टिकियों के बारीक कणों को ज़बान से तालू में रगड़-रगड़ कर और भी घुलाना शुरू किया। मुंह में कसैला लुआब बंधने लगा। पांचू उन्हें

घुलाता ही रहा। दोनों गालों में फूलने की हद तक वह लार को घोंट कर बढ़ाता ही रहा--यहां तक कि उसके जबड़े दर्द करने लगे। तब वह मजबूरन उसे पी गया।

कसैला ही सही, आज चार दिन के बाद पांचू को फीकी ज़बान को किसी तरह का स्वाद तो मिला था। इससे उसे एक तरह का संतोष हुआ।

पानी पीना चाहिए। वह उठा और बाहर आया।

मुंह का वह कसैलापन अब धीरे-धीरे फीकेपन में बदल चुका था। यह पांचू को अखरने लगा। उसकी भूख एक दम तेज़ हो गई। सिर की झनझनाहट बढ़ गई। स्कूल के पीछे ही पोखर था। पांचू क़दम बढ़ाकर वहां पहुँचा। दोनों हाथों की अंजुली बांध कर उसने पानी पिया। पानी ख़ाली पेट में लगा। उसने फिर पिया, तीसरी बार, चौथी बार, पांचवीं, छठी बार-- सातवीं बार उसने अंजुली भर कर फिर छोड़ दी।

उसका पेट तन गया था। उसमें अब पानी पीने की ताब नहीं थी। लेकिन पानी से अभी मन न भरा था। उसने अपना मुंह धोया, सिर पर छींटे मारे, कुल्ला किया, और धोती के छोर से मुंह और हाथ पोंछते हुए उठ खड़ा हुआ। उसने जानबूझ कर अपने में एक ताज़गी महसूस करना शुरू किया और सोचना शुरू किया कि उसका पेट भरा हुआ है, वह अब मज़े में है।

पेट भरा होने की कल्पना उसके विचारों को अपने परिवार की ओर खींच ले गई।

उन सबों ने भी पानी पी लिया होगा। वे सब भी मज़े में होंगे। बस, अब देर ही कितनी है। दिन के ढलते ही........

पांचू ने धूप से अन्दाज़ लगाया, ढाई बज रहे होंगे। एक घंटा और यहीं बैठना चाहिए, साढ़े तीन बजे चलना ठीक होगा। लेकिन रोज़ तो साढ़े-चार पांच तक जाता है। दयाल बाबू अपने मन में सोचेंगे कि आज चावल लेना है, इसलिए जल्दी चला आया। ऊँह, सोचेंगे तो सोच लें। कह दूंगा

कि कोई काम तो था नहीं, इसलिए सोचा, लाओ जल्दी ही पढ़ा आऊँ। और जब जल्दी ही जाना है तो अभी क्यों न चला जाए? नहीं, अभी जाना ठीक नहीं। तब तो साफ़ खुल जायगा कि चावल के लिए इतनी जल्दी की गई है। मगर यह कोई झूठ बात थोड़ी है। हां आबरू का सवाल जरूर है। आबरू चली गई तो लाख का आदमी खाक का।

पांचू के मन में प्रश्न उठा—"तो क्या चावल मांगने से आबरू नहीं गई? नहीं, इसमें आबरू का कोई सवाल नहीं उठता। तनख्वाह न ली, चावल ले लिया। लेकिन चावल तो मोनाई की दूकान से भी....."

आठ दिन पहले जब दयाल जमींदार से उसने वेतन के रुपयों के बजाय चावल मांगा था ओर दयाल ने उसे देना स्वीकार कर लिया था तभी से उसे आशा बँध गई थी कि दयाल बाबू वेतन के रुपयों से चावल न तोलेंगे। वह मोनाई तो हैं नहीं, जमींदार हैं इतने बड़े, ओर फिर उसे इतना मानते हैं। वह उनके लड़के का गुरू है, उन्हें अखबार पढ़ कर सुनाता है, साहबों के लिए उनकी चिट्ठियां अंग्रेजी में लिख देता है। इन सब का कभी एक पैसा आज तक उसने नहीं लिया। कोई किसी तरह से समझता है, कोई किसी तरह से। लेकिन आठ रुपए में मन दो मन तो उठा कर देने से रहे। अरे, ज़्यादा से ज़्यादा पांच सेर के दस सेर दे देंगे, बस! ज़्यादा भी दे सकते हैं। हां भाई, जमींदार जो ठहरे। भला राजा के घर मोतियों का काल? वो चाहें तो उठा कर मन दो मन दे दें। उनके लिए कौन बड़ी बात है? ख़ैर इतना तो नहीं, अगर पन्द्रह सेर भी दे दिया तो ठाठ से महीना बीत जायगा। आध सेर में रोज घर-भर निबट लिया करेगा। न सही भर पेट; अरे न होने से तो काने मामा ही भले। फिर किया क्या जाय? जमाना कैसा आ लगा है! जब तक लड़ाई चलेगी ये अकाल नहीं जाने का। लड़ाई की वजह से ही तो यह अकाल है।

पांचू ने अखबार में दूसरे प्रान्तों से यहां के लिए अनाज भेजे जाने की ख़बरें पढ़ी थीं। गांव-गांव में यूनियन बोर्ड खोले जा रहे हैं जो मिट्टी के मोल चावल

बेचेंगे। यह सुन कर दयाल भी हँसे थे, मोनाई भी हँसा था। और उन दोनों की हँसी में सोने के बंगाल के मरघट हो जाने की सूचना छिपी थी, उनके साथ इतने दिनों के अपने सम्बंध की वजह से पांचू यह भी समझता था। फिर भी, अगर उसे और उसके परिवार को दयाल जमींदार से रोज आध सेर चावल मिलता रहे तो वह अपनी सारी सहृदयता को बंगाल के साथ ही मरने दे सकता है।

पांचू सोच रहा था—"आठ रुपए में तो वह हर महीने पन्द्रह सेर देने से रहे। हां, अगर वह तनख्वाह बढ़ा दें तो अलबत्ता गुजारा हो सकता है। अच्छी बात है, तो आज मैं दयाल बाबू से तनख्वाह बढ़ाने की बात कहूँगा। मान जायँगे? अरे, मैं उनका कोई दूसरा काम कर दिया करूँगा। क्लर्की ही सही, किसी तरह मेरा घर तो पेट की ज्वाला में जलने से बचे! कहें तो मैं उनकी सारी जमींदारी में झाड़ू लगाया करूँ। जान है तो जहान है। पेट भरे पर आबरू भी भली लगती है।.......हे भगवान, बस ऐसा ही कर दो। हे नाथ, मेरी सुन लो। किसी तरह दयाल बाबू मान जांय, बस ऐसा कुछ कर दो!"

प्रार्थना से हृदय गद्‌गद हो उठा। पांचू इस वक्त तक क्लास-रूम के दरवाजे के सामने पहुँच चुका था। फटे हुए पोस्टर पर नजर गई। पांचू ने खट से पलट कर मोनाई की दूकान की तरफ़ देखा—पुलिसमैन? नहीं आ रहा! पांचू एक निसांस छोड़कर कमरे में दाखिल हुआ। और कमरे की तमाम चीजों से जबरन निगाह बचाकर वह कुर्सी पर बैठ गया।

वह अब सूनी डॅस्कों की बात नहीं सोचेगा, दीमकों की भी नहीं। भाड़ में जाय स्कूल, उसे अब करना ही क्या है? बस दयाल जमींदार के यहां उसे काम मिल जाय।

दराज के अन्दर रख देने के लिए उसने दोनों रजिस्टरों को उठाया। उनके नीचे उसके कागज बिखरे हुए पड़े थे। छूटते ही उसकी नजर पड़ी—मा की लिखावट। ढाई बरस पहले जिस पत्र ने उसे आई० सी० एस० होने

से रोक दिया था, उस पत्र के ऊपर का कुछ हिस्सा दूसरे कागज़ों में दबा हुआ था। जहां से दिखाई देता था, पांचू उस पत्र को वहीं से पढ़ने लगा:—

"...कल रात तुलसी के ब्याह के लिए बनवाये हुए सारे गहने जुए में हार आया। मेरे सिरहाने से कुंजी निकालते समय बहू की नजर पड़ गई थी। मैं छत पर खड़ी रामतनु की घरवाली से बातें कर रही थी। बहू जब तक कहने आए, वह अपना काम कर चुका था। तेरे बाबा के कानों में जब कोठरी और संदूक के ताले खुलने की खटर-पटर गई, तो वह 'कौन है, कौन है' कहके पुकारने लगे। तू तो जानता ही है, अपनी कोठरी में बैठे-बैठे वे इसकी कैसी ताक बजाते रहते हैं। पर वे पुकारा करें, बन्दा बोला तक नहीं। और मैं जब घबरा कर नीचे आई तो बाहर के दरवाजे से निकल रहा था। कितना पुकारा, 'शिबू! शिबू!' पर शिबू किसकी सुनता है? जब मां थी, तब थी। अब तो वह अपने मन का हो गया है भैया! क्या करूं, जो लिखा के लाई हूं, वह तो भोगना ही पड़ेगा। तेरे बाबा आज यों अंधे हो के पड़े हैं। शिबू के रूप में नारायण मेरी यों परीक्षा ले रहे हैं। नहीं जानती और आगे क्या-क्या देखना बदा है। शिबू आज ऐसा न उठता तो भगवान के चरण पकड़कर अपनी मौत मांगती। मेरे ऐसा सोहाग किस स्त्री का है? जिसके दो-दो जवान बेटे हों, उस मां को चिन्ता रहे? पर बेटा, ऐसे तप मैंने किये कहां थे? मेरी हालत तो कंजूस के धन-सी है जो ईश्वर की दया से सब कुछ होते-सोते भी उसका सुख नहीं भोग सकता।

"मैं अब शिबू की या तेरी बात नहीं सोचती बेटा! तुम लोग तो, नारायण कृपा करें, अपने हाथ-पैर के हो गये हो। शिबू बहू के गहने पहले भी बेच चुका है। दो बार तो उसे मारा भी। बहू ने कल तक मुझसे यह सब बातें छिपाकर रखीं। जुआ खेलने लगा है, यह बात तो बहू ने एक बार पहले भी कही थी। मना करने पर कहता था, तकदीर का व्यापार है, जो लगाऊंगा, दूना-दसगुना मिलेगा। बार-बार न सही तो बस इकट्ठा, एक ही दांव में। और भी बहुत-सी बातें बनाता रहा। जोर-जुलुम भी शुरू हुए।

बहू से लड़ता था, यह तो मैंने भी कई बार सुना। पर इतना नहीं समझी थी। शिबू की यही दशा रही तो घर का भगवान् ही मालिक है। और मैं तो बेटा, जब तक जिऊंगी, चिन्ता करती रहूंगी, बहू की, तुलसी के ब्याह की। कनक भी अब दस बरस की हो गई है। इसके अलावा अब तो दीनू और परेश की भी चिन्ता है। वे दुधमुंहे बच्चे क्या समझें कि उनका बाप जुआरी है और जुआरियों के बेटे सदा पराया मुंह ही जोहते हैं।

"कल की घटना पर तेरे बाबा से भी बातें हुईं। कहने लगे, जब तक आंखें रहीं, तब तक दुनिया को न देख पाया। और अब अंधा होने पर, जिस दुनिया का भयानक रूप मैं अपनी आंखों से देख चुका था, उसका अंत कैसा भयानक होगा, यह साफ़-साफ़ देख रहा हूँ।

"मुझसे कहने लगे—शिबू तुम्हारे ही लाड़-प्यार के कारण हाथ से निकल गया। बच्चे को एक उम्र से ज़्यादा अगर बच्चे की तरह ही रखोगी तो उसकी गैर-ज़िम्मेदारियों का सारा दोष भी तुम्हारे ऊपर ही आयेगा। अगर यह जानती होती बेटा, कि मा का प्यार आशीर्वाद न होकर कभी-कभी शाप बन कर बच्चों को लग जाता है तो कलेजे को पत्थर बनाने की कोशिश करती। पांच बच्चों को धरती माता की गोद में देकर शिबू का मुंह देखा था। इसीलिए उसे गोद से उतारते भी डरती थी। तू इतना पढ़-लिख गया है, शायद मा की यह बात समझ सकेगा। पर अब तू और कितना पढ़ेगा पांचू? तू अपने मन में कहेगा, मा मेरी तरक्की होते भी नहीं देख सकती। पर बेटा, एक तेरी ही सोचती रहूँ तो ये तुलसी कनक कहां जाएंगी? दीनू, परेश का क्या होगा? तुलसी अब सोलह बरस की हो गई है। इसकी पहाड़-सी उमर कब तक दुनिया की आंखों से छिपाती रहूँगी। सात बरस में तार-तार जोड़कर इतने गहने बने थे सो भी भगवान् ने छीन लिए। कैसे बेड़ा पार लगेगा?

"तूने लिखा है, छुट्टियों में नहीं आऊँगा, विलायत की पढ़ाई पढ़नी है। सो ठीक है; पर एक बात मुझे बता दे। तू तो विलायत चला जायगा, लेकिन तेरी मा कहां जायगी? किसे अपना दुखड़ा सुनायेगी?

"जो मन की थी सो तेरे आगे कह चुकी। आगे तू समझदार है। नहीं तो फिर भगवान् तो हैं ही बेटा! तू जहां भी रहे सुखी रहे। मेरे जी से तो सदा यही असीस निकलती है।"

पत्र पूरा होते ही एक ठंडी सांस पांचू के मुंह से निकल गई। उसने अपनी पीठ कुरसी से टिका दी। बीते हुए दिन एक-एक करके उसके मन की आंखों के सामने आने लगे। लाख अनिच्छा होने पर भी उसे अपनी मा के इस पत्र के सामने झुकना पड़ा था। और वह एक बार घर आया था, यह सोचने के लिए कि अब क्या किया जाय।

दादा उससे चिढ़ते हैं। पांचू जानता है, अपना निरक्षर रह जाना उन्हें खलता है। जिसका छोटा भाई इतना तेज़ है, उसे उससे भी बढ़कर कुछ होना चाहिए, इसी एक धुन ने दादा को जुआरी बनाया है। बाबा जो कहते हैं कि मा के लाड़-प्यार ने ही दादा को हठी, स्वार्थी और निकम्मा बना दिया, सो कुछ झूठ बात नहीं है। मा को अभी भी दादा का बहुत पक्षपात है।

मा का पत्र पाकर पांचू जब गांव आया, शिबू दिन में दस बार उस पर अपने बड़प्पन की शान झाड़ने से नहीं चूकता था।

घर आकर पांचू अभी यह सोच ही रहा था कि जीवन निबाहने के लिए उसे कौन सा काम करना चाहिए, कि एक दिन गांव का हीरू बाग्दी अपने आठ बरस के लड़के गणेश के साथ आकर उससे कहने लगा—"एकटू खमा करबेन मेज ठाकुर। आपको देखकर एक बात मेरे मन में ये आई, कि हमारी तो सात पुरखों से आप लोगों के चरनों में कट गई। बाकी इन लड़कों की न निभेगी। ये लोग तो अभी से ही गांधी बाबा का झण्डा उठाते हैं। बड़े होकर मिट्टी खराब हो जायगी इनकी। इससे, जो ये गनेसा चार अच्छर यस-नो के सीख लेगा आपकी दया से, तो सहर में कहीं नौकरी पा जायगा। और मेरा बुढ़ापा भी आपके चरनों की दया से बन जायगा।"

पांचू को उसी दिन यह मालूम हुआ कि गवंई-गांव के डोम-बाग्दियों में भी अब इतनी समझ आ गई है। यह समझते हुए भी पांचू के संस्कारो

मन को डोम-बाग्दियों का अंगरेजी शिक्षक बनने में संकोच हुआ। वह उसे मना करने जा ही रहा था कि पास खड़े हुए बूढ़े रामदुलाल चक्रवर्ती, जो उधर से जाते हुए हीरू-पांचू की बातें सुनने के लिए खड़े हो गए थे, अपने सम्पूर्ण ब्रह्मतेज को आंखों में दरसा कर बोल उठे—"छोट जातेर मुखे आगुन! शालार ब्याटा, डोम-बाग्दी अब ऊंच जाति की बराबरी करने चले हैं?"

दूसरे के मुंह से, विशेषकर एक ऊंची जाति वाले के मुंह से छोटी-जाति वालों के लिए गालियां सुनकर शहर की राजनीतिक और सामाजिक हलचलों से प्रभावित पांचू की साम्यवादिता चेतन हो गई। उसका हृदय ऊँची जाति वालों के प्रति विद्रोह से भर गया। उसकी निगाह गणेश के चेहरे पर जा पड़ी। भोला-सा चेहरा, आशाभरी दृष्टि से उसकी ओर देख रहा था। रामदुलाल खूड़ो के व्यंग की प्रतिक्रिया-स्वरूप उसे लगा, गणेश को न पढ़ा कर वह सरस्वती का अपमान करेगा। और उसने राम-दुलाल के देखते ही हीरू को आश्वासन दिया कि जब तक वह गांव में है, गणेश उससे पढ़ने आ सकता है।

गांव वाले कितने नाराज हुए थे! खुद उसके घर में उसकी मा ने भी पहले उसे मना किया। दादा ने तो कहनी न कहनी सभी सुना डाली। सारा गांव उसकी निन्दा करने लगा। और ज्यों-ज्यों गांव का विद्रोह बढ़ता गया, पांचू का हठ भी जोर पकड़ता गया—"सबको विद्या पढ़ने का समान अधिकार है।"

पांचू के जीवन में नया रस आ गया। केवल अपने उत्साह के बल ही वह अपनी ज़िद पर अड़ गया था। और उसी जोश में एक दिन उसने गांव भर के 'छोटे लोगों' के लड़कों को एकत्रित कर पेड़ के नीचे बैठ कर पढ़ाना शुरू कर दिया।

वह आया था घर के लिए कुछ सहारा करने, कहां इस मुसीबत को गले डाल लिया? लेकिन अब तो बात पर बात अड़ गई थी। उसने निश्चय

किया कि वह स्कूल खोलेगा और धीरे-धीरे आगे चलकर स्कूल को ही अपनी आमदनी का जरिया बनाएगा।

जब सारा गांव स्कूल के खिलाफ़, पांचू के खिलाफ़, तब कानाई मिस्त्री ही बढ़कर उससे हाथ मिलाने आया था—'शहर जाके स्कूल के लिए मदद मांगो। यहां मैं सँभाल लूंगा। बाकी एक बार ऐसा स्कूल बनाओ मास्टर, कि लाट साहब को भी यहां आना पड़े।"

कानाई की शुभकामना फली। शहर जाकर प्रिंसिपल जॉर्डन के अदम्य उत्साह और सहयोग के कारण अनेक धनवान और सम्मानित नागरिकों से उसने अपने स्कूल के लिए सहायता प्राप्त की। उन रुपयों से जब वह किताबें, स्लेट, पेन्सिल आदि लेकर गांव आया तब लड़के कितने खुश हुए थे। और एक दिन जब अमेरिकन मिशिनरी जॉर्डन अपने कुछ विलायती और देशी मित्रों के साथ उसका स्कूल देखने के लिए आये थे, तब गांव वालों पर उसका कितना प्रभाव पड़ा था।

प्रिंसिपल जॉर्डन ने उसके स्कूल के लिए पक्की इमारत बनवा देने का वचन दिया। गवर्नमेंट कॉन्ट्रेक्टर राय भुवन मोहन सरकार तथा उनके द्वारा आसपास के बड़े-बड़े जमींदारों का सहारा पाकर स्कूल की इमारत देखते-देखते खड़ी हो गई। कलक्टर आये, बड़े-बड़े लोग आये, जलसा हुआ; लड़कों को मिठाइयां बांटी गईं। दयाल जमींदार भी अब उसकी पीठ पर हाथ रखने लगे; उसे अपने लड़के का शिक्षक नियुक्त किया। अपने पिता की मृत्यु के बाद रामदुलाल चक्रवर्ती का लड़का गोविन्द भी किसी गांव वाले साले की परवाह न कर, शुभ काम में हाथ बंटाने पांचू के स्कूल में मास्टर हो गया।

गोविन्द मास्टर के आने से गांव में खलबली-सी मच गई। रामदुलाल शुरू से पांचू के स्कूल के सबसे बड़े विरोधी थे। जब उन्हीं का लड़का नीच जाति को पढ़ाने लगा तो चार उंगलियां गोविन्द पर उठीं। गोविन्द ने अपने कार्य का समर्थन करने के लिए ब्रह्मास्त्र खोज निकाला—"खास कलेक्टर

साहब ने पांचू बाबू से यह स्कूल खुलवाया है। वह सब को राज-भाषा सिखाना चाहते हैं। कल यही डोम-बाग्दियों के लड़के अँगरेजी पढ़ कर हमारे ऊपर राज करेंगे और कलेक्टर साहब के हुकुम से बामन-कायथों से मैला उठवाएंगे--देख लेना। इतने बड़े-बड़े आदमी एक इशारे पर दौड़े चले आये। हमारे पांचू बाबू क्या कोई मामूली आदमी है? कलेक्टर साहब के बड़े जिगरी दोस्त हैं। जो उनके स्कूल के खिलाफ़ बोलेगा, उसी को जेल हो जायगी।"

गोविन्द मास्टर की अतिशयोक्ति में थोड़ी-बहुत गुंजाइश रखते हुए भी गांव वालों को यह मानना पड़ा कि पांचू मामूली लड़का नहीं है। उसके स्कूल के विरोधी को जेल न सही, जुर्माना अवश्य हो सकता है। लोग उसके प्रभाव के कारण अब उसका आदर भी करने लगे। पर बामन-कायथों की नाक न कटे, इसलिए संधि के प्रस्ताव में एक शर्त यह रखी गई कि स्कूल में नीच जाति के लड़कों से अगर ऊँचों को अलग बैठाने को राजी हों तो सब जने अपने लड़कों को पढ़ाएंगे। प्रस्ताव पांचू की मा की मार्फ़त आया, और मा के विशेष आग्रह पर पांचू को ऐसी व्यवस्था करनी पड़ी।

पांचू को आज भी याद है, अपनी इतनी बड़ी सफलता पर बच्चों की तरह उल्लसित हो गणेश की पीठ थपथपाते हुए उसने कहा था--"गणेश अगर तू न आया होता तो गांव में आज यह स्कूल भी न होता!"

बालक गणेश का भोला-सा मुंह उस समय आत्म-गौरव और प्रसन्नता से चमक उठा था। आज भी पांचू की आंखों के सामने वही चेहरा फिर रहा है।

"आज गणेश नहीं रहा, यह स्कूल भी नहीं रहा!"

पांचू की इच्छा हुई कि वह फूट-फूटकर रोये। गणेश और स्कूल दोनों, शरीर और प्राण की तरह एक थे। एक के न रहने पर दूसरे का न रहना भी ठीक उसी तरह स्वाभाविक था। गणेश को फिर से लाकर अपने स्कूल को पुनर्जीवित करने की असमर्थता को, आन्तरिक विद्रोह और पीड़ा के साथ अनुभव करता पांचू विकल हो उठा।

छोटे बच्चे जिस तरह किसी चीज को पाने के लिए पैर रगड़-रगड़कर मचलते हैं, पांचू का मन उस समय ठीक उसी तरह गणेश को पाने के लिए मचल रहा था। उसकी कल्पना कमरे के जर्रे-जर्रे से गणेश को खोज निकालने लगी। वह महसूस करने लगा, गणेश दरवाजे से अन्दर आ रहा है। गणेश डेस्क पर है--गणेश सब डेस्कों पर है। वह चाकें बटोर रहा है। ग्लोब के पास--हां, ग्लोब के पास गणेश ही खड़ा है। उसने ग्लोब घुमाया। सचमुच ग्लोब घूम रहा है ? नक़्शे के अन्दर से भी गणेश निकलता हुआ दिखाई दिया। उसे एक साथ कई जगह से गणेश अपने पास आता हुआ महसूस हुआ।

"सर....!"

पांचू ने चौंककर अपने पीछे देखा। कुछ भी नहीं। "लेकिन आवाज़ गणेश की ही थी--साफ़ गणेश की। तब क्या--?"

सहसा उसने खिलखिलाकर हँसने की आवाज महसूस की। पांचू का दिल धक्-धक् करने लगा। साथ ही साथ दिमाग के अन्दर एकदम सुन्न पड़ जाने का अनुभव हुआ। पांचू का सिर अपने आप ही झोंका खा गया।

सारी शक्ति के साथ कुर्सी के पीछे लटकते हुए दोनों सुन्न हाथों को उसने अपने आगे मेज पर लाकर पटक दिया; फिर हथेलियों पर अपने शरीर का सारा भार टिका कर प्राणपण से उसने अपने शरीर को उठाने की कोशिश की—और वह उठ खड़ा हुआ। वह बदहवास होकर कमरे से बाहर झपट कर निकला। बरामदे में आकर कमरे की तरफ़ देखते हुए उसने महसूस किया कि उसका दिल अभी भी धड़क रहा है, उसकी सांस तेज हो रही है। तो क्या सचमुच........

पांचू की चेतना वापस लौट आई। संभलकर उसने अपने को फटकारा --"फिर बहके! नहीं, नहीं मगर वो आवाजें....और वो....?"

पांचू की सांस अपनी असली गति से चलने लगी, दिल की धड़कन भी स्वाभाविक हुई—"सब मेरी कल्पना थी, और कुछ नहीं। सब कुछ भी --सच कुछ भी नहीं था।"

एक इच्छा हुई, अन्दर चलकर बैठे। पर....

उसने एकाएक घूमकर धूप को देखा। साढ़े तीन बज रहे होंगे; बल्कि अब तो पौने चार—चार होंगे। चलना चाहिए।

लेकिन ये रजिस्टर, कागज़—अजी, पड़ा रहने दो इन्हें। कौन आता है यहां?

ताला दो क़दम अन्दर जाकर डेस्क पर रखा था।

उठाता हूँ—हां, उठा लाऊँगा। कोई बात नहीं है।

क़दम तौलते हुए पांचू का साहस स्वयं उसे भी चकित कर लपक कर ताला अन्दर से उठा लाया, और दोनों हाथों से खींच कर कमरे के दरवाजे बन्द कर दिये।

दरवाजे की कुण्डी लगाते हुए पांचू जरा मुस्कराया—"बेकार में डर गया। डरा नहीं जी.....अच्छा होगा, दयाल बाबू के यहां जाना है। वक्त से उठ आया, नहीं तो ख़यालों में ही बैठा रह जाता।"

ताला लगाते-लगाते वह सोचने लगा—"क्या सचमुच दयाल बाबू ने मुझे आज चावल देने का वायदा किया था—या यह भी मेरी कल्पना?"

"नहीं, बिलकुल सच है।" तत्क्षण दूसरे विचार ने उसके मस्तिष्क में आग्रहपूर्वक प्रवेश किया: और आत्मा की दृढ़ता के साथ उसने अपने को विश्वास दिलाया कि दयाल ने उसे चावल देने का वचन दिया था।

फिर एकदम से पांचू को हँसी आ गई।

२

"बड़ी बहू ! चलो, चलो । बखत न गँवाओ । चूल्हा सँजोके तैयार रखो मा ! और पानी की पतीली गरम होने को रख दो । पांचू के आते ही चावल उसमें डाल दिया जायगा—बस, छिन भर में भात रँधकर तैयार !"

पानी पीकर रीता गिलास हाथ में लिये पार्वती मा, एक-सुर में बोलती हुई, गिलास मांजने में अपनी सारी फुर्ती दिखाने लगी ।

शिबू की बहू, दालान में बैठी, पास ही चटाई पर पड़ी हुई चुन्नी को थपकी देकर सुला रही थी । अभी-अभी उसकी आंख लगी है, बड़ी मुश्किल से सोई है ।

पास ही कनक भी सो रही थी । शिबू की बहू चुन्नी को धीरे-धीरे थपथपाती ही रही । सास की बात पर मुस्कराते हुए उसने सिर उठाया और धीरे से बोली—"लेकिन, ठाकुर-पो (देवर) की घड़ी में तो अभी बड़ा सवेरा ही दिखाई देता है मा !"

बात कहते हुए उसके मुंह का रुख, दीवाल से टिककर बैठी, दोनों घुटनों की 'वर्किंग टेबिल' सी बनाकर, तकिए के गिलाफ़ पर हरे-लाल डोरों से 'गुड लक' काढ़ने में लीन, पांचू की पत्नी मंगला की तरफ़ ही था ।

आवाज़ के अंदाज पर मंगला का चेहरा उठा । चेहरे की विशेषता के रूप में मंगला की बड़ी-बड़ी सपनों-भरी आंखों की पुतलियां चमककर शिबू की बहू की आंखों में समा गईं, और दो जोड़ी होठों पर शैतान मुस्कराहट खिलवाड़ कर गई ।

बात खत्म करने के बाद उसने ज़रा आहिस्ता से एक सर्द आह की सलामी मंगला को सुनाते हुए छोड़ दी । बनावटी आह भरने से उसके भूखे शान्त पेट में एक गति-सी मालूम हुई । यह उसके पेट में ठंडी-सी, भली मालूम हुई ।

सपनों-भरी आंखों की पुतलियों में गुस्से का बहाना दरसा कर फिर अपने काम में लगी हुई मंगला चट से बोल उठी--"अरे अभी तो जमींदार की घड़ी में दोपहर और शाम भी बीतने को पड़ी है। और फिर जमींदार की घड़ी ठहरी--उसमें कब जाने दोपहर हो और कब शाम! भाई बकुलफूल, तुम तो भूख के मारे अभी से ही बच्ची बनी जा रही हो।"

"तुम चाहे जैसे समझो। आज तो तेरे उनकी बाट में मैं भी तेरी तरह ही मन मारे बैठी हूं सखी! हाय, तुझे रोज इतनी बाट जोहनी पड़ती है।"

बड़ी बहू ने फिर एक लम्बी सर्द आह खींच कर मंगला की तरफ़ फेंकी, लेकिन इस बार ठंडक पाकर पेट कुड़मुड़ाने लगा।

मज़ाक करते-करते ही बड़ी बहू अनमनी हो गई। पेट की कुड़मुड़ाहट से बेचैन हो, उसे भूलने के लिए वह खड़ी हो गई। जिठानी को उठते देख मंगला भी काम में हाथ बटाने के ख़याल से अपना सारा सामान बटोर कर, ऊपर अपने कमरे में रख आने के लिए उठी।

सूरज की रोशनी की एक लकीर दालान के आगे की टूटी मेहराब से गुजर कर दालान के अन्दर की दीवाल पर पड़ रही थी। मंगला के खड़े होने पर रोशनी उसकी गर्दन, होठ, नाक और सिर के कुछ हिस्से पर पड़ने लगी। उस रोशनी में नाक की सोने की कील में जड़ा हुआ लाल नग दमक उठा। आज चार दिन से, जब से इस घर में अकाल आया है, पार्वती मां ने बचे-खुचे एक-एक, दो-दो गहने सब लड़की-बहुओं को पहना दिये हैं। रसोईघर में भी जरूरत से ज़्यादा बर्तन खनकते हैं। औरतें जरूरत से ज़्यादा काम-काज में व्यस्त, सदा की भांति ही आज भी जीवन में, मन में पूर्ण निश्चिन्तावस्था का अभिनय करने के विफल प्रयत्न में प्राणपण से लगी हैं।

पिछली शाम पांचू यह सब देखकर हँस पड़ा था। कहने लगा, "मां, अगर कोई अखबार का रिपोर्टर इस समय तुम्हारे घर में आये तो उसे यहां

जरा भी अकाल नजर नहीं आयेगा। मेरी समझ में नहीं आता कि तुम छिपाती किससे हो? सब के घरों में यही तमाशा तो है।"

पार्वती मा खिसियानी हँसी हँसकर बोली--"चाहे जो हो, पर आबरू तो सँभालनी ही पड़ती है न! भगवान् ने यही तो छोटे लोगों से हम लोगों में फरक रखा है। नहीं तो हम लोग भी उनकी तरह गली-गली, गांव-गांव में भीख न मांगते होते, लूट-मार न करते होते।"

पांचू ने इस पर फिर हँसकर जवाब दिया--"पर कब तक नहीं करेंगे मा?' आबरू से पेट तो भरता नहीं, फिर उसे बचाकर रखने से भी क्या लाभ?"

पार्वती मा को कुछ जवाब न सूझा, हारकर कहने लगीं--"तेरा मत तो सारी दुनिया से निराला है। भला आबरू के बंधन भी कहीं छूटते हैं? कुलीनों की आवरू तो चिता तक साथ जाती है, बेटा!"

"पर पुरानी धोती के हजार पैवन्दों की तरह कुलीनों की आबरू भी अब अपनी असलियत को, लाख कोशिश करने पर भी, छिपा नहीं पाती मा!"

"ये तो सच है। किया भी क्या जाय। नंगे की तो दोनों टांगें उघाड़ी, तब भी वह किसी तरह लाज तो समेटता ही है, बेटा!"

इसके जरा देर बाद ही रामतनु की घरवाली आ गई। पार्वती मा उनसे बातें करने में लगीं। सारा घर काम-काज में व्यस्त हो गया। लेकिन बीच में ही दोनू ने भूख-भूख चिल्लाना शुरू कर दिया, परेश भी उसका साथ देने लगा। डांट-धमको, बहलाने-फुसलाने से काम नहीं चला। आबरू की रक्षा में मा को हार मानते देख शिबू भी आ गया और उसने लड़कों को मारना-पीटना शरू कर दिया।

पांचू किसी तरह दोनों भतीजों को शिबू से छुड़ाकर ऊपर अपने कमरे में ले गया। उसके बाद उसने अपनी डायरी में लिखा--"आबरू के असत्य से दूर को सलाम रखनेवाला सच्चा जवांमर्द अगर कोई इस देश में मिल सकता

है तो वह कोई छोटी उम्र का बच्चा ही होगा, जो भूख लगने की इन्सानी कमज़ोरी के लिए ज़रा भी लज्जित नहीं।''

बांस की छोटी-सी मेज़ पर मंगला के हाथ का कढ़ा हुआ मेज़पोश बिछा हुआ था। बीच में शीशे का छोटा-सा क़लमदान रखा था, जिसकी दोनों दावातों की स्याही सूख गई थी।

बाईं तरफ़ एक ईंट के दो टुकड़े कर, उस पर पन्नी चढ़ा कर, ऊपर से मंगला के बनाये मोम के रंगीन मोतियों की झालरें पड़ी हुई थीं। इस तरह दोनों ईंटों के सहारे से उनके बीच में आठ-दस किताबें सजाकर रखी गई थीं। दाहिनी ओर पीतल की ॐकार बनी हुई छोटी-सी धूपदानी और मेज़ के ऊपर दीवाल पर भारतीय चाय का एक कैलेण्डर टँगा था। दीवाल के दोनों तरफ़ गांव की ओर खुलती हुई दो खिड़कियां थीं। दीवाल से सटी हुई बड़ी चारपाई, उस पर क़रीने से बिस्तर लगा हुआ। चारपाई से लगी हुई दीवाल के ठीक बीचोबीच एक राधाकृष्ण की तस्वीर, अगल-बगल सुभाष बोष और जवाहरलाल की तस्वीरें। एक तरफ़ तीन संदूक एक-दूसरे पर चुने हुए रखे थे, उसके ऊपर के आले में रद्दी अख़बार बिछाकर एक शीशा, कंघा, तेल, आलता की शीशियां और बनारस की बनी हुई लकड़ी की सिन्दूर की डिबिया रखी हुई थी।

मंगला ने मेज़ पर, धूपदानी के पास, अपने काढ़ने-बनने का सामान रख दिया।

डायरी खुली हुई सामने ही रखी थी। बीच में पेंसिल रखी हुई थी। मंगला ने पांचू का लिखा एक बार पढ़ा। पेंसिल उठाकर क़लमदान में रख दी, और डायरी बन्द कर किताबों के पास। फिर शीशे में एक बार मुंह देखा, कंघे से बालों को ज़रा-सा 'टच' दिया और नीचे जाने लगी। दरवाज़े के इधर से ही फिर लौटी, खिड़की बन्द करने के लिए। बाहर देखा, पांच-छः आदमियों के बीच में बैठा हुआ शिबू ज़ोर-ज़ोर से कह रहा था--"खुद

मोनाई ने मुझसे कहा कि सरकार जबरदस्ती फौज के लिए उससे सारा अनाज खरीद ले जाती है। अरे...."

मंगला ने खिड़की बन्द करदी और नीचे चली गई।

वह सोच रही थी—"चावल लेकर आते होंगे।"

जीने के नीचे पैर रखा ही था कि बाहर के दरवाजे से तुलसी और दीनू परेश अन्दर आते दिखाई दिये।

मंगला को देखते ही बच्चे एक साथ ही बोल उठे—"काकी मा, हमने छन्देच काये, दो-दो!"

सारे घर का ध्यान बच्चों की तरफ़ चला गया।

पार्वती मां और बड़ी बहू चौके में बैठी थीं। कनक तब तक जाग चुकी थी। हथेली पर सिर टिका कर लेटी हुई, चटाई की सींक तोड़ कर, दांतों से चबा रही थी; उठ बैठी। पार्वती मा ने पूछा—"संदेश कहां पाये, दीनू?"

बच्चों से पहले तुलसी बोल उठी—"काकी नम्बर आठ के भाई आये हैं कलकत्ते से।"

बात काटकर पार्वती मा बीच ही में घुड़क पड़ीं—"फिर कहा काकी नं० आठ! तुझे भी पांचू की आदत पड़ गई है? रामतनु की घरवाली सुनेगी तो क्या कहेगी? ख़बरदार, जो आज के पीछे फिर कभी कहा तो!"

तुलसी चुप हो गई। बच्चे सहमकर वहीं के वहीं खड़े रह गये।

एक सेकन्ड चुप रहकर पार्वती मा फिर स्निग्ध स्वर में बोलीं—"गोपाल का बाप संदेश लाया होगा। कब आया वो?"

"अभी दिन में ही तो आये हैं। गोपाल को ले जायेंगे।" तुलसी ने सिर झुकाकर कहा।

परेश दादी के पास जाकर बोला—"थाकुम्मा, छन्देच काया। मीथा-मीथा।"

दीनू से भी दूर न रहा गया, पार्वती मा के पास जाकर कहने लगा—"ठाकुम्मा, हमको तो मामा ने एक-एक दिया, और बुआ को तो बीत से खिलाए।"

तुलसी एक संदेश छिपाकर लाई थी। उसे चुपके से कनक को देकर वह उसके पास ही चटाई पर बैठ गई थी। तड़ से उपट पड़ी—"झूठ बोलता है। दो दिये थे मुझको। मैं तो बहुत मना करती रही मा!"

दीनू भी कम नहीं, लड़ पड़ा—"नईं, दो तो अपने हात से तुमे खिलाये ते मामा ने। हमने गिना ता—एक, दो—औ, जब काकी आई थीं कमरे में, औ।"

"और तुम लोगों को भी तो दो-दो दिये थे उन्होंने।"

"बो तो हमें बाद में काकी नं० औ..."

"फिर कहो, औ तो सही!" पार्वती मा दीनू पर घुड़क पड़ीं।

दीनू चट से भागकर चाची के पैरों से चिपक गया। मंगला तुलसी-मंडप के आस-पास बुहार रही थीं। दीनू के अचानक पैरों में आ लिपटने से वह जरा लड़खड़ाई, फिर संभल गई।

"अरे-अरे........"

"काकी-मा", दीनू ने उससे धीरे-धीरे कहना शुरू किया—"काकी-मा सच्ची! अमको तो एक-एक सन्देश दिया मामा ने, और बुआ को तो बीत से सन्देश बी दिए और बौत-सा प्यार बी किया। अमको तो प्यार बी नई किया मामा ने।"

दीनू रूठी हुई आवाज़ में धीरे-धीरे कह रहा था। बीच-बीच में अपनी दादी की तरफ़ भी देखता जाता था, गोया इशारा हो—"तुमने हमारी शिका-

यत नहीं सुनी तो हम अब सुनाने के भी नहीं; हम तो अपनी चाची को सुना रहे हैं, चुपके-चुपके !"

.गुस्से को बेबसी से दबाए, सकपकाई हुई नजरों से, तुलसी दीनू की तरफ़ ही देख रही थी। मंगला ने यह बात सुन कर कड़ी नजर से तुलसी की तरफ़ देखा। आंखें मिलते ही उसने आंखें चुरा लीं और झुककर चटाई की सींक तोड़ने लगी। उसे इस समय अपने ऊपर बड़ा .गुस्सा आ रहा था। वह दीनू-परेश को काकी नं० आठ के यहां अपने साथ ले ही क्यों गई। पर उसे मालूम थोड़े ही था कि मामा आये हैं; और मामा उसके साथ ऐसा बर्ताव करने लगेंगे।

मामा के बर्ताव का ध्यान आते ही तुलसी ने अपनी रग-रग में गुदगुदी से भरी हुई सिहरन महसूस की। झुका हुआ चेहरा अपनी तमतमाहट को रोकने के लिए दोनों घुटनों के बीच और भी गड़ गया। बाल की एक लट खिसककर चेहरे पर आ गिरी। तुलसी अपने सारे बदन को और भी सिकोड़कर बैठ गई। मामा के रूप में एक पुरुष ने आज उसकी कल्पना की दुनिया में पहली बार क़दम रखा था। घर में, पास-पड़ोस में, बराबर की ब्याही हुई लड़कियों में, बंकिम-शरत के उपन्यासों में, और अपनी उम्र के तक़ाज़े से, सारी समझी-समझाई हुई बातों को वह जिस तरह आप-बीती बनाने के लिए पिछले दो-ढाई बरसों से दिल ही दिल में तड़पा करती थी, मामा से उन्हीं बातों का कुछ-कुछ आभास उसने पाया था। फिर दीनू-परेश गड़बड़ कर उठे। काकी नं० आठ आ गईं। उन्हें देखते ही वह कैसी धक-से रह गई थी। फिर काकी की मुस्कराहट और मतलब-भरी निगाहों से उसकी ओर मामा की तरफ़ देखना, फिर दीनू-परेश को बहला कर बाहर ले जाना। उसके बाद मामा की रसीली बातें, उनकी वह प्यार-भरी छेड़-छाड़। वह लाज के मारे पसीना-पसीना हो गई। बाहों से निकल कर भागी। मामा की बेक़रारी; कमरे के दरवाज़े पर चट से उसका हाथ पकड़कर मामा ने कहा—'शाम को आना। ज़रूर ज़रूर! उमा दीदी कुछ न कहेंगी—किसी से कुछ न कहेंगी......।"

"शाम को आना! शाम को आना!"—गर्दन उठाने की ताब नहीं; वह देखे कैसे कि अंधेरा हो रहा है, शाम हो रही है...!

तभी कनक ने उसका हाथ झटक कर पूछा—"मामा ने तुम्हें कितने सन्देश दिये थे दीदी?"

"कह तो दिया कि दो—एक तुझे ठुसा तो दिया!"

तुलसी तड़पकर उठ खड़ी हुई लेकिन उसकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि वह घर में और कहां जाकर बैठे। उसके लिए कहीं एकान्त नहीं। घर में हर एक का चेहरा उसे दुश्मन जैसा नजर आ रहा था। उसका सारा बदन अकड़ रहा था। खड़े रहने की ताब न थी। वह कहीं जाकर चुपचाप लेट जाना चाहती थी, अपने में खो जाना चाहती थी।

"अरे सुनती हो, एक गिलास पानी तो दे जाना!" बाबा की कोठरी से आवाज आई।

आवाज के कानों में पड़ते ही तुलसी के ख़यालों ने करवट ली। "शाम को आना।"—वह जानती है, जब बाबा पानी मांगते हैं तो मा को जाना पड़ता है। तुलसी ने अपने में स्फूर्ति का अनुभव किया। आंखें मा की ओर उठ गईं।

पार्वती मा मन ही मन में कटी जा रही थीं। झुंझलाहट पेशानी की नसों में तनी जा रही थी। लटके हुए गालों पर शर्म का बोझ पड़ रहा था जिसे उठाना अब उनकी उम्र के लिए दूभर था। काश कि कान बहरे हो जाते। उनकी आंखें क्या फूटी हैं कि दिन और रात का लिहाज भी न रहा!

"अरे सुना नहीं, तुलसी! अपनी मा से कह, एक गिलास पानी दे जाय।"—फिर आवाज आई।

दालान में खड़ी हुई तुलसी ने फौरन ही बड़े उत्साह के साथ कहा—"मा, बाबा पानी मांग रहे हैं।"

पार्वती मा की आत्मा पर तमाचा पड़ा। वह तिलमिला उठीं। जवान-जवान बहुएं, बेटियां—तीन-तीन पोती-पोतों की दादी के पद की प्रतिष्ठा को

आघात लगा। गुस्सा उतारा तुलसी पर—"तो सूंस ऐसी खड़ी-खड़ी सुन क्या रही है ? दे क्यों नहीं आती एक गिलास पानी उन्हें ?.........अन्धे क्या हो गये हैं, मेरी जान पर संकट आ गया है। दिन-रात हाय-हाय, हाय-हाय। पानी चाहिये, ओ' पान चाहिए, ओ' पत्ता चाहिए । बैठ के बूढ़ों की तरह से राम का नाम नहीं लिया जाता। उँह !"

अपनी कोठरी में केशव बाबू चारपाई पर अधलेटे से पड़े थे। पार्वती मा का एक-एक शब्द उनके दिल को, अन्धी आंखों पर ही, चुभता हुआ महसूस हो रहा था। मोतियाबिन्द से भरी हुई आंखों की पुतलियां इधर उधर फड़फड़ाने लगीं। फीके चेहरे पर तमतमाहट छा गई। केशव बाबू एक बार उठकर बैठ गये। बेताबी और झुंझलाहट से उनके बदन में एक किस्म की फुरती आ गई। मगर दूसरे ही क्षण वह फिर निढाल होकर तकिए के सहारे टिक गये, टांगें ऊपर की ओर समेट लीं।

एक हलकी-सी निसांस केशव बाबू ने छोड़ दी।

आज पांच बरसों से वह अन्धे होकर पड़े हैं। राम का नाम भी कोई कहां तक लेता रहे। चौबीस घंटे कोठरी में पड़े रहो। नरक के कुत्ते की तरह दो रोटियां खा लीं; बस। कोई बात भी पूछनेवाला नहीं..........."अरे, जब पत्नी ही अपने कहे की न रही, तब और किससे आशा की जाय ? वो तो भाई, अब जवान-जवान बेटों की मां है। कमाऊ-धमाऊ बेटे हैं, बहुएँ हैं। मेरी बात भला अब वो क्यों पूछेगी ? परन्तु उसे बेटोंवाली बनाया किसने ? आज मैं अन्धा हो गया हूं तो क्या मेरी बात भी नहीं सुनेगी ?"

पानी का गिलास लेकर आये हुए तुलसी को एक मिनट से ऊपर ही हो चुका था, लेकिन वह चुपचाप खड़ी हुई बाबा की तरफ़ देख रही थी। केशव बाबू का चेहरा उस धुंधली रोशनी में भी भारी और तमतमाया हुआ उसे दीख रहा था।

केशव बाबू ने एक भारी निसांस छोड़ी और टांगें फैलाकर तकिए के सहारे ज़रा और झुक गये। तब कड़ी आवाज में तुलसी ने कहा—"बाबा, पानी।"

तुलसी की आवाज कानों में पड़ते ही केशव बाबू उत्तेजित हो उठे। लड़की के हाथ पानी भेज दिया। अब इतनी अवहेलना होगी मेरी--नहीं चाहिए मुझे उसका एहसान !

"नहीं चाहिए पानी-वानी, लेजा ! जब भगवान ने आंखें ही छीन लीं, अन्न ही छीन लिया तब पानी पीकर क्या करूंगा !"

केशव बाबू ने अपनी अन्धी आंखों को तुलसी की आवाज़ के अन्दाज पर टिकाकर ग़ुस्से से कहा। पार्वती मा की इस अवहेलना ने केशव बाबू के पुरुष-मन को विरक्ति से भर दिया था।

"प्राणों से अधिक प्यार किया--उसका ये फल दे रही है मुझे ? इच्छा करते ही पचास विवाह कर सकता था। एक से एक बढ़ी-चढ़ी, इन्द्र की अप्सराएं इन चरणों पर शीश झुकातीं। बड़े-बड़े श्रीमान् और धीमान् जिसके आगे हाथ जोड़े खड़े रहते थे, उसकी अवहेलना करती है यह नारी ! आखिर तो ठहरी स्त्री की जाति, जवानी रहे की साथी।--फिर जरा-सा भी बुलाओ तो हजार नखरे.........पर दोष तो मेरा ही है। मैंने ही इसके लाड़ कर-करके सिर पर चढ़ा लिया है। जो यह कहती थी, करता था। इसका दिल न दुखे, इसलिए शिबू को इसके पास ही रहने दिया। इसके कारण ही मैं उसे पढ़ा-लिखा न सका, नहीं तो आज वह भी पांचू की तरह ही विद्वान् होता। अरे विद्वान् के बेटे विद्वान् ही होंगे--परन्तु यह मूर्खा मेरी क़दर क्या समझे ? फिर, अपने को बड़ी पतिपरायणा और बुद्धिमती समझती है। पत्थर पड़ें ऐसी बुद्धि पर ! आना चाहे तो सौ बहाने निकालकर आ सकती है। मगर नहीं, इसमें भी जैसे उसकी कोई जमा जाती है। दो घड़ी इस शुष्क जीवन में रस आ जाता है, सो भी इसे. . . ."

केशव बाबू के ख़ून में फिर गर्मी चढ़ने लगी। अपनी परवशता पर वह मन को मसोस-मसोस कर रह जाते थे। भूखे शरीर और भूखी वासना के घात-प्रतिघात से उनका मन जर्जर हुआ जा रहा था। सिर में चक्कर आने लगा। तन थकने लगा। सांस भारी चलने लगी।

केशव बाबू ऊब गये; हार गये। सारा मन खीझ से भर गया। अगर ये लड़के-बच्चे न होते तो अवश्य चली आती। लड़के-बच्चे, बहुएँ, पोती-पोते उन्हें ज़हर से लगने लगे। इन्हीं के कारण वह इच्छा करने पर अपने जीवन में रस नहीं पा सकते। पत्नी के ऊपर भी क्रोध आ रहा था--"इशारा नहीं समझती। पत्थर है पत्थर! अपनी इच्छा हो तो सारी दुनिया की आंखों में धूल झोंककर मेरे पास आ सकती है। परन्तु इच्छा करे तब न! दादी और सास बनकर वह भूल गई है कि पहले वह पत्नी है। शास्त्रों ने पत्नी के लिए पतिसेवा ही श्रेष्ठ धर्म बताया है।.....परन्तु किसका शास्त्र? किसकी पत्नी? ये सब मोह हैं। मायाविनी! नारी आख़िर है तो माया की ही मोहिनी। बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों की तपस्या भंग कर दी। अरे, दूर कहां जाऊँ--मुझे ही इसने पथभ्रष्ट कर दिया, अन्यथा आज लोक-परलोक सुधर गया होता मेरा। किन्तु नारी! नरक का द्वार! हरे! हरे! कहां इस गृहस्थी के माया-जाल में फँस गया? गोविन्द! गोविन्द! इस स्त्री ने मुझे बहुत लुभाया।"

केशव बाबू की अन्धी आंखों ने कोठरी में इधर-उधर दौड़कर चारों तरफ टांड़ों पर लदे हुए अनेक ग्रंथों और पोथियों के बस्तों को अनुमान से देख लिया। स्वयं शास्त्री, तर्करत्न, तिस पर विद्यावागीश के पुत्र! बड़े-बड़े इनकी विद्वत्ता का लोहा आज भी मानते हैं। ढाका-कॉलेज में संस्कृत के प्रोफेसर थे। इन अन्धी आंखों ने उन्हें कहीं का न रखा। और इस नारी, नरक के द्वार--

कोठरी के दरवाजे की कुण्डी धीमे से खनक उठी। सारा दर्शन, ज्ञान और पाण्डित्य कपूर की तरह पल भर में उड़ गया। "आई शायद--पसीजी"--केशव बाबू की अन्धी आंखें आशा की ज्योति से चमक उठीं। किन्तु 'चूं-चूं-चूं'--चिड़िया थी। कुण्डी पर आकर बैठी, और फिर पर फड़फड़ाकर उड़ गई।

केशव बाबू के मुंह से बरबस एक ठंडी आह निकल गई--"अरे, वह भला क्यों आने लगी। कुछ नहीं अब तो बस संन्यास ले लूंगा। ऐसे घर से लाभ ही क्या? ऐसी पत्नी से सुख ही क्या? यों ही देश के ऊपर ईश्वर का कोप हो रहा

है। और उसके ऊपर घर में अपनी पत्नी ही जब अपने सुख की शत्रु हो जाय........ हो जाने दो...नारी--नरक का द्वार ! गोविन्द ! गोविन्द !"

काम-वासना की उत्तेजना क्रोध बनकर फिर धीरे-धीरे, मन ही मन में, विरक्ति भाव धारण कर मन को संन्यासी बना चुकी थी। परन्तु यह कोई नई बात नहीं। ऐसा अकसर होता है। केशव बाबू का पुरुष-मन जब रस नहीं पाता तो संन्यासी हो जाता है। और एक बार तो ऐसे ही संन्यासीपन के 'मूड' में उन्होंने खिझला कर दीवाल से अपना सिर फोड़कर खून निकाल लिया था। जब संन्यास आता, तब शंकराचार्य की चर्पट-मंजरी का पाठ आरम्भ कर देते हैं। आज भी हारे हुए संन्यासी मन ने चर्पट-मंजरी की शरण ली। विरह कातर क्षीण वाणी को संन्यास का कुश्ता चटाने लगे--

'का तव कान्ता कस्ते पुत्रः
संसारोऽयमतीव विचित्रः
कस्य त्वं वा कुत आयातः
तत्वं चिन्तय तदिदं भ्रातः

भज गोविन्दं भज गोपालं गोविन्दं भज मूढ़ मते।

शिबू की बहू चूल्हे के पास बैठी थी। मंगला चूल्हे में जलाने के लिए लकड़ियां लेकर आई थी; वहीं खड़ी थी। पार्वती मा ज़रा दूर पीढ़े पर बैठी थीं। बाबा की कोठरी से चर्पट-मंजरी सुनाई पड़ने लगी। शिबू की बहू ने मतलब-भरी आंखें ऊपर उठाईं। मंगला की आंखों से मिलीं। दो जोड़ी होठों पर शैतान मुस्कराहट खिलवाड़ कर गई।

सास की तरफ मंगला की पीठ थी, शिबू की बहू ने अपनी मुस्कराहट छिपाने के लिए मुंह फिरा लिया; फिर भी पार्वती मा से छिपा न रहा। पद-गौरव और बुढ़ापे की झुंझलाहट बेबसी में झेंप बनकर रह गई। बहुएँ जानती हैं, सास भी स्त्री है।

चर्पट-मंजरी 'भज गोविन्दं, भज गोपालं' तक पहुँच गई थी। यदि कुछ देर तक और इसी तरह 'मूढ़ मते' को गोविन्द-गोपाल भजने पड़े तो सिर फोड़ने की

नौबत आ जायगी, यह डर पार्वती मां को समर्पण के लिए धीरे-धीरे प्रस्तुत कर रहा था। अठारह-बीस साल की जवान बहुओं की कक्षा में बैठते हुए सुहागिन सास की उम्र का अड़तालीसवां बरस बूढ़ी लाज के घूंघट से जवान बनकर झांकने लगा—"फिर क्या किया जाय नहीं मानते तो............!"

पर जवान कुंवारी बेटियों के आगे, दिन दहाड़े संन्यासी पति को फिर से गृहस्थ बनाने के लिए जाते हुए बूढ़ी सुहागिन के पैर कैसे उठेंगे ?

चर्पट-मंजरी का पाठ चल रहा था—"प्राप्तेसन्निहिते मरणे........."

"तुलसी ! जा बेटी, रामतनु की घरवाली से पूछ तो आ, एकादशी कब की है ?"

अंधे को जैसे आंखें मिल गई । तुलसी चल दी। कनक को एक ही संदेश मिला था, वह भी उठ खड़ी हुई—"मैं भी जाती हूं मां !"

"तू क्या करेगी चलकर ?" तुलसी भड़की ।

मंगला तुलसी को कड़ी निगाह से देखकर बोल उठी—"ले जाओ न उसको। कनक, दीनू, परेश को भी ले जाओ। और तुम लोग सब मामा के पास ही रहना—अच्छा !"

तुलसी झुंझला उठी—"तो फिर कनक ही पूछ आये न; मैं क्या करूंगी जाकर ?"

"......पुत्रादपि धनभाजां भीतिः......" बाबा की कोठरी बोल रही थी।

मां तड़ककर बोली—"ले क्यों नहीं जाती उसे ? बिचारी दिन-भर से कहीं गई नहीं, आई नहीं । और वो भला क्या पूछेगी एकादशी-दुआदशी ? खेल में भूल जायगी, मेरा बरत रह जायगा। जा, और दिया-जले से पहले ही लौट आना—भला ! और किसी को संदेश न मांगने देना, सुना ?"

कनक, दीनू और परेश पहले ही जा चुके थे। तुलसी गुस्से में मुंह लटकाए सुनी-अनसुनी सी करके तेजी से निकल गई ।

कोठरी में आवाज़ तेज़ी पकड़ रही थी--"भज गोविन्दं, भज गोपालं--भज गोविन्दं, भज गोपालं......"

"उँह, मौत भी नहीं आती मुझ नसीबोंजली को।" कहते हुए पार्वती मा पीढ़े से उठीं। खड़े-खड़े एक सेकंड के लिए ठिठकीं, फिर कोठरी की तरफ सिर झुकाए हुए चल दीं।

बड़ी बहू और मंगला ने आज़ादी के साथ मुस्कराने के लिए सिर उठाया। सास का पीढ़ा पास खींचकर उस पर बैठते हुए मंगला ने कहा--"तुम क्यों हँसती हो रानी? जब सास बनोगी तब मालूम पड़ेगा। ज्याठा मोशाई आखिर हैं तो अपने ही बाप के बेटे। तुझे बुढ़ापे में माला जपने के लिए छोड़ थोड़ी देंगे!"

मज़ाक करने का होसला और चेहरे की मुस्कराहट एकदम से गायब हो गई--"जान दे दूंगी, अगर ऐसी नौबत आयेगी तो।"

बात कहते-कहते बड़ी बहू का चेहरा तमतमा उठा। अपनी बेबसी से विद्रोह करते हुए वह केवल मौखिक रूप से ही जान दे सकती है, बड़ी बहू इसे अच्छी तरह जानती है। तन की मशीन जिंदा रखनेवाली अन्तिम सांस तक वह अपने स्वामी की मिल्कियत है। पारसाल एक सौ तीन डिगरी के भरे बुखार में भी न छोड़ा था--मरने-से बची थी उस बार।

बड़ी बहू सिहर उठी। भूख की कमज़ोरी से दिमाग की उत्तेजना उसे चक्कर देने लगी। किसी तरह अपने को सँभालकर एक उसांस लेती हुई बोली--"स्त्री-जीवन भी भला कोई जीवन है! मा पर तरस आता है मुझे तो।"

"पर मैं कहती हूँ, दोष इसमें मा का ही है। कठोर बन के बैठ जांय, बाबा कर ही क्या लेंगे? एक बार सिर फोड़ेंगे, दो बार फोड़ेंगे--अंत में पित्ते मार कर आप ही बैठ जायेंगे।"

"भोला-भाला पा गई है न! सारी दुनिया के मरदों को ठाकुर-पो जैसा ही समझती है तू तो। उनके ऐसा--"

चुन्नी जाग पड़ी थी, रोना शुरू हो गया था। दालान की तरफ़ एक बार देखकर बड़ी बहू बात कहते-कहते रुक गई। तन और मन की थकान चेहरे और आंखों के भावों में उभर कर सामने आई। रीढ़ की हड्डी उचकाकर पीठ को तानते हुए बड़ी बहू ने दीनता-भरे स्वर में मंगला से कहा—"उसे उठा तो ले फूल! मेरे बदन में तो सत नहीं रहा।"

चुन्नी के रोने और मा के फ़र्ज़ में आत्मीयता की नाज़ुक डोर गज-ग्राह द्वन्द्व-सी खिंच रही थी। दूध उतरता नहीं; नन्हीं-सी जान रोते-रोते सदा के लिए ख़मोश हो जायगी। मां अपनी छातियों में दूध कहां से पैदा करे? और अपने कलेजे की कोर के बिलख-बिलखकर भूखे मर जाने की कल्पना से मा का दिल अपनी पूरी शक्ति के साथ क्यों न भड़क उठे? क्यों न चीख़ उठे?

चुन्नी के आंसू बड़ी बहू की आंखों में आ गये। आंसू आते गये, बढ़ते गये। गोदी के बच्चे की तरह उसका बेबस मन अपने शरीर की ज़िम्मेदारियों को उठा सकने में अशक्त होने के कारण हुमड़-हुमड़कर रोने लगा।

चुन्नी के रोने की आवाज़ बराबर नज़दीक आते-आते बड़ी बहू के कानों में कहीं गुम हो गई। चुन्नी को लेकर मंगला रसोई-घर में आ गई थी। चुन्नी—बड़ी बहू को सावन बरसाती हुई आंखों ने उसे 'शायद' देखा—आंखें अपनी आदत से लाचार होकर सिर्फ़ अपना फ़र्ज़ अदा कर रही थीं, लेकिन मन उनसे अलग होकर आंसुओं में डूबता जा रहा था। डूबता ही चला गया—कहीं थाह नहीं, कहीं थाह नहीं। मन के पैर उखड़ने लगे, दम घुटने लगा। दिमाग़ नहीं, शरीर नहीं, सिर्फ़ दम है—और वह आंसुओं के बोझ से दबता जा रहा है, घुटता जा रहा है, घुटता जा रहा है। आंसुओं से होश का साथ अब छूट रहा है। अंधेरा, भूरा, मटमैला-सा धुआं-धुआं—"

'फूल, ओगो!'

कहीं असीम-अनन्त से फिर प्राणों के साथ शरीर का नाता जुड़ता हुआ जान पड़ा। प्राण हिल रहे हैं, ऊपर उठ रहे हैं। शरीर हिल रहा है। कहीं दूर से एक परिचित स्वर सुनाई पड़ रहा है—"फूल, ओगो।"

डूबते हुए मन को शब्दों का सहारा मिला। चेतना से दूर उस अँधेरे में वे परिचित शब्द प्राण और चेतना के बीच की टूटती हुई कड़ी को जोड़ रहे हैं—"फूल, ओगो—ओगो!"

ये शब्द उस दम घोंटनेवाले अँधेरे से उसे उबार रहे हैं। उसे संतोष मिल रहा है। प्राणों में उत्साह आ रहा है। आंसुओं के वेग को चीर कर वह उस परिचित स्वर को अपनी चेतना का संदेश सुनाना चाहती है।

स्वर का उद्वेग बढ़ रहा है। प्राण फिर तेज़ी से अपनी शक्तियों का संचय कर रहे हैं। आवाज़ को अपनी ताक़त मिल रही है। आवाज़ अपनी पूरी ताक़त के साथ कहना चाहती है, कहती है—"ह-अ-आं, ह-अ-आं!"

मंगला हक्की-बक्की सी हो गई थी। चुन्नी को लेकर आई। देखा, बहू-फूल रो रही है। अरे क्या हुआ, क्यों रो रही है? कितना ही पूछो, कुछ जवाब नहीं देती। रोती जा रही है, फूट-फूट कर रो रही है। हिचकियां घुट-घुटकर आ रही हैं। उसने देखा, बड़ी बहू का शरीर अपने काबू में नहीं रहा है। गिरना ही चाहती है। उसकी गोद में चुन्नी थी। वह भी रो रही थी। मंगला पल भर के लिए तो घबरा गई। फिर अपने को झटपट संभालकर चुन्नी को जल्दी से वहीं ज़मीन पर लिटा दिया और बड़ी बहू को लपककर उसने दोनों हाथों से रोक लिया। बड़ी बहू के कंधों को ज़ोर से झकझोर कर उसने घबराहट के साथ पुकारा—"फूल, ओगो—फूल, फूल!"

बड़ी बहू बोली—"हँ...! हां!"

"क्या हो गया है तुम्हें? अरी बोलती क्यों नहीं, बोल ना?"

बड़ी बहू ने अब तक अपने को काफ़ी सँभाल लिया था। वह सुबकियों से लड़ रही थी। सुबकियों को काफ़ी तौर पर उसने अपने कब्ज़े में कर लिया। गला खखारकर साफ़ किया।

"अरी क्या हो गया तुझे?" मंगला ने फिर पूछा, और अपने आंचल से उसके आंसू पोंछती हुई बोली—"पागल कहीं की। इस तरह अपने को

मिटाते हैं भला। पगली, कहीं की बात कहां जोड़ ले गई। ले, लड़की को संभाल। रोते-रोते गला बैठा जा रहा है बिचारी का।"

मंगला ने चुन्नी को उठाकर उसकी गोद में दे दिया। बड़ी बहू ने अब तक अपने को अच्छी तरह संभाल लिया था। आंखें और नाक अपनी धोती के पल्ले से पोंछकर उसने चुन्नी को ठीक तरह से अपनी गोदी में लिटा लिया और घुटने हिलाते हुए उसे थपकियां देकर चुप कराने लगी।

मंगला की सपनों-भरी आंखें बराबर अपनी सहेली के चेहरे को ही टकटकी बांध कर देख रही थीं। जिस दिन से इस घर में आई, उसी दिन से इन दोनों में बहनापा जुड़ गया। एक दिन के लिए भी देवरानी-जिठानी बनकर नहीं रहीं। ब्याह के बाद एक बार मंगला मैके गई थी तो सास से कहकर इसे भी अपने साथ ले गई। बड़ी बहू के मां-बाप नहीं थे। मामा ने किसी तरह ब्याह के बाद अपना पिंड छुड़ाया और फिर कभी नाम भी न लिया।

बचपन में मामा की लड़की बहन थी जो सदा इसे दुतकारती रही, घर में मामी ने इसे नौकरानी की तरह जोत कर रखा, इसलिए बाहर कोई सखी-सहेली मिल न पाई। इस घर में आई तो क़िस्मत बदल गई। उसे सास नहीं मिली, मां मिली। पांचू, तुलसी, कनक, बाबा—सभी उसे इतने अच्छे मिले थे। शुरू-शुरू में तो शिबू भी उसे अच्छा लगता था। अब भी वह उसे प्यार करती है, लेकिन—

बड़ी-बहू और मंगला की आंखें मिलीं। आंखें चार होते ही रिश्ता प्यार की गहराई में उतर गया। गोली-गोली आंखें अनुराग से चमक उठीं। होंठ फड़के। दो जोड़ी होंठों पर प्यार-भरी मुस्कान की रेखाएं खिंच गईं।

"शैतान कहीं की! रो-रो के मेरा जी दहला दिया कमबख़्त ने!" मंगला रसोईघर के दरवाज़े की तरफ़ मुड़ते हुए बोली—"एक तो भूख की मारी, दूसरे तेरी ये रोनी सूरत देखकर चक्कर आ गया मुझे तो। पानी पियेगी, पीले थोड़ा-सा; लाती हूं।"

अपनी फूल का हां-ना कुछ सुने बिना ही मंगला रसोईघर के बाहर चली गई! बडी बहू छिन-भर तो दरवाजे की तरफ़ देखती रही, फिर चुन्नी को गोदी से उठाकर अपनी छाती से चिपका लिया। चुमकारने लगी--"आ-आ-आ...!"

चुन्नी बहलती नहीं। अब तो रोया भी नहीं जाता। हांफ रही है। बड़ी बहू ने हारकर अपनी छाती खोलकर उसका मुंह लगा दिया। चुन्नी चुप हो गई। दूध उतरता नहीं। भूख की बावली नन्हीं-सी जान मा का स्तन खींच-खींच कर अपनी खूराक के लिए जाने लड़ाए दे रही है। मा को तकलीफ हो रही है; लेकिन यह तकलीफ़ इस वक्त बरदाश्त कर सकती है। बड़े जो पाप करते हैं, उसका ये फल भोग रहे हैं। लेकिन इस बिचारी बच्ची ने ऐसा कौन सा पाप किया है जो धरती पर आते ही इसे ये अकाल के दिन देखने पड़े!

"ले पानी।" मंगला ने पानी का गिलास लिए हुए रसोई-घर में प्रवेश किया।

बड़ी बहू की विचार-धारा टूटी। फीकी हँसी हँसकर गिलास के लिए हाथ बढ़ाते हुए बोली--"हम लोग तो पानी पी-पी कर जी लेंगे फूल, पर इसका क्या होगा?"

"क्या होगा?" इस प्रश्न का उत्तर दोनों जानती हैं, यही नहीं, बल्कि उन्हें मालूम है, सारा गांव जानता है, सारा बंगाल जानता है, फिर भी मौत का नाम लेते हुए हर एक की जबान लड़खड़ाती है। दिल दहल उठता है।

मंगला चुप हो गई। गम्भीर हो गई। भूख को व्रत का बहाना देकर सारा घर आज चार दिन से टाल रहा है। घर में अनाज भरा हो तो चार दिन क्या, आठ दिन भी व्रत रखा जा सकता है, पर यहां? कुछ नहीं, आते होंगे चावल ले कर।

"अरे अभी आते होंगे चावल ले कर। तू घबराती क्यों है?" मंगला सांत्वना देती हुई बोली--"भगवान् सब ठीक करेंगे। ला, चुन्नी को मुझे दे। खींच-खींचकर जान निकाल लेगी तेरी।"

पास आकर चुन्नी को बड़ी बहू की गोद से ले कर मुस्कराते हुए चुन्नी की ओर देख कर मंगला बोली—"अरी बस कर। सब दूध तू ही मत पी जा; कुछ अपने होने वाले भाई-बहिनों के लिए भी छोड़ दे।"

उसने चुन्नी को अपनी गोद में खींच लिया। खूराक पाने के उस भूखे सहारे को चुन्नी किसी तरह भी छोड़ना नहीं चाहती थी। वह पूरी ताकत से मा की छाती को अपने मसूड़ों से दबा कर जोंक की तरह चिपकी ही रही। बड़ी बहू का भूखा और कमजोर तन इसे बर्दाश्त न कर सका। तिलमिला उठी—"सीः आहः, कमबख़्त मर!"

गाली देना चाहती थी। तमाम हिन्दुस्तानी माताओं की तरह बड़ी बहू को भी अपने बच्चों को गालियां देने की आदत थी। "मर जा! भाड़ में जा!" वग़ैरह क़िस्म के आशीर्वाद वह दिन में पचासों बार अपने बच्चों को दिया करती थी। और अगर कोई इस पर कुछ कहता तो जवाब देती—"मां की गालियों से ही बच्चे अगर मरते तो ये दुनिया आज न दिखाई देती।" मगर आज चुन्नी को मर जाने की गाली देते हुए बड़ी बहू की आत्मा बेसाख़्ता चीख़ उठी। यों बिना बुलाए ही मौत हर घड़ी मेहमान बनने को तैयार रहती है। ज़बान से 'उफ़' निकालने में सांस के तार टूटते हैं। तब भला ये गाली........!

बड़ी बहू का जी उस गाली को वापस लेने या बे-असर करने के लिए अंदर ही अंदर बेताब हो घुटने लगा—"ये बच्चे सलामत रहें। सब आदमी सलामत रहें। मुसीबत तो आती जाती रहती है। राम करे सबकी मौत मुझे........"

मौत जब दूर थी, गांव में कभी-कभी किसी के यहां आया करती थी, तब उससे इतना डर न लगता था; लेकिन आज मौत सिर पर नाच रही है। इस लड़ाई और अकाल का लाभ उठा कर मौत अपनी भूख को बेतरह से इजाफ़ा दे रही है, इसलिए आज बड़ी बहू बच्चों से लेकर अपने तक, किसी के लिए भी, मौत नहीं चाहती। वह मौत से भागना चाहती है, जान चुराना चाहती है।

तभी सदर दरवाजे पर शिबू की आवाज़ सुनाई पड़ी--"निःशंक होक मोशाई! मैं तुम्हारा लीडर हो कर एस० डी० ओ० के यहां चलूंगा, आमि गभरमेन्ट के बोलबो, जे शाला तूमि आमार देश को भूखा मार डालोगे ?"

शिबू के साथ और दो-तीन लोग दहलीज़ पार कर अब दालान में आ चुके थे। शिबू आगे, उसके पीछे सोमेन, पांचू का अनन्य मित्र। वह अकसर पांचू के साथ घर आता है। बड़ी बहू, मंगला, सभी उसे जानते हैं।

शिबू सबको ऊपर अपने कमरे में लिए जा रहा था।

चुन्नी अभी भी रो रही थी। शिबू ने रौब जमाया--"अरे क्यों रो रही है चुन्नी? उसे दूध पिला दो--और...?

शिबू ने अपने साथियों की तरफ़ देखकर कहा--"तुइ चाय खाबी शोमेन? अच्छा, चार-पांच प्याला चाय भी बना देना। और थोड़ा सा नाश्ता भी--हलुवा बना लेना। और कुछ नमकीन भी? अच्छा नमकीन भी सही, सुना। हां तो वाट आई वाज स्पीक...हां, गभरमेन्ट..."

शिबू और उसके साथी सीढ़ियां चढ़ कर ऊपर जा चुके थे। मंगला और बड़ी बहू एक-दूसरे को देखकर मुस्कराने लगीं। बड़ी बहू बोली--"चाय बनाओ रानी! और हलुवा भी बना लेना। भंडारघर खाली हो जाय तो मोनाई के यहां से रवा और शक्कर के बोरे खुलवा लेना। कल तुम्हारे ज्याठा राजा तगड़े बनकर सुराज लेने जायेंगे।"

"स्वराज? अरे आई नो, तूमि मांगो स्वराज,--एण्ड दे बोले, जे तुम शाला हिंदुस्तानीलोक, यू वाण्ट स्वराज? आच्छा शाला, आमि तोमाके जमराज देबो।" ऊपर शिबू जी लीडराना मूड में चहक रहे थे--"अरे बाबा, आमि जानी, एइ तो गभरमेन्टेर पालिसी। एइ शाला चालीस कोटि भारत मातार शोन्तान खिदे पेये विल डाई, फेमीन विल एण्ड और तब शाला हू आरक स्वराज? शे बोलबे आमि ब्रिटिश गभरमेन्ट! इण्डिया इज अवर थिंग--आमार बोरतु!"

शिबू की लीडरी में एक शान है--दस हों, हजार हों, दस हज़ार हों, किसी को बोलने नहीं देता। यह काम वह सिर्फ़ अपने ज़िम्मे ही

रखता है। लोगों को लीडर की जरूरत हो या न हो, मगर शिबू मुखर्जी हर वक्त लीडर हैं। कांग्रेस से लेकर कम्युनिस्ट पार्टी तक और हिंदू महासभा से लेकर मुस्लिम लीग तक, मनुष्य मात्र के जन्मजात लीडर शिवगोपाल मुखर्जी अभी कुछ देर पहले अचानक ही घोषपाड़ा अकाल-निवारिणी महासमिति के दफ्तर में पहुंच गये थे। सोमेन उसका सहायक मंत्री है। दफ्तर में कुछ युवक बैठे हुए तय कर रहे थे कि एक डेपुटेशन ले कर एस० डी० ओ० से मिला जाय। शिबू फौरन लीडर बन गया।

एक बार लीडरी संभाल लेने पर शिबू मुखर्जी को फिर कोई टस से मस नहीं कर सकता। सन् ४२ के अगस्त-आंदोलन में पहली बार शिबू मुखर्जी को लीडरी का खयाल आया था। पांचू का स्कूल उस वक्त जोरों से चल रहा था। सात गांवों में पांचू के नाम का फेरा लगता था। पांचू का बड़ा भाई होने के कारण शिबू अपने को स्वाभाविक रूप से बड़े नाम और बड़े काम करने का अधिकारी समझता था। अगस्त-आंदोलन ने स्फूर्ति दी। देश-हित के लिए शिबू मुखर्जी ने एक बहुत अच्छा उपाय सोच निकाला।

आंदोलनकारियों पर लाठियां और गोलियां कौन बरसाता है?--पुलिस। इसलिए अगर पुलिस को रोक दिया जाय तो आंदोलन सफल हो जाय! यह सोचकर शिबू मुखर्जी ने एक फावड़ा लिया और जाकर कोतवाली के सामने की सड़क खोदने लगे। पकड़े गये तो 'इन्कलाब जिंदाबाद' का नारा लगाया। फिर पुलिस वालों को अपने प्रचंड रूप का परिचय देकर डराना चाहा--"आमा के ठीक करे बूझो ना तूमि, भाबचि। ताइ जन्मेइ-जान्नाच्चि, जे कलिजुगे आमि चानक्येर अबतार। ब्राह्मोन शॉन्तान आमि। एके बारे जॉड़ खोद डालेगा शाला!"

बाद में जब बेंत पड़ने लगे तो दूसरे ही बेंत पर पुलिस अफ़सर के पैर पकड़ लिये। माफ़ी मांगने लगे। छोड़ गये। बात फैल गई। लोग चिढ़ाते हैं; मगर इस से उनकी लीडरी पर जरा भी आंच नहीं आती।

सोमेन आजिज आ चुका था। पांचू के कारण सोमेन भी शिबू का अदब

करता है। मगर अदब की भी एक हद होती है। शिबू किसी हद को मानता ही नहीं। अकाल निवारिणी महासमिति के सब सदस्य शिबू के आते ही एक-एक करके चले गये। सोमेन बेचारा फंस गया। पास के गांव से दो युवक उससे सलाह-मशविरा करने आये थे, उन्हें भी उसके साथ ही साथ परेशान होना पड़ा। जान छुड़ाने के लिए सोमेन ने दफ्तर बंद किया तो दादा उसे और उसके साथियों को जबर्दस्ती अपने घर ले आये। रास्ते भर अंगरेजों की पालिसी, स्वराज्य लेने के नुस्खे और एस० डी० ओ० को सुनाने काबिल गालियों की लिस्ट, उसे और उसके साथियों को अकाल पीड़ितों की सेवा करने का विचार त्याग देने पर मजबूर करती रही। जान छुड़ाने के लिए सोमेन के सारे बहाने और हीले-हवाले खत्म हो गये, जबान बंद हो गई, मगर (पांचू के शब्दों में) दादा की 'मेड इन इण्डिया' अंग्रेजी का धाराप्रवाह भाषण बंद न हुआ।

दादा को अपनी इस 'मेड इन इण्डिया' अंगरेजी पर भी नाज है। जोर-शोर से बोलते हैं, जबर्दस्ती बोलते हैं। और नोजवान कौमी कार्यकर्ताओं के सामने जब कभी मौका पा जाते हैं तब तो खास तौर पर इस स्वदेशी-अंगरेजी का प्रचार करने के लिए बोलते ही चले जाते हैं—"शाला यू मेड दि अवर स्लेव, आमि शाला मेड फेलिबो योअर दि लैंगवेज दि स्लेव। एज-एज, आमि हार्सेर मुखे लागाम देबो, एण्ड दैन ह्वैन आमि एकटू वेरी बिग फोर्स ए लागाम बिल बी पुलिंग एण्ड तोमार हार्स जखन आमि शड़ाक-शड़ाक दुइ हाण्टर मारबो शाला ! —योर हार्स ड्राउन इन सी एण्ड यू गो इंगलैण्ड शाला।"

सोमेन बार-बार अपनी घड़ी देख रहा था। साढ़े पांच बज रहे थे। सोमेन के साथी परेशान होकर उसकी सूरत देख रहे थे। मगर लीडर किसी बात की परवाह नहीं करता। वह अपनी ही धुन में मस्त है। बांह पकड़-पकड़ कर अपनी बात सुनाता है।

आखिर सोमेन को एक तरकीब सूझी—"दादा, तो कल डेपुटेशन लेकर चलना है न?"

दादा को झटका लगा—"चलना माने की, अरे आई गो......"

जबर्दस्ती बात काटकर सोमेन बोला--"मगर हम नहीं चाहते कि हमारा लीडर मामूली ढंग से एस० डी० ओ० के पास जाय।"

"दैट्स राइट। दैट्स राइट..."

सोमेन ने शिबू को इससे आगे बोलने ही न दिया। ज़ोर देकर बोला--"तो बस, मैं जाता हूँ। जुलूस का प्रबन्ध करता हूँ। आज दस गांवों के आदमी इकट्ठा करके आपका जुलूस निकाला जायगा। तब असर पड़ेगा।"

"शेइ आमि चाइ..."

लीडराना रौब से शिबू ने फिर बोलने की कोशिश की। सोमेन तड़ से उठते हुए बोला--'बस, अब आप अंगरेजी में एक अर्ज़ी लिख डालिए। पांचू को दिखा लीजिएगा। मैं जाता हूँ।

शिबू की महत्ता को सोमेन की जल्दबाजी ने भूल से टोंचा मार दिया--"पांचू क्या देखेगा? ह्वाट ही सी माई इंगलिस? अरे, आई टीच हिम टेन इयर्स।"

सोमेन ने मन-ही-मन अपने कान पकड़े और फौरन ही बिगड़ी बात बनाने के लिए बोला--"आप मेरा मतलब नहीं समझे दादा! दिखाने से मेरा मतलब यह है कि गांव के सब आदमियों को वह अर्ज़ी दिखानी तो पड़ेगी ही। पहले पांचू को दिखाकर दस्तख़त करा लीजिएगा।"

गम्भीरता के साथ शिबू ने जवाब दिया--"पांचू के दस्तख़त पहले नहीं होने चाहिए--एस० डी० ओ० सोचेगा, हेडमास्टर नो प्राइस--वो कौड़ी का। लीडर माने लीडर। रौब पड़ेगा। जनता के लीडरों के दस्तख़त पहले चाहिए। तुम बैठ जाओ। मैं लिखता हूं, तुम दस्तख़त करो, एज़ वन लीडर एण्ड..."

"तब फिर पहले दस्तख़त आप ही कीजिए। बल्कि अकेले आप ही बंगाल के लीडर की हैसियत से दस्तख़त कीजिए। और हम जाते हैं जुलूस का प्रबन्ध करने। चलिए, आइए।" उसने अपने साथियों से कहा और एक सेकंड भी न रुका।

३

दयाल जमींदार के यहां पांचू यह आस लगाकर गया था कि सहारे के लिए एक और जुगात लगाएगा सो उलटे ट्यूशन भी गई। जमींदार अपनी पत्नी और बच्चों को कल पछांह भेज रहे हैं। भुखमरों की बढ़ती हुई लूटपाट और हमलों से दयाल भी डरते हैं। डाकू को डाकुओं का डर है। पचास भोजपुरिये लठैत और दो-दो बंदूकें पास रख कर भी सपनों में चौंक-चौंक उठते हैं कि कहीं...!

दयाल वर्ग के प्रति पांचू का निष्क्रिय विद्रोह अपनी असमर्थता पर व्यंग बन कर उसके मस्तिष्क में चुभ रहा था। अंतर्चेतन मन में छिपा हुआ यह व्यंग पांचू को चिढ़ा रहा था। अपनी इस खीझ को उलट-पुलट कर अनेक पहलुओं से देखते हुए सोचने लगा कि हमारी कमजोरी ने ही उन्हें बढ़ावा दिया है। हमारे निष्क्रिय त्याग और सहनशीलता ने ही इनकी स्वार्थी प्रवृत्तियों को हम पर अधिकाधिक अत्याचार करने को उकसाया है। सदियों की आदत ने इन्हें एक झूठा बल दे दिया है। मंदाग्नि रोग से पीड़ित, चर्बी बढ़े हुए फुसफुसे बदन के मसनदी-गद्दों के आगे तगड़े से तगड़ा पहलवान भी एड़ियां रगड़ने लगता है। बड़े से बड़ा बुद्धिमान भी इन कुंदज़हन पैसे-खोरों की अक्ल को इनकी तिजोरी की तरह बड़ी बता कर अपने अस्तित्व को साफ भुला देने में अपनी रक्षा समझता है। यह सब इसलिये न कि इनके पास पैसा है।

एक दयाल, एक मोनाई, गांव भर का अनाज खा जाता है, गांव भर के कपड़े पहन लेता है। हमारी खूराक, हमारे तन ढकने के कपड़े, उनकी तिजोरियों में नोटों के बंडल, सोने चांदी और हीरे जवाहिरात के तोड़ों की शक्ल में हिफ़ाजत से रखे हैं। उनकी हिफ़ाजत के लिए भोजपुरिये लठैत हैं, बन्दूकें हैं, पुलिस है, कानून है--और हमारी हिफ़ाजत......?

पांचू की झुकी हुई आंखें मोहनपुर की ओर उठीं। दयाल जमींदार की हवेली गांव-हद के पार थी। पांचू अब मोहनपुर में प्रवेश कर रहा था। झोंपड़ियां दिखाई पड़ने लगीं। अब तो इन्हें झोपड़ियां कहना भी पाप होगा—मिट्टी की चार टूटी हुई दीवालों के ढूह, जिनके बांस बिके, छप्पर बिके, चिथड़े-गुदड़े बिके, घर-गिरस्थी लुटी।

दो बच्चों की नंगी लाशें पड़ी हुई थीं रामू की झोपड़ी के पास। बच्चे शायद रामू के ही हैं। पांचू से रहा न गया। पास जाकर देखा मौत अभी बच्चों के साथ खेल ही रही थी। घड़ी-पल के मेहमान हैं। रामू की बहू बहुत पहले ही भाग गई थी और रामू लुटेरों में मिल गया था। घर-बार, मां-बाप, सब साथ छोड़ गये, बस ये थकी-थकी सांसें, एक-एक कर पल-दिन गिनती, किसी तरह अपना फ़र्ज पूरा होने तक साथ दिए जा रही हैं।

पांचू मौत को बहुत नजदीक से देख रहा था, बहुत गौर से देख रहा था! इस अकाल में यही हालत एक दिन उसकी और उसके घरवालों की...। लेकिन अभी तो उसके पास चावल है। घरवाले उसकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे—ह्रानू-परेश, नन्हीं-सी चुन्नी, कनक......

पांचू फ़ौरन ही वहां से हट आया और तेजी से अपने घर की तरफ़ चलने लगा।

यह फ़जलू काका अपनी झोपड़ी से टीन निकाल रहे हैं, बेचने के लिए। और यह पेड़ के नीचे बूढ़ी खेत्रमनि, कमर में एक लंगोटी लगाए दोनों हाथों से मिट्टी की एक हँड़िया थामे, सिर झुकाए खोई हुई-सी बैठी है। कभी गांव भर की परिक्रमा किया करती थी। पांचू ने इसका नाम नारदजी रख छोड़ा था। ब्राह्मणों के टोले से यह मछुओं की बस्ती की ओर कैसे चली आई? यह भी एक दिन योंही बैठे-बैठे मर जायगी। रामू के बच्चे तो शायद अब तक मर गये होंगे। उन्हें कौन उठायेगा? योंही लाशें सड़ती रहेंगी? क्या आदमियों की लाशें योंही सड़ती रहेंगी। क्या एक दिन उसकी भी लाश इसी तरह...?

पांचू ठिठका। उसकी तबियत हुई कि लौटकर बच्चों को देख आये। लेकिन उसे घर जाना है। दीनू-परेश, चुन्नी-कनक, सब भूखे होंगे।

रामू के बच्चों की लावारिस लाशों से लेकर अपनी कल्पना तक, सारी विचार-धारा से हठपूर्वक मन मोड़कर, वह आगे बढ़ा। कदम तेजी से आगे बढ़ रहे थे।

यह बेनी की झोपड़ी है। बेनी वो बैठा है। अपने घुटनों पर सर झुकाये उसकी पत्नी बैठी है। दो महीने पहले ही उसका ब्याह हुआ था। नई जवानी, नई उमंगें और यह अकाल। बंसी बजाने में बेनी अपना सानी नहीं रखता था। पांचू ने देखा, दोनों की जवानी बूढ़ी हो गई है। पास-पास बैठे रहने पर भी न औरत को मर्द का होश है, न मर्द को औरत का। पांचू सोचने लगा अकाल-पीड़ित नव-दम्पति का यह मधुचन्द्र ..... उसे मगला की याद हो आई--वे सपनों-भरी आंखें, उसका अल्हड़पन उसकी मुस्कराहट .....

चार दिन से वह भी भूखी है। पांचू के कदम और तेज पड़ने लगे।

आंखों के सामने, थोड़ी ही दूर पर मोनाई की दूकान थी। मांस की पतली-पतली झिल्लियों में चमकती हुई खुदा की खुदाई डगमगाते हुए कदमों से इधर-उधर डोल रही थी। गड्ढों में धंसी हुई डगर-डगर आंखें, घूर-घूर कर, अन्न के एक दाने की तालाश में मोनाई की दूकान के आस-पास मंडरा रही थीं। कितने ही नर-कंकाल झुके हुए, जमीन में चावल की सिर्फ़ एक कनी को खोज रहे थे। बेतरतीबी के साथ उनकी दाढ़ियां बढ़ी हुई थीं। औरतों के बाल अस्त-व्यस्त, तमाम जिस्म की नसें और हड्डियां चमक रही थीं। बच्चे इन्सान के बच्चे नहीं मालूम पड़ते--ये समूची बस्ती ही इन्सान की बस्ती नहीं मालूम पड़ती।

झुटपुटी सांझ धीरे-धीरे घिर रही थी। उसके मद्धिम उजाले में ये हिलते-डोलते प्राणी ......

पांचू सोचने लगा, रईसों और अफ़सरों की दुनिया में क्या इन इन्सानों को कोई इन्सान मानेगा ? वे इन्हें भूत कहेंगे, भूत। हालांकि वे खुद मुर्दा इन्सा-

नियत के भूत बनकर हमारे सिरों पर सवार हैं। हमारी भूख की नींव पर उन्होंने अपनी सोने की हवेलियां बनवाई हैं। आदमखोर, हैवान!......

शहर के राजनीतिक वातावरण में पनपा हुआ पांचू का दिमाग़ इस समय शौक़िया तौर पर जोश खा रहा था। उसके पास इस समय पांच सेर चावल है। वह आज खाना खायगा। चावल पाने के पहले वह भी भुखमरों में से एक था। वह भी भूख की तकलीफ़ को उसी तरह महसूस कर रहा था जैसे कि ये चलते-फिरते-नर कंकाल। लेकिन यह संतोष कि उसे और उसके परिवार को आज भोजन मिलेगा, उसे तमाम भुखमरों से अलग किये दे रहा है। इसके साथ ही साथ वह यह भी जानता है कि उसका यह संतोष अस्थायी है। उसका मन इसलिए इन भुखमरे साथियों का साथ छोड़ने से इन्कार करता है। परसों से उसके परिवार का भविष्य भी इन्हीं की तरह कठोर हो जायगा। लेकिन इस वक्त तो वह ख़ुश है। फिर भी, अपने साथ ईमानदारी बरतते हुए, वह अपने आनन्द को अस्थायी बना देने वाले दयाल और दयाल-वर्ग के लोगों पर, बौद्धिक बड़प्पन के साथ, झुंझला रहा है। खाने के मामले में आज वह दयाल और मोनाई के बराबर का ही दर्जा रखता है। फिर क्यों न वह उन पर झुंझलाये, और क्यों न अपने भविष्य के साथियों का पक्ष ले?

सहसा पांचू का ध्यान टूटा। मोनाई की दूकान के सामने पांच छः जीवित कंकाल एक को घेरे हुए छीना-झपटी और हाथा-पाई कर रहे थे। उनकी अस्पष्ट और भयावह आवाजों के सामूहिक स्वर सांझ की बढ़ती हुई अंधियारी को मनहूसियत का गहरा रंग दे रहा था। फिर पांचू ने देखा, उस घिरे हुए आदमी की चीख़ इस मनहूस शोर में एक दर्द पैदा करती हुई अचानक घुट-सी गई और वह घिरा हुआ आदमी गिर पड़ा।

पांचू दौड़कर पास पहुंचा। उसने देखा, मुनीर बढ़ई था। सांस नहीं चल रही थी। मर गया। हार्ट फेल हो गया शायद। मुनीर की लाश के आस-पास चावल बिखरा था, जिसे बटोरने के लिए लोग गिद्धों की तरह टूट पड़े थे। उन्हें इस बात का कोई ख़याल न था कि उनके पास ही एक आदमी की—

उनके ही एक साथी की--लाश पड़ी हुई है। वे इस समय पूरे उत्साह के साथ ज़्यादा चावल बटोर लेने के प्रयत्न में थे। एक बार लाश को, फिर एक बार पांचू को, कुछ खोई हुई दृष्टि से देखकर वे अपने काम में लग गये। उनके हाथ छीना-झपटी करने लगे।

पांचू चिल्लाया—"मार डाला न तुम लोगों ने इस बेचारे को।"

पांचू की आवाज सुन जीवित-कंकालों के चेहरे उठे। उनके चेहरे पर चिढ़ का भाव था। वे सूखी हुई झुर्रियां, वे धंसी हुई आंखें गोया प्रश्न कर रही थीं--"क्या बकता है। हम अपना काम कर रहे हैं।"

दो-एक निगाहें पांचू के हाथ की पोटली पर भी गईं। पांचू सकपकाया। वह उठ खड़ा हुआ। उसने एक बार मुनीर की लाश की तरफ़ देखा। मुनीर ने उसके स्कूल की बिल्डिंग में लकड़ी का बहुत-सा काम किया था। बड़ा भला आदमी था बेचारा!

लेकिन मन कह रहा था, कहीं उसके चावल के लिए भी छीना-झपटी न करें। उसे यह चिन्ता नहीं थी कि उसका चावल ये लोग छीन सकेंगे, बल्कि इस छीना-झपटी में उसके धक्के से अगर एकाध और मर गया तो....?

एक लाश और बढ़ जायगी। लाशें--मुनीर की लाश, रामू के लावारिस बच्चों की लाशें, और एक दिन वह ख़ुद भी...

नहीं-नहीं, वह इसे दफ़नाने का प्रबन्ध करेगा। इन्सानियत का तक़ाज़ा है। और फिर मुनीर ने उसके साथ स्कूल में काम किया था।

* * * *

बढ़ई नूरुद्दीन आज चार दिनों से दोनों जून पेट पर हाथ फेरकर डकार ले रहा है। अज़ीम के घर मेहमान है। सांझ होते ही बड़े सुरीले गले से टीप लगाता है--

जौवनेर आज फूल फूटे छे,
आशबे बोले शांझ बेलाय.... ,

बेफ़िक्री से गूंजता हुआ स्वर पड़ोस के भूखे घरों की दीवालों से टकराकर लोगों के दिलों में टीसें उठाता है। नूरुद्दीन के घर में कोई नहीं। बाप बहुत पहले ही मर चुका था। एक बहन थी जिसकी शादी हो चुकी थी। मां थी तो पिछले हफ़्ते एक दिन सात रोज़ की भूख का .ग़ुस्सा नूरुद्दीन ने उसके गले पर उतार दिया। गला घुटते ही भूखी लाग़र बुढ़िया की रूह तड़पकर अर्शे मोअल्ला को छेदती हुई .ख़ुदावन्द करीम से फ़रियाद करने पहुंच गई। मां के मरते ही .ग़ुस्से की लगाम क़ाबू में आई, लेकिन भूख में साझीदार के लिए नफ़रत इतनी थी कि गुनाह को गुनाह न समझा। भूख से मर गई, इस तरह मन को समझाकर, अज़ीम की मदद से, उसे दफ़नाने का इन्तज़ाम किया। उस दिन अज़ीम ने उसे अपने घर खाना भी खिलाया।

अज़ीम मोनाई का दाहिना हाथ है। बचपन से ही उसकी दूकान पर नौकर है। अकाल कभी उसके घर झांकने की हिम्मत भी नहीं कर सकता। नूरुद्दीन ठहरा उसका लंगोटिया यार, एक जान दो क़ालिब। मुसीबत में दोस्ती का हक़ अदा करना इन्सान का फ़र्ज़ है। अलावा इसके नूरुद्दीन बड़े काम का आदमी है। अज़ीम समझता है, जैसे रोजगार-बैपार में वह दूर की कौड़ी ले आता है, वैसे ही नूरुद्दीन भी कहो तो राजा इन्दर के घर से परी निकालकर ले आये। अज़ीम को जब से मोनाई का विश्वासपात्र और प्रधान मंत्री का पद मिला है, वह अपने को (मोनाई के बाद) गांव के बड़े आदमियों में समझने लगा है।

नूरुद्दीन की दोस्ती से अज़ीम को भी कभी-कभी शेर के शिकार में सियार की जूठन मिल जाया करती है। इसीलिए उससे दबता है। नूरुद्दीन के साथ रहते-रहते बहुत दिन पहले एक बार .ख़ुद उसने भी मुनीर की बीबी के साथ छेड़-छाड़ करने की हिम्मत की थी, पर मुंह की खाई। तब से उस औरत पर उसके दांत हैं। पर जूठन चाटने की तबीयत अब नहीं होती। इसीलिए नूरुद्दीन से उसने मुनीर की बीबी के लिए फ़रियाद न की।

औरतों के सामने ही नूरुद्दीन मज़ाक़-मज़ाक़ में उसका पानी उतार लिया करता था। इस बार वह पकड़ में आया है। एहसान का फ़र्ज़ पाटने का अच्छा मौक़ा हाथ लगा है। अज़ीम ने मोनाई के यहां उसका घर और चार बीघे ज़मीन बिकवाकर पच्चीस रुपये उसे दिलवा दिये, अपने घर लाकर उसे रखा, दोनों वक्त भरपेट खाना भी उसे खिलाया। इसके एवज़ में अज़ीम ने नूरुद्दीन से मुनीर की बीवी तलब की। साथ ही उसकी यह शर्त भी थी कि इस बार शेर वह ख़ुद बनेगा और सियार नूरुद्दीन। यह शर्त नूरुद्दीन के लिए सख्त थी, मगर अज़ीम से उसे चावल मिलते थे। अलावा इसके वे पच्चीस रुपये भी अभी अज़ीम ही के पास थे।

नूरुद्दीन के चक्कर मुनीर के घर की तरफ़ लगने लगे।

सात दिन से मुनीर के यहां किसी के मुंह में अन्न का एक दाना भी न पहुंचा था। दो छोटी-छोटी लड़कियां, चांद और रुकिया, अन्न बिना मुर्दे-सी पड़ी रहती थीं। मुनीर भूख के साथ-साथ मलेरिया से भी लड़ रहा था। लेकिन मुनीर की बीवी को आज भी पांचों वक्त की नमाज़ का सहारा था।

नूरुद्दीन हमदर्दी दिखाने आया। पर मुनीर की बीवी उसकी परख में खरी उतरी।

नूरुद्दीन ने दांव पलटा। मुनीर की बीवी के ख़ुदा में साझा लगाया। इलहाम के चर्चे होने लगे।

मीरगंज की मसजिद मोहनपुर और मीरगंज की हद पर थी। पीढ़ियों से 'भूतों की मसजिद' के नाम से मशहूर थी। नूरुद्दीन ने बताया—"वहां एक भूत सवाब करता है। पिछले हफ्ते मैं उधर से आ रहा था। छः रोज से फ़ाके हो रहे थे। शाम की नमाज का वक्त। फिर सोचा, भूतों के डर से ख़ुदा बहुत बड़ा है। जी कड़ा करके वहीं निमाज पढ़ी। नमाज पढ़ कर मसजिद से बाहर आया, तो देखा कि ज़ीने पर एक केले के पत्ते पर भात और भुनी हुई मछलियां रखी हैं। मैं चकराया। मुंह में पानी भर आया, मगर भूतों का डर था। तभी कहीं से आवाज़ आई—"ऐ ख़ुदा के बन्दे, ये तेरे ही वास्ते हैं। ढाई सौ

बरस के बाद तू ही एक ऐसा इन्सान मिला, जिसने .खुदा के खौफ़ को हमसे बड़ा माना। आज की दुनिया में अज़ाब बढ़ गया है। दुनिया .खुदा को भुला बैठी है। मगर जो .खुदा को नहीं भुलाता, उसको .खुदा प्यार करता है। ले, खाले। और रोज़ आकर यहां नमाज पढ़। तुझे कोई खौफ़ नहीं। मैं भूतों का सरदार हूं। .खुदा के हुक्म से .खुदा के बन्दों का इम्तिहान लेता हूं। तुझे यहां रोज खाना मिलेगा। .खुदा के बन्दे कभी भूखे नहीं रह सकते।"

नूरुद्दीन एक दिन शाम को यह करिश्मा दिखाने के लिए मुनीर की बीवी को ले गया। नमाज के बाद मसजिद के जीने पर दो आदमियों के लिए खाना परोसा हुआ मिला।

उस दिन, पूरे सात दिनों के बाद, मुनीर की बीबी ने भर पेट खाना खाया था।

बच्चियों का ख़याल आता था, बीमार और भूखे मुनीर का ख़याल आता था, मगर नूरुद्दीन से साफ़ जता दिया कि .खुदा की मर्ज़ी के खिलाफ़ अपना हक अपने प्यारे-से-प्यारे को भी तुम देने को हक़दार नहीं।

अपनी भूखी बेटियों और बीमार पति के सामने .खुदा के घर से खाना खाकर लौटने पर मुनीर की बीबी की आंखें न उठती थीं। जी बेहद कलपता था, मगर शाम होते ही नमाज़ के बाद परोसी हुई पत्तल का ख़याल आता, जिसमें खुदा के हुक्म से उसके सिवा और किसी का हक़ ही नहीं।

.खुदा के .खौफ़ ने मुनीर की बीवी को झूठ बोलना सिखाया। आत्मा सोने लगी, स्वार्थ जगने लगा।

मुनीर की बीवी रोज़ शाम की नमाज़ पढ़ने जाने लगी।

नूरुद्दीन थाली परोस चुका था। अज़ीम आज खाने पहुंचेगा। चालाक नूरुद्दीन जानता था, वह हर तरह से अज़ीम के हाथ में है। उसने मुनीर की बीवी को अपना हथियार बनाया। पहले अपने पच्चीस रुपये वसूल किये और सोचा कि शहर जाकर मिलिटरी में बढ़ई का काम ढूंढ़ेगा। उसके लिए

औज़ार चाहिए। अपने औज़ार, घर की तमाम चीजों के साथ बेचकर, पहले ही वह अपना और अपनी मां का पेट, जब तक चला, भरता रहा। उसने सोचा, भूखे मुनीर से औज़ार ख़रीदे जा सकते हैं।

नूरुद्दीन मुनीर के घर आया। उसकी बीवी से बोला—"अपना हक़ भी आज से तुम्हें देता हूँ। मैं शहर जाऊँगा। मेरा हक़ ख़ुदा की मर्ज़ी से तुम्हारी बच्चियों और तुम्हारे शौहर को मिलेगा।"

मुनीर की बीवी ख़ुशी-ख़ुशी नमाज़ पढ़ने गई।

यह पहला मौक़ा था जब नूरुद्दीन नहीं गया और अज़ीम को शेर बनने का मौक़ा मिला। आज अजीम ख़ुद खाना लेकर मसजिद पर पहुंचने वाला था। अपने पच्चीस रुपये वसूल करने के बाद नूरुद्दीन ने उसे सब कुछ समझा दिया—"भूखी बच्चियों और शौहर से चुरा कर अकेले खाने की आदत डलवा कर मैंने उसका ज़मीर चूर-चूर कर दिया है। अब सच्चाई और पाक-दिली की वह अकड़ उसमें नहीं रही है। थाली दिखाकर सामने से घसीट लेना। वह तुम्हारे पीछे-पीछे चली आयेगी। सबज़ बाग़ दिखाना, सबज़ बाग़।

मुनीर की बीवी नमाज़ पढ़ने गई, इधर नूरुद्दीन ने अपना जाल फैलाया। भूख हाथ कटाने के लिए तैयार हो गई। मुनीर ने सिर्फ़ एक अठन्नी के लिए सारे औज़ार बेच दिये। अठन्नी पाकर बारह रोज के भूखे और बीमार मुनीर के डगमगाते हुए कमज़ोर पैर जल्द से जल्द मोनाई की दूकान पर पहुँच जाने के लिए उतावले हो उठे थे।

... ...

मुनीर की लाश को उठाकर ले चलने के लिए पांचू ने अपनी ही तरह के सहृदय और मृत्यु-भीरु दो 'मज़बूत' मरभुखों को राज़ी कर लिया। चावल की गठरी अपने गले से बांधकर पीठ की तरफ़ कर ली। चलने में पांच सेर चावलों की गठरी इधर-उधर हिलती, और उसका गला घुटने लगता। हाथों पर एक आदमी की लाश का बोझ और मन भारी, बड़ी मुश्किल से रास्ता तय हुआ। चांद और रुकिया बाप की लाश को देखकर बेहाल हो गईं। भूख

की कमजोरी और बाप की मौत का ग़म नन्हीं-सी रुकिया की बर्दाश्त से बाहर हो गया। वह बेहोश हो गई। चांद दस बरस की थी, रुकिया से ज़्यादा समझदार, बाहोश और इसीलिए ज़्यादा तकलीफ़ में।

मां घर पर नहीं है, बाप की लाश घर पर आई है और छोटी बहन बेहोश पड़ी है, वह क्या करे? बिलख-बिलखकर रो रही है, दम घुटने लगता है, एक दुख में हजार दुख याद आ रहे हैं। अब्बा गये थे चावल लाने और ख़ाली हाथों, यों आये। हाय अब्बा!

अब्बा की याद में भूख की तड़प थी, जो उस वक्त अब्बा की तरह ही अज़ीज़—अब्बा से भी ज्यादा अज़ीज़ थी।

भूतों की मसजिद के पास, झाड़ी की आड़ में, मुनीर की बीवी ख़ाना खा रही थी। और अज़ीम उसके पास ही बैठा उसके बदन पर हाथ फेर रहा था। अज़ीम की आंखों में वहशत थी, उतावलापन था। ज़ब्त की शिद्दत से बीच-बीच में होंठ काटने लगता था। उसकी आंखें चढ़ जाती थीं। मुनीर की बीवी के बदन पर उसके हाथों का दबाव सख्त होता जाता था और मुनीर की बीवी—वह खाना खा रही थी, और उसीमें अपने को खोये रखना चाहती थी।

नूरुद्दीन मुनीर के मरने की खबर सुनकर उसके घर आ पहुंचा। उसकी बगला-भगती मुहब्बत बग़ैर आंसुओं के उसे ज़ोर-ज़ोर रुला रही थी। दिमाग़ में पेंच पड़ रहे थे—"औरत ख़ाली हुई है। शहर ले चलें। इस तरह से अपने काम आयेगी। दो लड़कियों की मां हो जाने पर भी अभी ढली नहीं है। काठी अच्छी है इसकी। चार दिन और अच्छी तरह से इसकी खिलाई-पिलाई करूंगा, निखर उठेगी।"

मुनीर की लाश उठाकर लानेवाले तीनों आदमियों में से किसी में इतनी ताक़त नहीं थी कि लाश को कब्रिस्तान तक ले जा सकें। घर के पिछवाड़े ज़रा दूर पर एक ऊसर खेत था। नूरुद्दीन कहीं से फावड़ा ले आया था। किसी तरह जमीन खोद रहा था। साथ-ही-साथ उसका दिमाग़ भी चल रहा

था--"लौटकर आयें तो दांव फेकूं। कहीं भड़की हुई न आये! फुसलाना चाहिए। दो रुपये दूं। मुसीबत में हमदर्दी! मगर रुपये तो शायद अजीमा भी दे। यों तो घाघ है, मगर औरतों के मामले में साले की अकल घास चरने चली जाती है। और फिर इस पर तो उसकी महीनों से तबियत आयी थी। इसे तो जरूर ही रुपये देगा वह। तब फिर? लौंडियों को हथियार बनाना चाहिए। मां का दिल लूटने के लिए सबसे अच्छा यही तरीका होता है। करें क्या?.....खिलाओ ससुरियों को। बस, यही ठीक है। मास्टर बाबू की गठरी में अनाज मालूम पड़ता है। इसे ही उड़ाना चाहिए। मगर टटोल तो लिया जाय। देखें, अनाज है या और कुछ।"

नूरुद्दीन ने फावड़ा रख दिया। हांफने लगा, जैसे थककर चूर-चूर हो गया हो। दूसरा आदमी उठा। आप पांचू के पास बैठ गया। बातों-बातों में बहाने से गठरी पर हाथ रखकर टटोल देखा, चावल है। सोचा--"उड़ाना चाहिए। ऐसे तो हाथ नहीं आयेगा। तिकड़म करें। लड़कियों को उकसा दें। पढ़े-लिखे तो बेवकूफ होते ही हैं। रहम-दया बहुत रहती है इनमें। और जिसमें मास्टर बाबू तो बस मोम का दिल रखते हैं। चांद और रुकिया को उकसा दें कि मास्टर बाबू चलने लगें तो पैरों से लिपट जायं, खाना मांगें। बस, फिर तो गठरी में धरवा ही लूंगा। मगर समझो कि न पसीजे तो? यकीन तो नहीं होता। अगर ऐसे ही पत्थर-से बन गये होते तो यों लाश लेकर न आते। नहीं, दांव खाली न जायगा। अल्ला ने चाहा तो कौड़ी चित्त ही पड़ेगी। और जब वह आयेगी तो ताजे गम में यह तसल्ली बड़ा काम देगी। बस, फिर काबू में आ जायगी। मगर ये लड़कियां? इन्हें साथ ले जाना तो बेवकूफी होगी। लेकिन इन्हें उससे अलग कैसे किया जायगा? खैर, यह फिर सोच लेंगे। अभी तो मास्टर बाबू की गठरी..."

नूरुद्दीन ने झट से एक लम्बी आह छोड़ी। पांचू की तरफ देखकर बोला--"इसकी बीबी बिचारी मसजिद में नमाज पढ़ने गई है। घर लौटकर देखेगी तो......(गला भर आया। आंसू पोंछने के बहाने कमीज के पल्ले में मुंह छिपाकर दो एक सुबकियां भी ले डालीं।)...क्या बताऊं, मास्टर

बाबू.... खुदा जाने क्या-क्या दिखानेवाला है आगे। अभी थोड़ी देर पहले तो मैं मुनीर को दो रुपये देकर गया था। आप लोग तो राजा आदमी हैं। मेरी तो कोई औकात ही नहीं, पर अपनी-सी हालत सबकी जानता हूं। दस रोज खाने को न मिला। मां बिचारी भूखों मर गई। घर-ज़मीन बेचकर रुपये लाया था, सो उसमें से पहले इसे दो रुपये निकालकर दे दिये। पर किस्मत! बेचारा अपनी जान से गया। हाय! आज बारह दिन से फाके हो रहे हैं इसके यहां। जब से रुपये लेकर मोनाई की तरफ़ गया था, लड़कियां बेचारी आस लगाये बैठी थीं कि अब अब्बा चावल लेके आते होंगे। (गला फिर भरने लगा) बेचारियों को यह मालूम नहीं था कि अब्बा अब सांसें भी साथ लेकर न लौटेंगे। हाय!" (फिर सुबकियां और रोना।)

पांचू स्तब्ध। अपने जीवन में मुनीर की इस घटना का समावेश कर वह देख रहा था। जिस तरह बरफ़ का टुकड़ा देर तक हाथ में रखा रहे तो वह हाथ सुन्न पड़ जाता है, उसी तरह मृत्यु का भय पांचू के हृदय पर इस समय तक पूरी तरह से छाकर उसे स्तब्ध कर चुका था। मुनीर की लाश के स्थान पर वह अपनी लाश देख रहा था। नूरुद्दीन की एक-एक बात उसके मन की ऊपरी सतह को छूती हुई, उसे इस तरह लग रही थी जैसे उसके मर जाने के बाद उसकी तथा उसके परिवार की कहानी, नूरुद्दीन किसी दूसरे को सुना रहा हो।

पांचू मुनीर की लाश की तरफ़ देखता रहा। उसमें वह अपनी लाश देख रहा था। गड्ढा खुद गया। बगैर कफ़न के लाश दफ़ना दी गई। मिट्टी पड़ रही है। पांचू की लाश पर मिट्टी पड़ रही है। पांचू खड़ा देख रहा है। लाश है। ढक रही है। मिट्टी का बोझ लाश पर पड़ता जाता है। लाश अब नहीं दिखाई देती। गड्ढा भर रहा है। मुनीर की लड़कियों के रोने की आवाज़ उसके कानों को सुनाई दे रही है। नूरुद्दीन का ज़ोर-ज़ोर से आहें भरना भी वह सुन रहा है।

गड्ढा भर गया। लोग फावड़े और पैरों से मिट्टी दबा रहे हैं।

मुनीर इस संसार से चला गया। मुनीर अब संसार में दिखाई नहीं नहीं देगा। मुनीर ने उसके स्कूल की बेंचें बनाई थीं, ब्लैक-बोर्ड बनाया था। मुनीर हंसता था, बोलता था, चलता-फिरता था, काम करता था। थोड़ी देर पहले तक उसका शुमार 'है' में किया जाता था, अब 'था' में किया जायगा। एक कहानी बन गया। कालिदास था, शेक्सपियर था, अकबर, सीज़र, चन्द्रगुप्त था। मुहम्मद था, ईसा था, बुद्ध था, राम, कृष्ण--मुनीर था, पांचू था। यह अकाल इस देश को कहानी ही बना कर छोड़ेगा। लोग कहेंगे, एक सूबा था, जिसका नाम बंगाल था।...

... ...

अपनी बुद्धि पर पांचू मन-ही-मन सदा से अभिमान करता आया है, पर इस समय उसे अपनी महामूढ़ता पर तनिक भी अविश्वास न था। वह ख़ुद अपने से चिढ़ा हुआ था।

मुनीर की पितृ-हीना लड़कियों का करुण विलाप सुनकर अपनी असमर्थता पर मन-ही-मन आंसू बहाकर उसने संतोष कर लिया था। नूरुद्दीन तथा तीन-चार अन्य लोगों से अपनी उदार प्रकृति, दरियादिली, और दान के मोहक बखान सुनकर भी उसे अपने भूखे परिवार का ध्यान रहा था। जिस समय नूरुद्दीन कह रहा था--"आप राजा आदमी हैं मास्टर बाबू, दो मुट्ठी इसमें से निकालकर दे देंगे, तो आपको ज़रा भी न अखरगा और इन बेचारियों का गम गलत हो जायगा," उस समय तक पांचू का स्वार्थ उसे इतना कस चुका था कि उसे अपनी गठरी में से एक दाना देना भी असम्भव-सा प्रतीत होता था।

लोगों ने जब यह कहा कि तुम्हारे यहां तो मनों अनाज होगा; तुम गांव के इतने बड़े आदमी हो; तुम यह हो और तुम वह हो, उस समय पांचू मन-ही-मन (संस्कारवश) यह सोच कर प्रसन्न हो रहा था कि गांव वाले उसे बहुत अमीर आदमी समझते हैं।

यह प्रसन्नता पांचू की सहृदयता का पोषण कर रही थी। वह अपने मुंह से यह नहीं कह सकता था कि वह भी अपने पूरे परिवार के साथ-

साथ चार दिन से भूखा है; और बड़ी मुश्किलों से उसे यह पांच सेर चावल मिले हैं। उसे बड़ा आदमी समझने वाले गांव के वे लोग अगर उसकी असलियत जान जायंगे तो आबरू चली जायगी। पर उसने सोचा, चावल न देने से भी तो बदनामी होगी। होने दो। यह लोग ज़्यादा से ज़्यादा यही तो कहेंगे कि दयाल और मोनाई की तरह मास्टर बाबू भी कठोर हैं। इस हालत में भी उसका दर्जा दयाल और मोनाई के बराबर ही रहेगा।

तभी नूरुद्दीन की एक बात ने सहसा उसकी बुद्धि को झटक दिया—"मुर्दे से छुआ हुआ अनाज बाह्मन होके घर कैसे ले जाओगे मास्टर बाबू, और वह भी मुसलमान का मुर्दा! तुम्हारे तो किसी काम का नहीं रहा। इन लड़कियों का पेट भर जायगा।"

तर्क अकाट्य था। पांचू जैसा प्रतिष्ठित कुल का ब्राह्मण मुसलमान मुर्दे के स्पर्श से अपवित्र चावल चार लोगों की जानकारी में कैसे ले जा सकता है। धर्म और जाति जायगी, आबरू जायगी।

... ...

पांचू के मन का विद्रोह स्वयं उसे ही खाये जा रहा था। उसने चावल दिया ही क्यों? उसे शर्म क्यों आई? क्या यह शर्म, यह आबरू और धर्म का यह भय, उसे और उसके परिवार को इस अकाल की मौत से बचा लेंगे।

पांचू ख़ाली हाथों घर की तरफ़ जा रहा था। अन्धेरा हो चुका था। कहीं-कहीं एकाध घर में दिये की टिमटिमाती हुई रोशनी झलक जाती थी। इन घरों में आबरू अभी भी पूरी तौर पर सुरक्षित थी। पांचू ने अपने घर में भी रोशनी देखी। उसके विचार ठिठके, पैर ठिठके। वह ख़ाली हाथों घर जायगा। सब लोग आस लगाए बैठे होंगे। कनक बेजान सी पड़ी होगी। दीनू-परेश भूख के मारे बिलख रहे होंगे। सारा घर भूख से व्याकुल होगा।

पांचू की कल्पना प्रखर होने लगी, वह ख़ाली हाथों घर पहुँचेगा। सारा घर एक बार तो उसका स्वागत करेगा, पर दूसरे ही क्षण.....?

पांचू लौट पड़ा। घर जाने की हिम्मत नहीं हो रही थी। वह अपने आत्मीयों को भूख से तड़पते हुए नहीं देख सकता; और जब कि वह स्वयं उनके इस दुख का कारण हो। उसकी मूर्खता के कारण ही उसके सारे परिवार को तड़प कर मरना होगा।

पीड़ा और क्रोध से उसके पैरों की निरुद्देश्य गति और भी अधिक शिथिल हो गयी। पांच सेर चावलों की गठरी लेकर आते वक्त उसमें उत्साह था। पांच सेर चावलों की गठरी के वज़न ने मुनीर की लाश को उसके घर तक पहुंचाने के लिए उसे जो शक्ति प्रदान की थी, वह इस समय छिन चुकी थी। चार दिन की भूख निराशा और कमजोरी के साथ-ही-साथ लाश उठाने और ले जाने की थकान उसे इस समय तक अत्यधिक अशक्त कर चुकी थी। और उसके ऊपर से ताज़ी चोट, यह आत्मग्लानि और निराशा--उसे चक्कर आ गया, उसके पैर लड़खड़ाये--बड़ी मुश्किल से उसने अपने को गिरने से बचाया।

पांचू के आस-पास, कुछ दूर पर उसी की तरह जीवित कंकाल डोल रहे थे। उसे उनसे घृणा हो गई। उसे अपने से घृणा हो गई। उसे तमाम अकाल-पीड़ितों से घृणा हो गई। उसे मरे हुए मुनीर से भी घृणा हो गयी। कम्बख्त को उसके ही रास्ते में आकर मरना था! और अगर मरना ही था तो किसी दूसरे वक्त न मरा--जब वह चावल लेकर आ रहा था, तभी साले को मौत आई!

पांचू को मुनीर की लड़कियों पर क्रोध आ रहा था, नूरद्दीन पर क्रोध आ रहा था, उन शास्त्रकारों पर क्रोध आ रहा था जिन्होंने शव को छूने से उसकी पांच सेर चावलों की गठरी के अपवित्र हो जाने का विधान बनाया। उसे अपने ब्राह्मण और आबरूदार होने पर क्रोध आ रहा था। नपुंसक क्रोध के कारण पांचू की आंखों से आंसू बहने लगे। पर इस बार उसे अपने आंसुओं पर क्रोध न आया। उसे इस समय रोने में ही शान्ति मिल रही थी।

आंसू जोर पकड़ते गये। अपनी हीन और असहाय अवस्था के ध्यान से रह-रह कर पांचू के अहं को चोट लगती। रह-रह कर पीड़ा के दौरे से उठते, जिससे उसका मानस तूफ़ानी समुद्र की तरह उमड़ने लगता। आंसू हुमड़-हुमड़ कर आंखों से बहने लगे ।

पांचू फूट-फूट कर रो रहा था। सुबकियां सांस खींच-खींच कर उठने लगीं।

पांचू के पैरों में दम न था। वह वहीं, खेतों के पास ही जमीन पर धम्म से बैठ गया। मन में राम-राम की रटन थी। निःसहाय अवस्था में वह 'निर्बल के बल राम' से सहारे की प्रार्थना कर रहा था। अज्ञात शक्ति के नाम का सहारा पांचू को धैर्य धारण करने में सहायता देने लगा। आंसू रुके, सुबकियां खत्म हुईं। आंखें खुश्क हुईं, दो-एक सर्द आहें दिल से निकलीं।

मगर फिर चिन्ता—"आख़िर इस तरह से बाहर भी कब तक रहा जा सकता है। मुनीर के यहां चावल दे आने की बात भी शायद घर में सब को मालूम हो चुकी होगी। मैं अब तक नहीं पहुंचा, इससे और भी चिन्ता होती होगी। लेकिन ख़ाली हाथों—घर में अंधेरा और मस्जिद में दिया बाल कर.."

तभी, अचानक ही, उसे ख़याल आया। स्कूल का कुछ फ़र्नीचर मोनाई के हाथ बेच कर वह उससे चावल ख़रीद सकता है।

विचार ने उसे एकदम स्फूर्ति दी। नया उत्साह आया, नया बल आया। पांचू एकदम से उठ खड़ा हुआ। मोनाई के घर की तरफ़ चला।

रास्ते में वह सोच रहा था, स्कूल की चीजें बेच देने का उसे हक़ ही क्या है? वह उसकी निजी सम्पत्ति तो है नहीं। लेकिन कौन पूछता है? और फिर उससे? अगर वह चाहे तो सारा स्कूल ही उठा के बेच दे। उसने ही तो इस स्कूल को बनाया है। इसकी एक-एक ईंट में उसके जीवन का त्याग छिपा है। दिन और रात एक करके उसने ही ये चीजें इकट्ठा कीं। और वही इसे बेच भी देगा।

आत्मा कह रही थी, यह चोरी है। पर आत्मा के इस उपदेश पर इस समय उसे झुंझलाहट आ गयी। वह खायगा क्या? उसका परिवार भूखा रहेगा? ये आदर्श, धर्म, पाप-पुण्य, सब पेट भरे की लीला है। अकाल पड़ने पर विश्वामित्र ने भी डोम के घर मांस चुरा कर खाया था। उन्होंने तो बाहर चोरी की थी, वह तो अपने ही स्कूल में चोरी करेगा। दर-असल यह चोरी है ही नहीं। दीमकें लग गयी हैं। अगर ये डेस्कें वगैरह ज़्यादा दिन तक स्कूल में रहीं तो तमाम स्कूल को खा जायंगी। इन डेस्कों को न बेचने से सैकड़ों रुपयों की स्कूल बिल्डिंग नष्ट हो जायगी।

डेस्कें बेचने के पक्ष में यह दलील पांचू को मन ही मन और भी अधिक उत्साहित कर रही थी। अपने आप को इस सफ़ाई से धोखा देने के कारण उसे इस समय अपनी बुद्धि पर घमण्ड हो रहा था। सारा घर भूख के भूत से छुटकारा पा जायगा। और इस बहाने तो जरूरत पड़ने पर एक-एक दो-दो करके स्कूल की बहुत सी चीज़ें बेची जा सकती हैं। इस तरह वह अपने परिवार के साथ बहुत दिनों तक अकाल से लड़ सकता है।

मोनाई का घर दस क़दम पर सामने था। पांचू ठिठका—स्कूल की डेस्कें बेचने की बात वह मोनाई से कैसे कहेगा? मोनाई उसके बारे में क्या सोचेगा? मोनाई उसका बड़ा अदब करता है। आज उसकी आंखें सदा के लिये मोनाई के सामने नीची हो जायंगी। घर की बात खुल जायगी—उसकी चोरी खुल जायगी। हां, चोरी तो यह है ही। पबलिक के पैसे का अपने लिये उपयोग करना। मोनाई अगर यह सवाल कर बैठा तो?

सारा जोश ठंडा पड़ गया। निराशा सिर में चक्कर बन कर छाने लगी। लेकिन वह लड़खड़ाया नहीं, हिला-डुला तक नहीं, पत्थर की मूर्ति की तरह निश्चल, स्तब्ध खड़ा रहा। उसकी आंखों के आगे तारे छूट रहे थे, और कुछ भी नहीं सूझ रहा था—कुछ भी नहीं। उस क्षण वह चेतना-शून्य हो गया था।

"अहा! मास्टर बाबू हैं!"

पांचू के कानों में मोनाई की आवाज़ पड़ी। जोश ने फिर से उसे अपने कब्ज़े में लिया। पांचू चौंका। देखा, मोनाई अपने घर के दरवाज़े पर खड़ा था।

"कहो, इस बखत यहां कैसे ?"

"कुछ नहीं। अरे--यों ही चला आया।"

मोनाई पास आया। बोला--"मुनीर बेचारे की मिट्टी ठिकाने से लगा दी तुमने। दूसरा कोई होता तो नजर भी न डालता।"

पांचू चुप। वह सोच रहा था, अपनी बात मोनाई से कहे कि न कहे।

मोनाई उसे चुप देख कर आगे बढ़ा--"सुना, बेचारे की लड़कियों को चावल भी दिया है तुमने ? नूरू जस गा रहा था तुम्हारा। बड़ा धरम करते हो मास्टर बाबू ! नहीं तो आज कल का जमाना ! गोपीकृष्ण, कोई किसी का नहीं। भगवान जी ने क्या जमाना दिखाया है ! राधे-राधे, कैसे नैया पार लगेगी ?"

मोनाई ने एक निश्वास छोड़ी। पांचू ने भी एक निश्वास छोड़ी--वह मोनाई से अपनी बात कहने का विचार त्याग रहा था। कैसे कहेगा, यही सब से बड़ी उलझन थी, यही उसके त्याग का कारण था। लेकिन घर भर भूखा मरेगा। तो फिर...

मोनाई की व्यावहारिक बुद्धि भांपने लगी। चेहरे का भाव पढ़ना चाहता था, अंधेरे में दिखाई नहीं पड़ रहा था। हाथ जोड़ कर बोला--"जब यहां तक आये हो तो मेरे घर में भी अपने पैरों की धूलि डालते जावो। आवो न।"

मोनाई के पीछे-पीछे पांचू चला। दहलीज में चारपाई पर बैठाकर, लालटेन की रोशनी में, मोनाई बातें करने लगा। आप नीचे ज़मीन पर बैठा, पांचू को मान दिया। मास्टर बाबू आये किसी पेंच से हैं, मोनाई ताड़ने लगा, लेकिन मौका साधकर पांचू से ही दिल की बात निकलवानी है। दम देने

लगा--"और इखबार में आज क्या-क्या खबरें हैं, मास्टर बाबू? लड़ाई की क्या खबर है? भाव कुछ और चढ़ेगा?"

पांचू को मोनाई से घृणा हुई। स्वार्थी अभी और भी लूटना चाहता है। गांव वालों की लाशें भी खा जायगा क्या? घृणा व्यंग बन कर फूटी--"खबरें क्या, चांदी है तुम्हारी।"

बुद्धू की तरह मोनाई ने हाथ मलते हुए खीसें निपोड़ीं--"हेंः हेंः हेंः। चांदी क्या मास्टर बाबू, मेरा तो जी कलपता है। गीता जी में जो अरजुन जी ने भगवान जी से कहा था कि जब अपने ही न रहेंगे तो तीन-तिलोक की राज-पाट लेके मैं क्या करूंगा, सो ही गत अपनी है मास्टर बाबू। कंठी की कसम, ये दिये तले बैठा हूं, झूठ नहीं कहूँगा। मुंह में कौर नहीं दिया जाता। पर भगवान जी ने कहा है कि करम करो अपना, मरना जीना सिसार का धंधा ही है। बस, यही सोच के... (आह भरी) राधे, राधे!"

देखा, पांचू अब भी चुप है, खोया हुआ है। बोला--"आज बहुत उदास हो, मास्टर बाबू। अरे, मुनीर का गम न करो ज्यादा। आया था, चला गया। देखो, परभू जी की लीला! मुझसे आठ आने का चावल खरीदा, मैंने उसे ज्यादा तौलकर दिया। मेरी आदत गुपत दान करने की है, मास्टर बाबू। पर सो भी उसके भाग में नहीं था। कौड़ी-कौड़ी पर मोहर है, भगवान जी ने सच कहा है।... लेकिन वो तुमने, मास्टर बाबू चावल कहां से खरीदा था?"

"दयाल बाबू के यहां से।"

"हां!" मोनाई ने गम्भीर होकर एक पल के लिये सिर झुकाया। फिर पूछा--"क्या भाव दिया?

गये हुए की बात पूछ रहा है कम्बख्त! जले पर नमक छिड़क रहा है। पांचू बेरुखी से बोला--"क्या करोगे भाव पूछ कर? तुम सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे तो हो।"

"नहीं बाबू फरक है," मोनाई जोर देकर बोला--"जमींदार बाबू से दो पैसे कम पर दूंगा। तुम घर के आदमी हो, जितना कहो, उठा कर दे दूं।"

पांचू ख़ुश हुआ। उसे लगा जैसे मोनाई ने सचमुच ही उसके आगे चावल की बोरियां लाकर ढेर कर दी हों।

मोनाई अपनी धुन में कहे जा रहा था--"ये जमींदार बाबू अब हमसे काट करने लगे हैं। इन्हें अब यह डर लगता है कि मोनाई अब आधे का साझीदार बन गया है। अरे, इन्होंने सरकार का यूनन बोट बुलवाया है यहां। अपना धान सीधा सिरकार में ही बेचा। अढ़तिये को एक पैसा लिया-दिया नहीं। और अब इस काट में हैं कि यूनन बोट से दस रुपये मन के भाव से बिकवायेंगे, जिसमें मैं चोपट हो जाऊं। पर इन्हें यह पता नहीं है कि मैं भी केवट का बच्चा हूं। वो फांस मारूंगा कि ज़मींदार बाबू देखते ही रह जायंगे। हां!"

मोनाई ने दंभ के साथ पलयी बदली और अन्दर के दरवाजे की तरफ़ मुंह करके आवाज़ लगाई--"अरे न्याड़ा रे, ज़रा चिलम तो ले आ बेटा।"

पांचू के मन में फिर आशा जगी। तिकड़म और दांव-पेंच के अखाड़े में ख़ुद भी कुछ कर दिखाने की तबीयत हुई--"अरे, मैं जानता हूं मोनाई। दयाल बाबू क्या खाके तुम्हारा मुक़ाबला करेंगे। और मुझे क्या मालूम नहीं है, इस वक्त तुम्हारी हैसियत उनसे ज़्यादा है।"

मोनाई के मक्खन लगा। गद्गद होकर पांचू के पैर छुए और बोला--"सब भगवान जी की दया है, मास्टर बाबू। मोनाई केवट ने जब से कंठी ली तब से किसी बामन, साधू और गोमाता का बुरा नहीं चेता, मास्टर बाबू। सत्त कहता हूं तुमसे! फिर मेरा बुरा कौन चेत सकता है?"

"ठीक है। ठीक कहते हो।" पांचू ज़रा उत्साह में था--"बड़ा दया-धर्म है तुम्हारे मन में। मैं क्या जानता नहीं हूं।"

मोनाई का हुक्क़ा लेकर न्याड़ा आया। देखा, मास्टर मोशाय बैठे हैं। हड़बड़ा कर हुक्क़ा रक्खा, और पांचू के पैर छुए।

शिक्षक का अभिमान जागा। रौब से पूछा--"क्यों रे, आज स्कूल नहीं आया तू?"

न्याड़ा सकपका गया । बाप बोला--"मैंने ही नहीं भेजा था इसे । आज दो दिन से इसकी मां जरा बीमार है । हें : हें; कुछ भगवान जी की दया होने वाली है घर में--हें : हें :।"

ख़ुशामदाना तौर पर उल्लसित होकर पांचू बोला--"अच्छा, कब ?"

"अभी तो दिन हैं । छठवां महीना है । बाकी सिर भारी रहता है आजकल उसका--सो लड़के से बढ़कर मां की सेवा और कौन कर सकता है, मैंने सोचा ।"

यह मोनाई की तीसरी पत्नी है । न्याड़ा दूसरी का है । सौतेली मां ठहरी, बूढ़े की जवान बीबी । बेटे से डट कर सेवा कराती है ।

मोनाई न्याड़ा की तरफ़ देख कर बोला--"जा रे, मां के पास जाकर बैठ । और वहीं बैठ कर पढ़ ।"

न्याड़ा सिर झुकाये चला गया । कश खींचते हुए मोनाई बोला--"ये न्याड़ा एक बार बीए पास हो जाय, बस ! भगवान जी !...अब तो तुम्हारा स्कूल बन्द ही हो गया समझो । आहा ! तुमने भी क्या चमत्कार कर दिखाया मास्टर बाबू ! गांव की सात पीढ़ी में तुम्हारे जैसा कोई नहीं हुआ । सत्त कहता हूँ ।"

पांचू ने एक निश्वास छोड़ी, बोला--"हां, पर अब दीमकें सारी डॅस्कें चाटे डालती हैं ।"

"राधे, राधे !... मेरी मानो तो कुछ कहूँ ।"

पांचू चौंका । शायद अब बात बन जाय । उत्साहित होकर बोला--"कहो, कहो !"

"मेरे हाथ बेच डालो न लकड़ी का सामान । दीमकें चाट डालें उससे फ़ैदा ? अरे, अकाल के बाद तुम्हें बिंचें यों ही बनवानी पड़ेंगी। यों स्कूल के खाते में पचीस-पचास दिखा तो सकोगे ।"

बिल्ली के भागों छींका टूट रहा था, पर अभी एक मंजिल और थी--आज का चावल । पांचू अब तो गंगा के किनारे आ ही गया था । प्यासा हरगिज नहीं लौटेगा--" कहते तो ठीक हो । पर ...."

"पर," मोनाई ने पर निकाले, बोला--"मैंने तो स्कूल के भले की बात कही थी, बाकी मैं जोर नहीं देता । मुझे गरज नहीं है । सत्त कहता हूं ।" मोनाई सत्य कह कर हुक्के में लवलीन हो गया ।

पांचू का नशा उतरा । बात बनते-बनते बिगड़ न जाय । हड़बड़ा कर खुल पड़ा--" नहीं, मुझे इनकार नहीं । लेकिन बात ये थी कि .... तुम तो जानते ही हो, लूट-मार का ज़माना है, इसलिये घर में पैसा-कौड़ी नहीं रखते । ढाका के बैंक में जमा है । और इस वक्त ....अ......हाथ ज़रा तंगी में आ गया है । तुम तो समझते ही हो, यह स्कूल बन्द हो गया और ....."

मोनाई ने हुक्का गुड़गुड़ाते हुए समझदारी के पूरे बोझ से गर्दन हिलाते हुए कहा--" सब समझता हूं, मास्टर बाबू ! मोनाई केवट ने भी अंधेरे-उजाले दिन देखे हैं । मैं चावल देने को भी तैयार हूं ।"

पांचू ने देखा, मोनाई ने नस पकड़ ली । बड़ी झेंप मालूम हुई । बात बनाने के लिये रौब जमाया--" हां, अभी तो ले ही लूंगा । पर यह रक़म तुम उधार ही समझो । जो तुमसे फ़र्नीचर बेच कर पाऊंगा, उतनी रक़म बैंक से लाकर खाते में जमा कर दूंगा ।"

बात कहते-कहते पांचू ने ख़ुद ही महसूस किया कि वह बगैर ज़रूरत के सफाई दे रहा है । मोनाई ने एक बार गौर से पांचू के मुंह की तरफ देखा, फिर गर्दन झुका कर हुक्का गुड़गुड़ाने लगा । उसने थाह का अनुमान किया । अनुमान पक्का करने की गरज से बोला--"अच्छी बात है, तो फिर दो-तीन दिन में कभी चल कर लकड़ी देख लूंगा । सौदा हो जायगा ।"

पांचू ने देखा, हाथ आये चावल फिर दूर खिसके जा रहे हैं । वह एकदम से अधीर हो उठा । मन का सत्य उबल पड़ा । घबड़ा कर दीनता भरे स्वर में

बोल उठा—"आज ही सौदा कर लो न मोनाई । घर में चावल की एक कनी भी नहीं है । पांच सेर की गठरी मुसलमान का मुर्दा छूकर बरबाद कर दी । मैं धर्म-संकट में पड़ा हूँ ।"

मोनाई चुप । हुक्का गुड़गुड़ कर रहा है । पांचू की आंखें भिखारी बन कर एकटक मोनाई के चेहरे पर ही अड़ी हुई हैं । अपनी आबरू मोनाई के हाथों समर्पित कर, वह उससे संरक्षण की भीख मांग रहा है । पांचू अनुभव कर रहा है, वह गिर गया । सदा से पोषित उसका स्वाभिमान इस समय मिट्टी के खिलौने की तरह गिर कर चूर-चूर हो गया । इतना महान् त्याग करने के बाद भी अगर मोनाई ने ना कह दी तो ? नहीं-नहीं, वह ऐसा न होने देगा । ऐसी नौबत आने पर वह मोनाई केवट के पैरों पर अपना सिर झुका देगा । भूखे घर में चावल की गठरी के साथ प्रवेश करने के लिये वह आज हर तरह का अपमान सहने के लिये तैयार है ।

तभी मोनाई हुक्का सरकाते हुए बोला—"मैं अभी ही तुम्हें दस-पांच सेर दिये देता हूँ । इस बखत का काम चलने दो, फिर पीछे हिसाब-किताब कर ले-दे लिया जायगा । कोई फिकर मत करो ।" यह कह कर मोनाई उठा । अन्दर जाते-जाते दरवाजे पर ही ठिठक कर बोला—"इसकूल की कुंजी न हो, मुझे ही दे दो मास्टर बाबू । रातोरात बेंचें निकलवानी होंगी, जिसमें तुम्हारी इज्जत पर कोई आंच न आने पाये ।"

मोनाई की इस आत्मीयता ने तो पांचू का हृदय जीत लिया । फ़ौरन ही तालियों का गुच्छा निकाल कर मोनाई को दे दिया—"मेजों में जो काग़ज़-पत्तर और रजिस्टर वगैरह हैं, उन्हें तुम मेहरबानी करके अपने सामने ही क़रीने से अलग रखवा देना । समझे !"

पांचू के स्वर में अत्यधिक दीनता थी ।

मोनाई तालियों का गुच्छा लेते हुए बोला—"तुम निसाखातिर रहो । मैं अभी दस सेर चावल लाये देता हूँ ।"

मोनाई अन्दर चला गया। वह ख़ुश था, भगवान जी ने बैठे-बैठे ही ये पचास-साठ रुपये का फ़ायदा करा दिया। दस सेर चावल दे के सारी बेंचें अपनी। फिर कौन देता है, कौन लेता है? मास्टर बाबू की नजर तो उठेगी नहीं उसके सामने--"भगवान जी, तुम धन्न हो! राधे, राधे!"

और पांचू सोच रहा था--"भगवान बड़ा दयालु है। पांच सेर दिये, दस सेर पाये। और भी आगे मिलेगा। दो मन तो मिल ही जायगा, कम से कम। मोनाई देवता है। बड़े आड़े वक्त काम आया!"

४

बड़ी किफ़ायत के साथ, आधा चौथाई पेट खाने पर भी, छः सेर चावल चार दिन में निबट गये। पांचू मोनाई से दस सेर लाया था। मोनाई ने अब तक शायद स्कूल का फ़र्निचर औने-पौने कर दिया होगा। पांचू ने सोचा--"चल कर मोनाई से हिसाब समझ लिया जाय। वैसे है तो नंबरी कांइयां, दस के दो टिकायेगा। पर जो कुछ भी इस वक्त मिल जाय उसे ही बड़ी रक़म समझो। अड़तालिस बेंचे और उतनी ही डेस्कें हैं। कम से कम पचास तो देगा ही। न सही पचास, चालीस ही दे। इतने में एक मन चावल आ जायगा। एक महीना तो आनन्द से पार हो ही जायगा। वैसे माल तो ज़्यादा का है। दो मन न सही, डेढ़ मन चावल तो इतने फ़र्निचर में मिलना ही चाहिये। यों तो आज कंट्रोल का ढिंढोरा भी पिट गया है। उसके हिसाब से तो उसे दस रुपये मन बेचना पड़ेगा। पर शायद इस सरकारी हुक्म में भी वह कोई पख़ लगा दे। पक्का 'चार सौ बीस' है ये मोनाई। ख़ैर! मैं उससे नक्द रुपये ले लूंगा। मोनाई कहता ही था--दो एक रोज़ में यूनियन बोर्ड का चावल आने वाला होगा। तब तो चालीस रुपये में चार मन चावल मिलेंगे। ठाठ से चार पांच महीनों तक मूंछों पर ताव देकर डकार लेंगे। आगे फिर राम मालिक है। अरे हां, जिसने मुंह चीरा है, वही खाने को भी देगा।

दूसरे ही क्षण पांचू को यह कहावत बड़ी निस्सार जंचने लगी। इतने मर गये, और भूखों ही मरे। लोगों ने व्यर्थ ही ईश्वर को इतना दयालु समझ रक्खा है। ईश्वर कहां है? क्या वह घट घट व्यापी, अंतर्यामी, अपनी आंखों से इन भूखों मरते हुये लाखों निर्दोष जीवों को नहीं देख पाता? अगर वो

हैं, तो उसने ही इन सबों के मुंह भी चीरे हैं, लेकिन इन्हें खाने को नहीं देता!

... ...

पांचू की आंखों के सामने जीवित कंकाल--मर्द, औरतें, बच्चे अपने कमज़ोर तन की सारी स्फूर्ति को बटोर कर दौड़ते हुये चले जा रहे थे। उनकी गड्ढों में धंसी हुई आंखों में आज ख़ुशी की चमक थी; सूखी हुई हड्डियों में आज उत्साह नज़र आ रहा था। किसी के हाथ में फटे चिथड़े हैं, कोई एलुमुनियम या पीतल-तांबे के घिसे घिसाये बर्तन लिये हुये मोनाई की दूकान की तरफ़ भागा जा रहा है। चारपाई के पाये, हल के फाल, मछली पकड़ने के जाल और कांटे, बढ़ई और लुहारों के औज़ार--जिसके घर में जो कुछ भी बचा था उसे लिये हुए वह दौड़ा चला जा रहा था।

आज गांव में कंट्रोल का ढिंढोरा पिटा था। दुअन्नी-चवन्नियां भी आज अरसे बाद चावल ख़रीदने में समरथ हुई हैं। अब अकाल के पांव उखड़े। सरकार में सुनवाई हो गई। सुना है, कुछ दिनों बाद अनाज मुफ्त में बांटा जायगा। अब फिर से अच्छे दिन बहुरेंगे। इस बार ईश्वर ने चाहा तो फ़सल पहले से भी अच्छी होगी। जब कटेगी तो सारा देश फिर से स्वर्ण बन जायगा।

कंट्रोल का आर्डर मौत से लड़ती हुई इन ज़िंदा लाशों में फिर से ताज़गी ले आया है। पांचू सोच रहा था--हमारे देश के निवासी कितने सरल हृदय के हैं! उन्हें ख़ुश करने के लिये सिर्फ़ बहाना ही काफ़ी होता है। एक लंगोटी और मुट्ठी भर अन्न तक ही उन्हें स्वर्ग के सुखों की चाह है। उन्हें न मोटरें चाहियें, और न महल। पांचू को याद आया, एक दिन दयाल बाबू ने स्काच व्हिस्की की एक दर्जन बोतलें मंगवाने के लिये एक आदमी को ख़ास तौर पर कलकत्ते भेजा था। मगर अस्सी रुपये फ़ी बोतल तक ख़र्च करने के लिये तैयार होने पर भी ब्लैक मार्केट में न मिलीं। दयाल बाबू कितने परेशान नज़र आते थे! कितने दर्द के साथ कहा था--"देखिये मास्टर बाबू, क्या ज़माना आ लगा है! अस्सी रुपये ख़र्च करने पर भी स्कॉच नहीं मिल रही!"

दयाल जमींदार को शराब की एक बूंद तड़पा रही थी, और दयाल की प्रजा को चावल की एक कनी। कैसा विचित्र साम्य था! उसके कुछ दिनों के बाद जब कंट्रोल से तीस रुपये पर स्कॉच मिलने की खबर दयाल बाबू को मिली थी, तब वे कितने उत्साह में आये थे! आज चावल पर कंट्रोल हुआ है। प्रजा का उत्साह देखो--मोनाई का उत्साह देखो!

मोनाई की दूकान के आगे भीड़ लगी हुई थी। कान पड़े बात न सुनाई देती थी। नाक पर चांदी की कमानी का चश्मा चढ़ाये मोनाई एक-एक चिथड़े-गुदड़े को उपेक्षा के साथ देखते हुये उनकी परीक्षा में व्यस्त था। अजीम पास ही बैठा हुआ इस कबाड़खाने की प्रदर्शिनी का हिसाब मोनाई के आदेशानुसार खाते पर टांकता जाता था।

मोनाई की दूकान से दस कदम दूर, बाईं मोड़ पर एक पेड़ था, जिसकी पत्तियां इन्सान के पेट की आग को बुझाने में काम आ चुकी थीं; जिसकी कई डालें इंसान की भूख से उलझ कर टूट चुकी थीं; और जिसका नंगा कंकाल भूखे बंगाल का प्रतिनिधि बन कर मोनाई की दूकान के सामने गूंगे गवाह की तरह खड़ा था। पांचू उसके नीचे खड़ा खड़ा मोनाई की दूकान के सामने का तमाशा देखने लगा।

"दो कटोरे और एक धोती। ये धोती है? हि! ससरी फोकट में भी महंगी है। लिखले, लिखले, ६ पैसे भोलू के नाम। साला कंटोल का भात खायगा।" कटोरे बर्तनों में और धोती कपड़ों के ढेर पर फेंकते हुये मोनाई ने अजीम से कहा।

अजीम की न रुकने वाली कलम आगे बढ़ी। सिर झुकाये हुए, लिखते-लिखते वह बोलता भी जाता था--"भोलू--६ पैसे"

भोलू नाम के नर-कंकाल की कांपती हुई धीमी आवाज गिड़गिड़ाई--"पेट न भरेगा मोनाई। चार आने--चार आने तो लिख लो। दस दिन के भूखे हैं।"

मोनाई डपट पड़ा--"अबे तू भूखा है तो यहां कौन पेट भर के खाता है? तुम लोगों की दसा देख-देख के सांस तक तो अमाती नहीं पेट में। ६ पैसे कम हैं

बे ? सालों को जित्ता जादा दो उत्ता ही हाथ पसारेंगे। भगवान जी ने गीता जो में कहा है कि संतोख से काम लो, सो नहीं होता। हुं:। ये अलमुनिया का कटोरा और थाली—चार डबल पटल के नाम।"

बेचने वाले को सौदा करने का हक़ न था। ख़रीदने वाला मनमाने दाम लगा रहा था। लोग जल्द से जल्द अपनी चीज़ें बेच कर चावल पाना चाहते थे। सत्तर-अस्सी आदमी खड़े थे। मोनाई की दूकान में कपड़ों का ढेर था, टूटे पुराने बर्तनों का ढेर था, लोहा-लंगड़, मछुओं के जाल, चारपाई के पाये वग़ैरा जमा हो रहे थे। चावल कहीं भी नहीं दिखाई देता था। मोनाई का कैश-बाक्स भी वहां नहीं था। मोनाई बकता था, गालियां देता था, माल रखता था, और अज़ीम से चिट्ठे में दाम टँकवाता चलता था। सब के नाम लिख कर बाद में पैसे वग़ैरह बांटे जायेंगे, यह सब से कह दिया गया था।

हर शख़्स जल्दी में था। हर शख़्स यह चाहता था कि उसकी चीज़ें पहले ख़रीद ली जायं। चिट्ठे पर अपना नाम और दाम टँक जाने के बाद हर आदमी अपने चावल पाने के अधिकार को सुरक्षित समझता था। भूख की बेचैनी ज़रा देर के लिये बुझ-सी जाती थी। चिट्ठे पर नाम लिख जाने के बाद लोग दूकान से हट कर, आसपास ही धरती पर या तो लेट जाते थे, या दो चार की टोली में बैठ कर बातें मठोरते थे। कोई आठ, कोई दस, कोई बारह दिनों से भूख के शिकञ्जे में अपने परिवार के साथ जकड़ा हुआ, पास आती हुई मृत्यु को भयानक, भयानकतर, भयानकतम रूप से देख-देख कर, भय और चिन्ता के जड़-स्वरूप को अनुभव करते हुये शून्य से लड़ रहा था। पैरों तले दबी हुई चींटी की तरह, सत्ता के भार से दबा हुआ ग़ुलाम इन्सान बड़ी ही मुश्किल से जीवन का मोह तोड़ कर, अन्तिम क्षण की प्रतीक्षा में अपनी सारी मनोवृत्तियों को बड़ी लाचारी के साथ मृत्यु में एकाग्र कर रहा था। कंट्रोल की राह पाते ही वह मृत्यु के पञ्जे से जान छुड़ा कर भाग निकला। जीने के लिये अगर प्राणी को एक पल भी और मिल जाय तो इससे बढ़ कर ख़ुशी की दूसरी बात ही क्या हो सकती है ?

पेड़ के सहारे टिक कर खड़ा हुआ पांचू यह तमाशा देख रहा था। अपने-पन को इन तमाम लड़ती हुई जानों में लीन कर, एकात्म भाव से, अपनी चेतना

और बुद्धि को वह इस तस्वीर में एकाग्र कर चुका था। हर आती-जाती शय के साथ उसकी निगाहें दौड़तीं, दिमाग़ दौड़ता। शहर के राजनीतिक समाज में पनपा हुआ बंगाली दिमाग़ मजबूरी की ज़ंजीरों में गले-गले तक जकड़े हुये, भूखे नंगे ग़ुलाम (मगर इन्सान) की हालत पर ग़ौर कर रहा था--"इसे अहिंसा का आदर्श भी तो नहीं कह सकते। इसे योगी का मोहत्याग भी नहीं कहा जा सकता। कुत्ते-बिल्ली की मौत!" फिर सोचा--"कुत्ते-बिल्ली भी आसानी के साथ अपने पेट के हक़ से हटाये नहीं जा सकते। वे मरते-मरते भी अपनी पूरी ताक़त और आवाज़ के साथ मौत बन कर सामने आने वाले हर ज़ुल्म से डट कर मोर्चा लेंगे। मगर हम तो भुनगों की मौत मर रहे हैं, न आवाज़, न ज़ोर!"

पांचू सोच रहा था--"क्या दुनिया के किसी देश, किसी क़ौम का आदमी अपने लिये यह मौत पसंद करेगा? फिर क्यों नहीं उसे अंजाम का ख़याल आता? वह क्यों यह भूल जाता है कि जो अत्याचार मनुष्य अपनी सत्ता के ज़ोम में किसी दूसरे पर करता है, वे ही उलट कर कभी उसके ऊपर भी हो सकते हैं?"

पांचू तस्वीर को उलट कर देखने लगा। मोनाई की दूकान पर, समझो कि उसकी जगह पर भोलू, पटल, तिनकौड़ी या कोई भी भूख का सताया हुआ आदमी ज़बर्दस्ती चढ़ कर बैठ गया हो, और मोनाई को वह अपनी ही तरह दस-बारह रोज़ तक भूखा रखने के बाद चावल की आस दिला-दिला कर ललचा रहा हो। उस हालत में कंकाल मात्र मोनाई किस तरह गिड़गिड़ायगा, परेशान होगा--इसकी कल्पना करने से पांचू को एक तरह की ख़ुशी हुई। उसकी इच्छा होने लगी कि एक बार भूखा रखने वालों को भूखे रख कर उनका तमाशा देखा जाय।

दयाल बाबू, राय भुवनमोहन सरकार, मिस्टर जॉर्डन, लेडी चटर्जी, लार्ड--पांचू की कल्पना हर एक 'बड़े आदमी' के भूख से तड़पते हुये चित्र देख-देख कर हिंसक आनन्द लूटने लगी। व्यक्तिगत सत्ता के लिये लड़ने वाले एक

बार भूख से भी तो लड़ कर देखें। दुनिया को राहत की नेमत बख्शने का दावा रखने वाले ये बने हुये मसीहा ख़ुद अपने पेट से भी तो एक सवाल पूछकर देखें-- क्या वे पेट की गाली बर्दाश्त कर सकेंगे? कोई कर सका है? तब फिर वे किसी दूसरे को क्यों देना चाहते हैं, क्यों दे रहे हैं?"

थाली के पानी में चांद को छूकर बहले हुये बच्चे की तरह घमंड को उभारती हुई ख़ुशी की तमक पांचू के चेहरे पर छा गई। अपने सामने अपने ही बड़प्पन को ढील दे-देकर बढ़ाते हुये, अपनी ही आवाज़ को वह एक महान् आत्मा की वाणी की तरह सुन रहा था।

उस वक्त पांचू मास्टर का पेट भरा हुआ था। मोनाई से बेंचों का हिसाब-किताब समझने के लिये आया था, सो यह भुखमरों का हिसाब सामने आगया। उसके आस-पास, चारों तरफ़, टोलियों में जगह-जगह फैल कर बैठा हुआ जन-समूह चावल की आस में, संतोष-सुख का स्पर्श पाकर बहक रहा था। यों तो, आजकल हर वक्त, हर रोज़ आदमी बहकता ही रहता है, मगर आज अरसे के बाद ज़रा ख़ुशी में बहका।

बीच-बीच में चारों तरफ़ निगाह दौड़ा कर पांचू लोगों के चेहरों पर ख़ुशी का अंदाजा लगा रहा था। उसकी पीठ पीछे ही, पेड़ के पल्ली तरफ़, केष्टो नन्दी अपने फटे हुये स्वर को अपनी पूरी ताक़त ख़र्च करके, पुराने ज़माने की ख़ुद अपनी ही बुलन्द आवाज़ के स्टैण्डर्ड तक ऊँचा उठाने की कोशिश कर रहा था। कहावत थी कि केष्टो बोलें तीरघाट तो मीर घाट तक आवाज़ जाय। अपनी पूरी आवाज़ के साथ बोलने की कोशिश में जल्दी-जल्दी हांफता हुआ केष्टो कह रहा था--"उसने मेरी बहन को घर से निकाल दिया। कह दिया, हमारे घर में तेरे लिये खाने को नहीं है। कहा, भाई के जा, जब अकाल खतम हो जाय तो लौट आइयो। अरे पूछोऽऽऽ, मैं भाई हूँ तो क्या तू उसका कोई नहीं? एं! धरम की मानो तो तू तो उसका पति है--स्वामी! तूने उसका हाथ पकड़ कर जीवन-मरन की गांठ बांधी। और जब बिपता पड़ी तो वही हाथ पकड़ कर उसे घर से बाहर निकाल दिया!

एँ! इससे बढ़ कर नीचता और क्या हो सकती है ? उस बखत, सच्ची मानो निमाई, इत्ती घिरना हुई, कि देखो, आदमी कित्ता नीचे गिर गया है ! मन में पड़ा बैराग उपजा, तुम्हारी कसम। इस सनसार से चित्त फट गया मेरा। मगर, समझे, निमाई ? उत्ती बेला अपना धरम करने से मैं भी नहीं चूका। चट से मैंने भी उसी दम कुमू-नोनी की मा को हात पकड़ कर घर से बाहर निकाल दिया। वो साला समझता होगा कि उसके निकाल देने से मेरी बहन का कोई ठिकाना न रहेगा। अरे, केष्टो नंदी अपनी जान देके भी अपनी बहन को बचायगा। मने गिन्नी से सफा कह दिया कि विदो अपने भाई के आई है, तू अपने भाई के जा। चल निकल ! मेरा बेटा समझता होगा कि वही अकेला अपनी गिन्नी को निकाल सकता है। अरे मैं उससे भी बढ़ कर साढ़े सात हात का कलेजा रखता हूँ। केष्टो नंदी अपनी आन का पक्का है—हांऽऽऽ!"

पांचू ने अनुभव किया कि अन्तिम वाक्य कहते हुये केष्टो नंदी ने अपनी आवाज को खींच-खांच कर, किसी तरह अपनी बुलन्दी का फिर से नया रिकार्ड स्थापित कर ही दिया। वह सोचने लगा—शर्म जब अपनी हद से गुजर कर बेशर्म बनती है, तब उसकी चेतना से बचने के लिये आदमी अपनी असलियत का जोर-शोर से ढिंढोरा पीट कर उसे न्याययुक्त सिद्ध करता है। चेतना बेशर्मी का बाना छोड़, न्याय और सत्य का अभिमान बन कर, इन्सान को हीनभावना की नजरों से बचाती है। इस बात को वह अपने गांव के आदमियों में इधर बराबर नोट कर रहा है। हर आदमी, जिसके शरीर में जरा भी ताक़त है—और आबरूदार तो क़रीब क़रीब सभी—एक क़िस्म की झूठी अकड़ की आड़ में दर्द को छिपाये हुये मन-ही-मन में मचल रहे हैं। खाने को मिलता नहीं। परिवार के पुरुष अपनी जिम्मेदारी को महसूस करते-करते, अपनी मजबूरियों का ध्यान करते-करते, पागल हुये जा रहे हैं। आंखों के सामने देख रहे हैं—बच्चों की हड्डियां दिन-ब-दिन चमकती जा रही हैं और मांस सूखता जाता है। पंसलियों के उभार में पेट दबा चला जाता है। आंखें घनी अंधेरी कोठरी में टिमटिमाते हुये दिये की तरह गड्ढों में दिखाई देती हैं। हाथ पैर सूख कर लकड़ी हो गये हैं। खाने की आस मरती जा

रही हैं—और बच्चे भी। यह देख कर कौन ऐसा बाप होगा जिसकी मर्दानगी पर लानत न बरस जाती होगी। अपना और अपने आश्रितों का पेट न भर सकने की मजबूरी किसका कलेजा पकड़ कर न मसोस देती होगी ? वह अपने बच्चों का पेट नहीं भर सकता, अपनी पत्नी, बूढ़े मां-बाप, आश्रित भाई-बहिनों को खाना नहीं दे सकता, वह खुद अपने को भी नहीं खिला सकता। और फिर भी वह भी जी रहा है। यही उसे खल रहा है।

जीवन की सबसे बड़ी असफलता का तमाचा खाकर इन्सान तिलमिला उठा है। ईश्वर से लेकर अपने तक, वह हर एक के प्रति विद्रोह का भाव रखता है। जीवन की टूटती हुई डोर और जीवन के मोह में बराबर खींचतान चल रही है। सुबह होती है, हर रोज आदमी अपने खयालों में ताजगी लेकर उठता है कि आज खाना मिलेगा—कहीं से अचानक कुछ करिश्मा हो जायगा और सब के सामने खाने की थालियां आ जायंगी। जो कहीं ऐसा हो जाय तो चारों तरफ़ खुशी की लहर दौड़ जाय। गांव का चेहरा पलट जाय। "मोनाई का मूं इत्ता-सा होके रह जाय कि अरे, अब मेरा माल कौन खरीदेगा ?"

आदमी दिन भर अपने को आस दिला-दिला कर बहलाता रहता है। ज्यों-ज्यों दिन ढलता है, रात आती है, उसकी उम्मीदों पर भी अंधेरा मंडराने लगता है। वह गंभीर और फिर चिड़चिड़ा होने लगता है। मौत के आलम में तारों को भूखी निगाहों से देखते हुये किसी दर्द भरे की चीख़ बेसाख्ता कराह उठती है। अंधेरी रात में दूर-दूर तक चीख़ने और कराहने की आवाजें आती हैं। हिस्टीरिया के दौरे में रोते-चीख़ते और इधर-उधर भागते हुये इन्सानों के साथ कुत्तों का शोर मौत की दहशत से लोगों का दिल हिला देता है। रात आंखों में कटती है, और धीरे-धीरे, चमत्कार की तरह आने वाले रुपहली उजाले की शह पाकर सूनी शाखों पर चिड़ियां चहचहा उठती हैं।

आस को टूटता हुआ देख कर आदमी चिड़चिड़ा रहा था। भूख बेआसरा, बेसहारा हो गई थी। भूख का ध्यान छोड़ कर लोग किसी और तरफ़ अपना ध्यान लगाना चाहते थे, मगर उसके लिये भी कोई चारा न था। स्त्री और

पुरुष का सम्बन्ध शारीरिक बल के साथ-साथ टूटता जा रहा था। बहुत उत्तेजना होने पर एक दूसरे के शरीर से नोचा खसोटी करके हांफ जाते थे। यह परती, भूख की पस्ती के साथ-साथ दिल की आग को दुबाला करके भड़काती थी। मन के किसी परदे में शारीरिक सुख का मोह होने पर भी, अपनी पूरी चेतना के साथ, मनुष्य स्त्री-पुरुष के शारीरिक योग से नफ़रत करने लगा था। कितने ही घरों से पत्नियां निकाली गईं, और कितनी ही पत्नियां अपने पतियों को छोड़ कर चली गईं। औरतों और छोटे बच्चों से रिश्ते टूटने लगे। मां-बाप, बहन-भाई भी खलने लगे। एक दूसरे की सूरत देखते ही आंखों में ख़ून उतर आता। हर आदमी यह सोचने लगा कि अगर दुनिया में वही अकेला होता तो कभी भूखों न मरता। आदमी आदमी को अपना जानी दुश्मन समझने लगा। पड़ोसी और नाते-गोते के लोग तीन-तीन पीढ़ियों की छोटी से छोटी बातों को याद कर एक दूसरे से लड़ने के मौके खोजने लगे।

मध्यवर्गीय आबरूदार अपने दिल के ग़ुबारों को आबरू की फटी चादर में बांध कर, गांव भर में उसे बिखेरते हुए चलते। इनकी दशा और भी बुरी थी। नंगे घूमते पर शांतिपुरी धोती जोड़ों की बातें करना, बाबाराज के छत्तीस पकवानों की चर्चा। हर एक आबरूदार के दादा या परदादा के यहां दयाल जमींदार का दादा या परदादा गुमाश्ता रह चुका था——भूख से तड़पते हुये पेट को बड़ी-बड़ी बातों से बहला कर अपने दर्द को दिल ही दिल में कस रखने की हर कोशिश पानी की तरह बह जाती थी।

पांचू अपने ही घर में देखता है, पास-पड़ोस में भी देखता है, आदमी भूख से ज़्यादह अपनी आबरू की रक्षा करने के लिए परेशान है। तरह-तरह के उपाय सोचता है; और उसके सारे उपायों, मनसूबों पर पानी फिर जाता है।

हारान भट्टाचार्य के घर में तीन दिनों से फ़ाके हो रहे थे। अपने घर के दरवाज़े बंद रखने पर भी उसे बराबर यही शक बना रहा कि दुनिया वालों को उसके यहां अकाल आने की ख़बर लग गई है। यह चीज़ उसे बराबर परेशान करती रही। तीसरे दिन एक उपाय सूझा। घर से बाहर निकला और लोगों

से बात निकाल-निकाल कर यह जाहिर किया कि उसे बदहज्मी हो गई है और वह बांडुज्ये मोशाय के यहां चूरन लेने जा रहा है।

रिश्ते बेहद खुल रहे थे। परेश घोषाल ने एक दिन अचानक ही अपने छोटे भाई और विधवा बहन पर अनैतिक संबंध का दोषारोपण कर दोनों को को घर से निकाल दिया।

कानाई घटक के बाप मर गये थे। आबरू की रक्षा के लिये श्राद्ध करना जरूरी था। कानाई ने दयाल के एक समृद्ध गुमाश्ते परान हालदार से सौदा तय किया; अपनी पत्नी को ज़बर्दस्ती वेश्या बनने पर मजबूर किया। और जब परान बगैर पैसा कौड़ी दिये हुये ही जाने लगा तो वह ग़ुस्से से पागल हो गया। दोनों की गाली-गलौज और चीख़-गुहार सुन कर मकान में आसपास के लोगों की भीड़ जमा हो गई। जिस आबरू को बचाने के लिये उसने अपने ही हाथों अपनी पत्नी की आबरू गंवाई थी, वह देखते देखते ही लुट गई। कानाई की भुखमरी पत्नी भीड़ से घिरी हुई अपनी लाज की लाश को यों सड़ते हुये देख रही थी। कानाई घटक को धक्का देकर ज़मींदार का गुमाश्ता परान हालदार भीड़ चीर कर चलता बना। कानाई आज पागल होकर घूमता है। पागलपन में वह किसी को नुकसान नहीं पहुँचाता, सिर्फ़ अपनी आबरू की शेखी बघारता है।

हर एक के घर की कहानी हर एक को मालूम है। फिर भी आबरू की टूटी ढाल का सहारा नहीं छोड़ा जाता।

अस्सी प्रतिशत भले घरों की बहू-बेटियां मजबूर किये जाने पर, पैसों या खाने के लालच से, अथवा भूख और चिंताओं की उलझन से छूट कर दो घड़ी ग़म ग़लत करने की नीयत से वेश्यायें हो चुकी हैं।

जातियां सिर्फ़ नाम लेने के लिये ही रह गई हैं। वर्णभेद को कोई टके सेर भी नहीं पूछता। हिन्दू मुसलमान का भेद मिट चुका है। सभी भूखे हैं, सब की एक सी ही हालत है। सब लोग दुनिया से परेशान नजर आते हुये भी दरअस्ल खुद अपने से ही परेशान हैं।

पांचू सोच रहा था, अगर उसके घर में भी कभी बहुत दिनों तक अकाल पड़ने को नौबत आई तो क्या रिश्ते, आबरू, अपने-पराए का ममता-मोह, शील, विनय--क्या यह सब कुछ उसके घ र में टिक सकेंगे ?

इस प्रश्न ने पांचू को मन ही मन चौंका दिया, दहला दिया। मन में एक बार यह बात उठ आने पर इससे बचना भी पांचू को मुश्किल मालूम हो रहा था। इस नग्न सत्य के तेज को वह बर्दाश्त नहीं कर पाता था। वह अपने घर के हर आदमी को, दुनिया की रफ़्तार देखते हुए, आने वाले समय के तराज़ू पर तौलने लगा।

सबसे पहले उसका ध्यान शिबू की ओर हो गया। घर में जो कुछ भी बुराइयां आयेंगी तो वह दादा के ही कारण। मा तो ऐसी दशा होने से पहले ही मर जायगी--ज़रूर मर जायगी। उसे मर ही जाना चाहिए। भावज को दादा वेश्या बनने पर मजबूर कर सकते हैं--हालांकि बोदीदी ऐसी हैं नहीं। वह बड़े ही दृढ़चरित्र की हैं। तुलसी के आसार यों भी अच्छे नज़र नहीं आ रहे। मंगला बतलाती थी कि वह काकी नंबर आठ के भाई से कुछ गड़बड़ कर आई है। और मंगला ? नहीं-नहीं, न न........

इस दिशा में कल्पना को ढील पाकर पांचू का मन एकदम से अस्थिर हो उठा। उसके सिर की नसें तन गईं। दिमाग़ पर ज़रूरत से ज़्यादा बोझ पड़ गया। मन की बेचैनी ने पागल-खूनी की तरह हिंसक रूप से उत्तेजित होकर उसे बुरी तरह से अस्थिर कर दिया। उसकी आंखों में ख़ून उतर आया, मुट्ठियां तन गईं, जबड़े भिच गए--उसका सारा शरीर आंतरिक उत्तेजना के वेग से कांप उठा। उसकी चेतना और विचार शक्ति कुछ क्षणों के लिए लुप्त हो गई। तभी सहसा उसका ध्यान बाहर की एक घटना की तरफ़ बरबस खिंच गया। और वह बच गया।

उसके पास ही, थोड़ी दूर पर हंगामा मचा हुआ था। तुलसी बोष्टम अपनी पत्नी की फटी हुई धोती खींच रहा था। और वह अपनी शक्ति भर चीख़-चीख़

कर रोती हुई, उस हज़ार जगह से फटी हुई मैली धोती को अपने तन से चिपकाए रखना चाहती थी।

तुलसी कहता था--"अपनी धोती दे दे। मोनाई से चावल लूंगा।"

उसकी पत्नी कहती थी कि तुम अपनी धोती क्यों नहीं बेच देते?

तुलसी का कहना था कि मैं मरद हूँ; दस बार बाहर-भीतर दौड़ धूप करूँगा तो खाना मिल भी सकेगा। तू औरत बानी तेरा क्या, दरवाजा बन्द कर के कोठरी में पड़ी भी रह सकती है।

तमाशाई दोनों तरह के थे। तुलसी के पक्ष वाले ही ज़्यादा थे। नज़ीरें पेश की जा रही थीं--कइयों के घरों में औरतें इस तरह नंगी बैठी हैं।

पुरुष शक्ति के आगे अन्त में स्त्री को झुकना ही पड़ा। गहरी चोट खाकर अशक्त नागिन की तरह, तुलसी की पत्नी अपनी लाचारगी पर फुफकार कर उठी। कुचला जाने पर अहं उत्तेजित होकर उसके भूखे शरीर में फुर्ती ले आया था। आंसुओं ने बहुत दिनों से आंखों में आना छोड़ दिया था, मगर लाज से बिदा लेते हुए आज उसका दिल पानी-पानी होकर बहने लगा। जाते जाते कह गई--"औरतों की लाज भी बेच कर खा लो! कै दिन पेट भर लोगे?"

तिनकौड़ी अच्छे दिनों में नम्बरी पियक्कड़ों में गिना जाता था। आज भी उसी रिन्दी फ़िलासफ़ी में अपने दिल के दर्द को छिपाए रखता है। तुलसी की घर वाली के फ़िकरे पर उसने आख़िरी चुटकी छोड़ी--"लाज ही नहीं लक्खी, औरतें भी बिकेंगी। बाकी रहा पेट--हेऽऽ हेऽऽ हेऽऽ!"

गले से बनावटी हँसी निकाल कर तिनकौड़ी ने सचाई को मनहूसियत का जामा पहना दिया।

* * * *

कोलाहल! गला घुटते हुए कमजोर, मजबूर जंगली जानवरों का बेबस गुस्से से भरा हुआ करुण आर्तनाद!

अपने ख़यालों से चौंक कर पांचू ने मोनाई की दूकान की तरफ़ देखा। लोग आपे में न थे। दूकान पर चढ़े दौड़ते थे। जोश में अपनों को भी कुचलते हुए बढ़ रहे थे। अपनी मर्मान्तिक पीड़ा और क्रोध को जताने के लिए उन्हें अपनी हज़ारों बरस की भाषा में ढूंढ़े दो अच्छर भी न मिले; आदिम-युग के मनुष्य की तरह, अपने प्राकृतिक रूप में, व्यक्ति की पीड़ा समाज बन कर चीख़ उठी।

ठठरीनुमा पेड़ के नीचे बैठे हुए पांचू के कानों से ले कर आत्मा तक, उस चीख़ को दिल पर आरा-सा चलाती हुई गूंज से बिंध गई।

हज़ारों साल की अनुभवी संस्कृति के नीचे दबी हुई भाषा को मानव ने ढूंढ़ लिया—चारों तरफ़ से मोनाई को घेर कर गालियां और सख़्त बातें सुनाई जाने लगीं।

दूर से कुछ भी समझ में नहीं आता था। पांचू सोचने लगा, ये माजरा क्या है? जान पड़ता है मोनाई ने कोई नया टारपीडो चलाया है। वह उठ कर दूकान के पास गया। आस-पास के दूसरे तमाम लोग भी दूकान की तरफ़ भागे।

मोनाई कहता था—"चावल तो सरकार के पास है। पैसे ले जाओ।"

लेकिन पैसों का होगा क्या? पैसे खाये नहीं जा सकते। उन्हें देख-देख कर अपना जी भले ही भर लो। सोना, चांदी, हीरे-जवाहरात—ये सब पेट भरे का ढकोसला है। भूखे के लिए इनका कोई मोल नहीं। लाखों-अरबों का हीरा अगर खा लिया जाय तो वह जान का दुश्मन बन जाता है। ज़हर को आदमी ने कोहेनूर का रुतबा दिया है। ख़ुदी के प्यार में आदमी इतना चालाक बना कि ख़ुद को ही अपना दुश्मन मान बैठा। चमकते हुए पत्थरों और धातुओं से आदमी अपनी ख़ुदी की क़ीमत आंकने लगा। स्वार्थी व्यक्ति मुर्दा चमड़े की थैलियों में सोने-चांदी की चमक को भर कर अपने कलेजे को ठंडा करता है; जब कि ज़िंदगी समाज के लाखों प्राणियों के पेट की ख़ाली थैलियों से अपना हक़ पाने के लिए ज़िद करती है—जोश में तड़पती है। और वह अपना हक़ लेके छोड़ेगी।

खाज के कारण खड़िया की तरह निकल आने वाली खुरदरी चमड़ी में

पसलियों की लकीरें चमकती थीं। कइयों के हाथ पैरों में सूजन आ गई थी। शरीर में जगह-जगह से पानी रिसता था। गर्मी, सूज़ाक और खून की बीमारियों से सड़े हुए शरीर एक दूसरे से रगड़ते, धक्कमधुक्का करते, मोनाई पर अपना अपार, अकर्मण्य रोष प्रकट करने के लिए उसकी दूकान पर चढ़े जा रहे थे। इतनी दुर्गन्धपूर्ण देहों से घिरे हुए मोनाई का दम घुटने लगा। शिकायतें चारों तरफ़ से उसके ईमान को घेर कर उसका नाकों दम कर रही थीं--"तुमने हमें पहले क्यों नहीं बताया कि चावल नहीं है। तुमने हमारा सामान क्यों ख़रीदा? हमें धोखे में क्यों रक्खा? मोनाई, हज़ारों की आत्मा को तड़पा कर तुम सुखी नहीं हो सकते। तुम्हारे रोम रोम में कीड़े पड़ेंगे। हमारे पेट की ज्वाला में तुम्हारी लाखों की दौलत जल कर राख हो जायगी। तुम कुत्ते-बिल्ली की मौत मरोगे। सड़-सड़ कर मरोगे।........"

मोनाई उठ कर गरज उठा--"अभी तो तुम लोग ही सड़-सड़ कर मर रहे हो। मेरा क्या दोस है? मैं किसी का गला नहीं काटता; किसी के घर डाका नहीं डालता। जो रूखी-सूखी भगवान जी मुझे इस बैपार में दे देते हैं उसी से संतोख कर लेता हूँ। सरकार से क्यों नहीं मांगते, जिसने कंटोल किया है? चलो जाओ। भीड़ हटाओ मेरी दुकान से। अपने-अपने पैसे लो और चल दो।"

पल भर के लिए मोनाई का रौब जमा। उसके तमक कर खड़े होते ही लोग एक क़दम पीछे हट गए थे; मगर ठगे जाने की खीझ लोगों में मोनाई के रौब से भी ज़्यादा तेज़ थी। भूखे भेड़ियों की तरह लोग उसके ऊपर टूट पड़े। बुरी तरह से उसकी गत बनाने लगे। हर चीज फेंकनी शुरू कर दी। कुछ लोग उसके घर के दरवाजे तोड़ने लगे। अज़ीम अपनी जान बचा कर भाग निकला।

बदले के जोश में भीड़ मोनाई के घर के अन्दर भी जा घुसी। घर की हर चीज़ तोड़ी-फोड़ी जाने लगी। मोनाई की पत्नी छाती कूट-कूट कर लोगों को कोसने लगी। उस पर भी मार पड़ी। न्याड़ा पिटा। मोनाई पर तो लोगोंने थूका, उसके बाल नोचे, उसे बुरी तरह से मारा। घर में लूट-पाट मचा दी। जो चीज़ सामने आई उसी पर ग़ुस्सा उतारा जाने लगा। कुछ लोग रसोईघर में घुस गए।

तैयार रसोई को खाने के लिए आपस में भी चल गई। सारा अन्न इधर उधर बिखर गया। घर की एक-एक कोठरी उलट कर रख दी गई। कुछ लोगों ने तहख़ाने का पता पा लिया। भूख की सम्मिलित शक्ति ने दरवाज़े तोड़ दिए।

गोदाम में बोरियों-पर-बोरियां चुनी हुई थीं। सारा गांव महीनों खाय और अन्न न चुके--इतनी! उन्हें देख कर जनता ख़ुशी से पागल हो उठी। चारों ओर कोलाहल और भयानक अट्टहास गूंज उठा।

मोनाई की पत्नी और न्याड़ा चीख़-चिल्ला रहे थे। मोनाई पिट-पिटा कर, चुपचाप, निर्विकार मुद्रा से खड़ा-खड़ा अपने घर की लूट पाट को देखता रहा। चावलों की बोरियां चीरी जा रही थीं। चावल गोदाम में बिखर रहा था। जनता हँस रही थी।

अचानक हँसी की गूंज में गोलियों की आवाज़ गूंज उठी। कई लोगों के लगी। लोगों ने देखा दयाल के सिपाही गोलियां दाग रहे थे, डंडे बरसा रहे थे।

ख़ुशी मौत की चीखों-कराहों में बदल गई।

अज़ीम दयाल जमींदार के लट्ठ और बन्दूकधारी सिपाहियों को ले कर लौटा था। वह बड़े जोश से सिपाहियों को लोगों पर डंडे और गोलियां बरसाने की ताकीद कर रहा था।

चारों तरफ़ छटपटाहट, चारों तरफ़ चीख-पुकार। ख़ून के दागों से मोनाई का घर रंग गया। मरभुखों की लाशों से मोनाई का घर श्मशान बन गया। सत्तर-अस्सी आदमियों में से बीस-पचीस भूख के शहीद हो गये।

मोनाई बचा लिया गया। न्याड़ा बच गया। मोनाई की पत्नी रो-रो कर कोसने लगी। भीड़ तितर-बितर होने लगी। जान बचाने के लिए इधर उधर भागने लगी। हिम्मत छूट गई। जनता के हाथ में एक बार चावल आ कर फिर चला गया। इतनी जानें चली गईं। हार का ग़ुस्सा आंखों की लाली में दफ़न हो गया। भीड़ प्रलाप करती हुई, डगमगाते हुए पैरों पर अपनी हार का बोझ डाल कर घर से बाहर भागने लगी।

पांचू दूर एक कोने में खड़ा हुआ यह सारा कांड देख रहा था। जनता का भीषण विद्रोह भी देखा और उसका अमानुषिक दमन भी। आबरू और स्वार्थ ने उसे कायर बनाया था। मध्यवर्ग का, कुलीन, सद्गृहस्थ, अंगरेजी पढ़ा-लिखा हेड-मास्टर भला इन छोटे लोगों का साथ कैसे दे सकता है ? जब लोग न्याय के लिए लड़ रहे थे, तब भी वह दुबका हुआ खड़ा रहा, और जब लोगों पर अन्याय की मार पड़ने लगी तब भी वह वैसे ही दुबका रहा। हां, दिमागी जोर बराबर दिखाता रहा। जब लोग मोनाई के यहां लूट पाट मचा रहे थे तब पांचू जोश के के साथ ख़ुश था; और जब उन पर लाठियां, गोलियां बरसने लगीं तो वह जोश के साथ मोनाई, अज़ीम और दयाल के सिपाहियों का गला घोटने की बात सोच-सोच कर, जोश के साथ अपने मन को मसोस कर खड़ा रहा। वह 'बुद्धिमान' आदमी है। उसके दिल में आबरू का डर है। अपने घर वालों से और ख़ुद अपने से उसे प्यार है। बेचारा जनपक्ष का साथ कैसे दे सकता है ? मोनाई से तो उसे चावल लेना है। जनपक्ष का साथ देने से उसे और उसके परिवार को भूखों मरना पड़ेगा। लिहाज़ा वह अपना स्वार्थ और आबरू सम्हाले हुए, दुबक कर खड़ा रहा। हां, तमाशा देखने के शौक़ में वह अब तक यहां खड़ा रहा, यह क्या कुछ कम वीरता है ? अपनी कायरता के प्रति अचेतन, पूंजीपतियों के अत्याचार और श्रमजीवी किसानों की दीन दशा के लिए उसके मन में ग्लानि और दुःख की लहरें उठ रही थीं।

मोनाई अब परिस्थिति का राजा बन गया था। उसके गोदाम में, उसके आंगन और दालान में ख़ून से सनी हुई लाशें पड़ी थीं। उसका सारा घर अस्त-व्यस्त हो गया था, चीजें टूटी फूटी और लुटी हुई पड़ी थीं। उसके घर में कई ज़ख्मी पड़े थे। खून बह रहा था। कइयों के जीव निकलने से पहले तड़प रहे थे; प्राण छोड़ने की पीड़ा कराह-कराह कर दीवारों में भी दर्द पैदा कर रही थी।

अपने चारों ओर का वातावरण देखकर मोनाई मन ही मन कांप उठा। इन ज़ख्मियों और मुर्दों को देख-देखकर उसका दिल दहल रहा था। मन ही

मन में वह प्रार्थी था--"भगवान जी! मेरा कुछ भी दोस नहीं है। तुम तो घट-घट बासी, सब कुछ देखनहार हो, अंतरजामी हो दीनदयाला!"

अज़ीम अपनी शेखी बघार रहा था कि किस तरह उसने दयाल ज़मींदार से जाकर मदद मांगी, और इन सिपाहियों को लेकर यहां आया।

दयाल के सिपाही अपनी बहादुरी की डींग हांक कर मूंछों पर ताव दे रहे थे। लाशों को गालियां दे रहे थे और मोनाई से अपनी बहादुरी के लिए इनाम मांग रहे थे। मोनाई ने चारों सिपाहियों को पांच-पांच रुपए दिए। सिपाही उस पर रोब जमा कर पांच-पांच और मांगने लगे। मोनाई अपने नुकसान की दुहाई देने लगा; गांव वालों को, अपने घर में पड़े हुए ज़ख्मियों को, लाशों को गालियां देने लगा, गिड़गिड़ाने लगा--मगर उसे पांच-पांच रुपये और देने ही पड़े।

मोनाई पांचू की तरफ़ देखकर कहने लगा--"देख लिया मास्टर बाबू, ये है ऐसान का जमाना! होम करते हाथ जल गये। मेरे मन में तो धरम उपजा कि लाओ, चार डबल का नुकसान हो सही, इनके चिथड़े-गुदड़े खरीद लूं; बिचारे कहीं से कंटोल का चावल लाके अपना पेट भर लेंगे। मैं तो मन में बिचारे-बिचारे कहूं और ये ससरे ऐसे पापी निकले कि उपकार का बदला मुझे यों दिया।"

पांचू चुपचाप खड़ा रहा।

अपनी पीठ सहलाते हुये मोनाई बोला--"धरम का जमाना नहीं रहा बाबू। सत्त कहता हूं। सालों ने ऐसी मार मारी है कि हड्डियां कड़कड़ाय के धर दीं। कमीने ससरे, जमाने भर के पापी--ससुर घर की औरतों की इज्जत तक तो बेच के खा गये। इत्ता पापाचार फैलाया कि भगवान जी भी तिराह-तिराह करने लगे। सत्त कहता हूं। भला बताओ, कित्ती नीचता है कि मेरी घरवाली बिचारी पर भी हाथ उठा दिया! दुरदसा कर डाली बिचारी अबला की। मेरे न्याड़ा को पीटा। राच्छस कहीं के!"

"क्या हुआ मोनाई?" दरवाज़े से एक रौबदार आवाज़ आई।

मोनाई, अज़ीम, पांचू और वे सब गोलीमार, लट्ठमार सिपाही चौंककर दरवाज़े की ओर देखने लगे; अदब से खड़े हो गये। मोनाई हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए आगे बढ़ा। दयाल ज़मींदार आए थे।

मलमल का चुना हुआ कुरता, कलाबत्तू किनार की चुनी हुई बारीक धोती, गले में बिना शिकन पड़ा हुआ रेशमी दुपट्टा, बायीं कलाई में सोने की घड़ी, दोनों हाथों की उँगलियों में चार नगीने जड़ी हुई अंगूठियां दमक रही थीं। दाहिने हाथ में हाथीदांत की मूठवाली खुशनुमा छड़ी, पैरों में पम्प शू, कानों में इत्र की फुरहरी, मुंह में पान, आंखों में रात की पी हुई मद का खुमार, साथ में चार हाली-मुहाली--दयाल जमींदार ने अपनी चरणरज से मोनाई केवट का घर पवित्र किया था। दालान, तहखाने और आंगन में पड़ी हुई लाशों और घर की टूटी-फूटी चीजों का उन्होंने निरीक्षण किया। मोनाई बराबर हाथ जोड़े हुए उनके पीछे-पीछे घूमता और बीच-बीच में रोकर कहता जाता--"मैं तो लुट गया अन्नदाता!"

दयाल जमींदार ने तहकीकात की। सारा हाल सुना। बदमाश गांववालों को गालियां दी और यह भी बताया कि दारोगा साहब को खबर भेज दी गई है। दारोगा के आने से पहले, दयाल ने मोनाई को सलाह दी, कि तहखाने से लाशों को हटवाकर चावल के गोदाम को छिपा दिया जाय।

फौरन ही दयाल बाबू के लिए एक चौकी पर ऊँची गद्दी लगा दी गई। वे उस पर बैठ गए। दयाल का छतरीबरदार छतरी को बगल में दबाकर उनको पंखा झलने लगा। एक नौकर ने पान का डब्बा पेश किया, दूसरा उगालदान लेकर आगे बढ़ा। दयाल बाबू ने मुंह में दबी हुई गिलौरी उगालदान में थूकी, दो नए पान जमाये, चुटकी भर जर्दा खाया। नौकर ने रेशमी रूमाल पेश किया, दयाल बाबू ने हाथ पोंछ लिए। फिर पांचू मास्टर को इज्जत बख्शी, अपने पास बुलाकर बिठाया, दो पान खिलाय और सख्त गरमी की शिकायत करने लगे। पंखेवाले ने जोर से पंखा झलना शुरू किया।

दयाल जमींदार से आदर पाकर पांचू के दबे हुए बड़प्पन को बढ़ावा मिला। वह सोचने लगा कि एक लक्ष्मी का पुत्र है और दूसरा सरस्वती का पुत्र--दोनों एक ही आसन पर बैठने के योग्य हैं।

लक्ष्मी के पुत्र की गंगा-जमुनी पनडब्बी से केवड़े में बसाये गये पान के बीड़े खाकर सरस्वती के पुत्र ने अभिमान से मस्तक उठाकर अपने चारों ओर देखा। मोनाई दयाल जमींदार के पैरों के पास जमीन पर बैठा हुआ था। उसकी मुद्रा बड़ी ही दयनीय थी और वह जमींदार को हाथ जोड़ रहा था। पल भर के लिए बड़ी ही हिक़ारत के साथ पांचू की नजरें मोनाई पर ठहरीं, फिर उसे अपनी चोरी की याद आ गई। मोनाई ऐसा नीच उसके चोरी से स्कूल की बेंचें बेचने के राज को जानता है। आबरू के भय ने पांडित्य के अभिमान को ताक पर रख दिया।

गद्दी पर बैठा हुआ पांचू सिहर उठा। नजरें फिरा लीं। सामने, धूप भरे आंगन में, मरभुखों की लाशें जमीन को अपने खून का तर्पण देकर दयाल जमींदार की आंखों के सामने पड़ी थीं--उसकी आंखों के सामने भी थीं, वह दयाल जमींदार के साथ बैठा था।

पांचू का बदन कांप उठा। अपने कमीज की बांह को छूती हुई दयाल जमींदार के कुरते की चुन्नट उसे इतना बड़ा बंधन मालूम पड़ने लगी कि वह उससे मुक्त होने के लिए अधीर हो उठा। मगर सरक कर वह जायेगा कहां? दयाल जमींदार तो बैठे हैं पूरी चौकी पर टांगे फैलाकर और पांचू बैठा है चौकी के १।८वें हिस्से में, कोने में, दुबक कर।

पांचू अब महसूस करने लगा कि उसका दर्जा समाज में दयाल जमींदार के बराबर नहीं है। दयाल ज़मींदार की कृपा से ही वह इस चौकी पर बैठकर पान के दो बीड़े पाने का सौभाग्य प्राप्त कर सका है।

पांचू की नजर मोनाई की तरफ़ गई। और उसने सोचा कि उसका स्थान मोनाई के बराबर भी नहीं है। मोनाई उस पर ऐहसान कर सकता है; लेकिन ऊंच जाति और नीच जाति की जबर्दस्त गांठ में बंधे होने के

कारण मोनाई उसका आदर करने को बाध्य भी है। पांचू मोनाई के मखमल में लपेटे हुए चमरौधे जूतों से बहुत डरता है। उसके पांडित्य को आघात लगता है। उसके शहरी कल्चर को चोट लगती है। उसके कर्मठ जीवन को चोट लगती है; और उसकी कुलीनता को बड़ा दुःख होता है। फौरन ही घृणा उपजी। उसने सोचा——नफरत के साथ सोचा, लाख भी हो लेकिन वह मोनाई की तरह किसी के सामने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाता हुआ हरगिज़ नहीं बैठेगा।

अपनी चारित्रिक उच्चता से पांचू के अहं को सहारा मिला। उसने नजरें फिरा लीं। नहीं, उसका स्थान मोनाई के बराबर हरगिज़ नहीं।

सामने आंगन में अधनंगी, जख्मों से भरी हुई लाशों की ओर पांचू ने देखा; हठपूर्वक देखता रहा। इन्हें दयाल जमींदार के लिए आज अदब का होश नहीं। इनके ऊपर आज मोनाई के कोई एहसान नहीं। इन्हें भूख का होश नहीं, अपना होश नहीं। ये लाशें उन मनुष्यों की हैं जो ईश्वर से मिला हुआ अपना अधिकार वापस पाने के लिए लड़ते-लड़ते मरे। कमजोरों से बढ़ कर जग में कोई ऊँचा नहीं। इसलिए आज ये लाशें मोनाई से ऊँची हैं; दयाल जमींदार से ऊंची हैं, शाहों-सम्राटों से भी ऊंची हैं; दुनिया की हर चीज ऊंची उठ गई हैं। इनके ऊपर आज किसी का जोर नहीं रहा है। ये आज आज़ाद हो गई हैं।

काश कि हक़ को पहचानने की समझ कुछ और पहले आ गई होती। इन्हें ही नहीं, सारे देश को अगर यह समझ आ गई होती तो आज यह दुर्दशा भी न होती। गुलामी का तौक़ पहन कर मरना मानवता के नियम के विरुद्ध है। हम अगर प्राण नहीं ले सकते तो कोई हर्ज नहीं। लेकिन हममें प्राण देने की शक्ति तो है। और यह शक्ति बहुत बड़ी शक्ति है। प्राण लेने वाला उस पीड़ा को सपने में भी नहीं जान पाता, जिसको प्राण देने वाला अनुभव करता है। प्राण देने वाला एक अनुभव लेकर मरता है, जिससे उसे संतोष होता है। और प्राण हरने वाला? वह बहुत बड़ा कायर है। वह

अपनी कायरता को बार-बार हत्यायें करके छिपाता है, इसीलिये चिंता कभी उसका साथ नहीं छोड़ती। दिन-रात एकाग्र होकर सिर्फ अपने थोथे रौब को ही सम्हालते रहना--भला यह भी कोई जीवन है। एक क्षण के लिए भी मुक्त नहीं, शांति नहीं, डर से घिरे हुये--हुंः ! गद्दी के गुलाम !

एक ही नज़र में दयाल बाबू पांचू को बहुत तुच्छ दिखने लगे। अपने बड़प्पन पर अभिमान हुआ। दयाल बाबू के तकिये पर कोहनी टेक कर वह जरा अकड़ कर बैठ गया।

पांचू फिर सोचने लगा, यह मिट्टी का माधो, सदा झूठी तारीफों की दुनिया में रहनेवाला यह अक्ल का दुश्मन मुझसे हजार दर्जा नीचे है। विरासत में दौलत मिल जाने से कोई आदमी बड़ा नहीं हो सकता। बड़ा वह है, जो अपने हक़ के लिए लड़ते-लड़ते प्राण देने की हिम्मत रखे।

फिर पांचू ने अपने-आप में महसूस किया कि वह प्राण देने की हिम्मत रखता है। "मेरा स्थान धूप में तपती हुई इन लाशों के बराबर है।"

पांचू फिर ग़ौर से लाशों की तरफ़ देखने लगा। फिर उसे लगा कि नहीं, उसमें और इन लाशों में थोड़ा-सा भेद है। इन लाशों में प्राण देने का विश्वास अगर समय पर आ गया होता--तो ? तो भी ये मरते ही, मगर इतना भुगत कर नहीं ! वे आज ऐसी मौत मरते, जैसीकि—जैसी कि मैं अपने लिए चाहता हूँ।

फिर पांचू उन तमाम बड़े-बड़े नेताओं की श्मशानयात्रा के शानदार जलूसों की बातें याद करने लगा जिन्हें या तो उसने आंखों से देखा था या पढ़ा-सुना था। वह अपने लिए बड़ी आदरणीय मृत्यु की कल्पना करने लगा। और उसी में खो गया।

५

मोनाई के मंदिर के द्वारे, घूरे पर, मेला लगा था। चील और कौवे आसमान पर, कुत्ते और आदमियों की फौज जमीन पर थी, और घूरे पर पड़ी हुई जूठी पत्तलों के लिए युद्ध चल रहा था।

मोनाई ने प्रेत-भोज दिया था। दस दिन पहले उसके घर पर चौबीस हत्यायें हुई थीं। उन भूखे प्रेतों को शांत करने के लिए कंठी-केसर-छाप भगत मोनाई ने हर एक के नाम पर बाम्हन न्योते थे।

गांव के बड़े-बड़े दिग्गज परिवारों का चूहा-चूहा तक जीमने आया था। नाते-गोते के लोग आये थे, गोसाईं लोग भी आए थे। सत्तर-अस्सी आदमियों का भोजन था।

मरभुखे सब थे, लेकिन ब्राह्मण सब नहीं। मरभुखों और ब्राह्मणों में भेद है, यह मोनाई के भोज ने बताया। अकाल न होता तो कभी इसका पता भी नहीं चलता कि केवटों के यहां ब्राह्मणों का भोजन करना शास्त्रसम्मत है। जब से भगवान रामचन्द्र का चरणामृत केवटों ने पान किया है, तब से वे पवित्र हो गये हैं। सात-सात आठ-आठ रोज के भूखे ब्राह्मण परिवार मोनाई केवट के मंदिर में भोजन करने जा रहे थे। अनेक भूखी आंखें उन्हें ललचाई हुई दृष्टि से देखती थीं। दो पछांही लठैत सिपाही मंदिर के दरवाजे पर खड़े थे। अन्दर न सही, लोग दरवाजे पर खड़े होकर सिर्फ भोजन करने के दृश्य को देखने के ही भूखे थे। कइयों ने अरसे से किसी को खाते हुए नहीं देखा था, लेकिन उन पछांह के लठैतों की बड़ी-बड़ी मूछों, लाल-लाल आंखों, जबर्दस्त घुड़कियों और लाठी की खटखट से किसी का सामने को तरफ जाने का साहस न होता था।

लड़कों की टोली, जिसमें पांच से लेकर दस-बारह बरस तक के लड़के शामिल थे, घूम-फिर कर डगमगाते हुए पैरों से मंदिर के दरवाजे के

सामने जाते थे। नंग-धड़ंग, हाथ-पैर सूखे हुए, पेट आगे, डगर-डगर आंखों से, भोजपुरिये लठैतों को देखकर अंगूठे चूसते थे। पत्तलों पर पत्तलें बाहर आ-आकर पड़ती थीं। ऊपर आसमान पर चीलें मंडराती थीं। कौवे झुंड-के-झुंड आ-आकर मंदिर की मुंडेरों पर बैठते और अपने दांव की घात में घूरे की तरफ देखते हुए कांव-कांव करते थे। जमीन पर आदमियों और कुत्तों में बाज़ी लगी थी। चीलों की चोंच कभी-कभी जूठी पत्तलों से चूक कर झुके हुए आदमियों की खोपड़ियों पर अपनी पूरी शक्ति के साथ पड़ती थीं। कुत्तों के पंजे और जबड़े अपने हक के लिए जान लड़ा रहे थे। और भूखा मानव इन सबसे लड़कर तथा स्वार्थ के लिए अपने से भी लड़ कर, एक मुट्ठी जूठा अन्न पाने के लिए जी-जान से भिड़ा हुआ था।

सुनकर, यह दृश्य देखने के लिए पांचू भी वहां आ पहुंचा। परिवार के साथ आज छः रोज से पांचू भी भूखा है। मोनाई ने उस दिन उसके गले पर भी छुरी फेर दी थी। हिसाब मांगने पर मोनाई ने साफ़ कह दिया—"मेरा तो पैसा डूब गया बाबू! सारी बिचें सड़ी भई थीं। जलाने की लकड़ी के भाव से भी खरीदने को कोई तैयार न हुआ। दस रुपए भी न निकले। फंदे से मेरे दो सेर चावल तुम पर चढ़ गए, लेकिन हम यह समझ के गम खा लेंगे कि चलो, बाम्हन-ठाकुर की भी थोड़ी-बहुत सेवा हो गई।"

इस नए मखमली चमरौधे ने तो पांचू की खोपड़ी पिचका दी। पल भर तो वह चौंक कर मोनाई के मुंह की तरफ ही देखता रहा।. चेहरे पर कोई शिकन तक नहीं, कोई तिकड़म नहीं। वही भोला-भाला तिलक-छाप लगा हुआ चेहरा, होठों पर वही एवर-रेडी दयनीय मुसकान और बात करने के ढंग में वही दीनता, वही दृढ़ता, सदा की तरह आमने-सामने देख कर बातें करना, कहीं से भी खोट नहीं, कहीं से मजाक या जालसाजी की बू नहीं।

पांचू स्तब्ध रह गया। निराशा ने उसे चारों ओर से घेर लिया। आंखों में आंसू छलछलाने की धमकी देने लगे। लेकिन पांचू अपनी हार किसी

के सामने दिखाना पसंद नहीं करता और मोनाई को जवाब देकर करे भी क्या? तेजी से वह बाहर चला आया।

प्रेत-भोज की बात पांचू के सामने ही दयाल जमींदार ने उठाई थी। दरोग़ा साहब भी वहीं बैठे थे। दो हजार नक्द दरोग़ा साहब को, पांच हजार रुपए वार-फंड में और प्रेत-भोज का दंड सिर पर लेकर मोनाई को दयाल जमींदार के समाज और दरोग़ा साहब की सरकार से किसी तरह क्षमा मिल गई। रपट में दंगे का ब्योरा दर्ज हो गया। गवाहों में हेडमास्टर पांचू गोपाल मुखर्जी का नाम लिखा गया। और चलते समय मास्टर मोशाय के ऊपर मोनाई ने दो सेर चावलों का एहसान भी जमा दिया था।

दूर, बांस के पुल के पास बैठा हुआ पांचू मोनाई के मंदिर के सामने जूठी पत्तलों के लिए चील, कौवे और आदमी से होने वाली लड़ाई को देख रहा था। पागलों की तरह, हिंसक दृष्टि से हर एक को देखते हुए लोग लड़ रहे थे। चील की चोंच से एक बच्चे के सिर में घाव हो गया। वह वहीं गिर पड़ा। लोग उसे रौंदते हुए घूरे पर चढ़ दौड़े।

पांचू ने बैठे-बैठे यह अनुमान लगा लिया कि मर गया होगा। पास से देखने के लिए उठ कर जाने को तबियत न हुई। लेकिन, वह सोचने लगा, लड़के की चीख नहीं सुनाई दी। दूसरा विचार फौरन हो आया, आवाजों में अब दम ही कहां रहा है? जान छोड़ते हुए, अपने भरसक पूरे जोर के साथ चीखा होगा, लेकिन उसकी चीख में फलांग भर तक भी पहुंचने की शक्ति न रही होगी।

मौत पांचू के लिए अब बहुत आकर्षण नहीं रखती; आंखें कायदे से आदी हो गई हैं। छः रोज से भूख की तकलीफ को भोगते हुए उसे अपने दिल को बेहद सख्त बनाना पड़ा है। पिछली बार दयाल जमींदार का आसरा था--आस बंधी हुई थी। फिर मोनाई से मिल गया। लेकिन इस बार तो उसे कहीं से भी चावल पाने की आशा ही न थी। घर में दो-चार मामूली-से सोने-चांदी के गहने पड़े तो हैं, लेकिन उन्हें बेचे किसके हाथ? मोनाई के यहां जाओ तो

चौथाई दाम भी न मिलेंगे। दयाल जमींदार से सौदा कर ही नहीं सकते, जो उठा कर दे दें उसे ही सर-माथे पर चढ़ाना पड़ता है। और जहां तक बस चलता है दयाल जमींदार कौड़ी को भी मोहर की तरह दांतों से पकड़ते हैं। मधुपुर की हाट में सर्राफों और पुलिस के सिपाहियों ने मिल कर एक नई तरकीब निकाल रखी है। जो गहने बेचने आता है उसी को पुलिस चोर करार देती है। भरे बाजार में आबरू जाने के भय से लोगों को आधी रकम पुलिस को भेंट करनी पड़ती है, और आधी में दूकानदार घिसौनी और गलाई निकाल लेता है। सांस लेने पर भी रिश्वत और लूट देनी पड़ती है। घर में यह तय हुआ था कि जब मुसीबत बर्दाश्त से बाहर हो जायगी तब एक दिन वे बचे-खुचे गहने बेच कर खा लेंगे। मगर उनकी बिक्री से सिर्फ एक ही दिन खाया जा सकता है, इसलिए मामला हर रोज दूसरे दिन पर टल जाता था। पार्वती मां कहती थीं—"एक ही दिन का तो सहारा है, लेकिन इस सहारे की आश में दिन गुजर जाते हैं।"

सहसा पांचू के पास से ही एक मादरज़ाद नंगी औरत दौड़ती हुई घूरे की तरफ चली गई। सभ्यता के एवरेस्ट-युग में जन्म लेकर पांचू खुले आम दिन-दहाड़े, ऐसी बेशर्मी से भरी हुई घटना को देखने का आदी न था। पांचू ने देखा, उस औरत में चीलों, कौवों, कुत्तों और आदमियों से ज्यादह जोश था। जब वह घूरे के पास पहुँची तो सब अलग हो गए।

बीते हुए दिनों की चेतना, अनहोनी घटनाएं देख कर बार-बार चौंकती है, मगर छिन भर के लिए ही। दस दिन पहले कंट्रोल के भाव में मोनाई से चावल पाने की आशा में, बहुत-से लोगों ने अपनी स्त्रियों के तन से फटे-चियड़े तक उतार कर फेंक दिए थे। बाद में चावल भी न मिला और कपड़े भी चले गए।

पुरुषों ने उजड़े हुए घरों में रहना ही छोड़ दिया था। स्त्रियों को मजबूर हो कर चारदीवारी के अंदर बंद होकर बैठना पड़ा। वह घर से बाहर नहीं निकल सकतीं। किसी को देख-सुन कर अपना ग़म गलत करने से ही वंचित

कर दी गई हैं। कोठरी के अंदर बंद, उन चार मनहूस दीवारों को निहारा करो--निहारा करो--और कोई चारा भी तो नहीं? भूख की उलझन के ऊपर लाज की यह कैद और भी जुल्म ढा रही थी। पिछले पांच छः रोज से जगह-जगह घरों में औरतों के आपस में लड़ने-झगड़ने की आवाजें दिन रात सुनाई देती हैं। अच्छी-अच्छी औरतें एक-दूसरे के लिए उन गालियों का प्रयोग करती हैं, जिन्हें कभी धोखे से सुन लेने पर भी उनके गाल कानों तक लाल हो उठते थे। पांचू उन औरतों की बात सोचता था जो अपने घरों में अकेली ही कैद हैं। जहां दो-चार हैं वे आपस में लड़-झगड़ कर, गाली-गलौज करके, किसी तरह अपना वक्त तो पूरा कर लेती हैं, लेकिन जो अकेली कैद होंगी उन बेचारियों का तो वक्त भी न कटता होगा--वही दीवारें, वही दरवाजे, कोठरी की हर चीज वही! किसान के घर की छोटी-सी दुनिया में यह एक कोठरी न जाने कितनी ही सुखद और दुखद स्मृतियों से भरी हुई होगी। पांचू इस पर कल्पना करने लगा--नववधू बन कर घर की स्त्री ने शायद इसी कोठरी में अपने पति के साथ सोहागरात मनाई होगी; अपने बच्चों को जन्म देकर मां बनने का सौभाग्य उसे शायद इसी कोठरी में प्राप्त हुआ था; फिर अकाल के शुरू में इसी कोठरी से किसान के घर की "बहुमूल्य" चीजें एक-एक कर बिकने गई होंगी। आज वही कोठरी लाज की मारी, भूखी बेकस औरतों का दम मौत की तरह घोट रही होगी।

जूठन की खबर सुनकर यह औरत अगर लाज की कैद को तोड़ कर बाहर चली आई तो उसने कुछ बुरा नहीं किया। हमारी आंखें इसमें गुनाह क्यों देखती हैं? गुलाम पुरुष अपनी गुलामी का पूरा बोझ स्त्रियों पर डाल-कर हलका होना चाहता है--औरत की यह गुलामी पांचू को बुरी तरह से खलने लगी। उसे गुस्सा आ गया।

* * *

मोनाई के मंदिर से ब्राह्मण चेहरे पर जबर्दस्ती तृप्ति का भाव लाद कर निकल रहे थे। उनकी हालत, पांचू ने देखा, और भी खराब थी। अपनी

कई-कई रोज़ की भूख को ब्राह्मणों ने आज पूरा-पूरा मोआवज़ा देने का मौक़ा पाया था। लोगों ने इस क़दर बदनियत हो कर खाने को कोशिश की थी कि वह भोजन ही उनके लिए ज़हर बन गया। मंदिर से उतर कर दस क़दम चलते ही कमज़ोर आंतों पर अन्न का बोझ पड़ने के कारण कइयों के पेट में ज़ोर का दर्द होने लगा। कइयों को चक्कर आने लगा और बहुतों को क़ै होने लगी।

पांचू को आंखों के सामने दो दृश्य थे। घूरे के पास अब्राह्मण मरभुखों और जानवरों की लड़ाई, तथा दूसरी ओर इन पेट भरे हुए ब्राह्मणों का यह हाल। जगह-जगह लोग पड़े जाते हैं, उठने की ताब नहीं। जगह-जगह लोग क़ै कर रहे हैं। और सब से अधिक बीभत्स दृश्य पांचू ने यह देखा कि एक की क़ै पर दूसरा मरभुखा उसे चाटने के लिए बड़ी आतुरता के साथ टूट पड़ा।

पांचू से यह देखा न गया। वह एकदम वहां से हट आया। इस दृश्य ने उसके मस्तिष्क को उत्तेजित कर दिया। आदमी को ग़ुलाम बनाने वाले पहले सत्तावादी मानव ने क्या कभी यह सोचा था कि जिस बीज को वह बो रहा है उसकी जड़ें कितनी गहरी और कितनी दूर तक अपना अधिकार जमाएंगी! ग़ुलामी किस हद तक मनुष्य को स्वामी बना कर उसके अहं का पोषण करती रहेगी और दूसरे को कब तक इस तरह मजबूर करती रहेगी कि किसी की क़ै से उगली हुई ग़िलाज़त को खाने के लिए भी वह ख़ुशी से तैयार हो जाय?

भूख का दौरा बड़ी ज़ोर के साथ पांचू को महसूस हुआ। साथ ही उबकाइयां भी आने लगीं। आंतें उल्टी-उल्टी पड़ती थीं। पेट पकड़ कर वह वहीं बैठ गया और अपने मन को ज़बर्दस्ती उस दृश्य से हटा लेने की कोशिश करने लगा। घृणा से भी कहीं ज़्यादा लज्जाजनक यह दृश्य था!

पांचू सोचने लगा, क्या कोई भी पेट-भरा आदमी अपने लिए उस दिन की कल्पना कर सकता है जब उसे इसी तरह किसी की ग़िलाज़त चाटने

के लिए मजबूर होना पड़ेगा। हठ के साथ पांचू सोच रहा था––यह बात सोचना इस वक्त उसकी राय में सब से ज़रूरी था––हर आदमी को, जो गुलाम है, ऐसे दिन देखने के लिए हर वक्त तैयार रहना चाहिए। दुनिया में जब तक गुलामी रहेगी इन्सानियत उसी तरह ठुकराई जायगी, जिस तरह ईसा, राम, कृष्ण, मुहम्मद, बुद्ध के अनुयायी उनके पैर छू-छू कर उनकी छातियों पर ठोकरें मार रहे हैं।

उस दृश्य के साथ उपजी हुई भूख और उस दृश्य को देखने के कारण खाली पेट जो मिचलाने से जो तकलीफ़ होती थी, उससे बचने के लिए पांचू बच्चों के खेल को पूरी गंभीरता के साथ अपनी बुद्धि से खेल रहा था।

एक चीज इधर पांचू को परेशान करने लगी है कि पांचू जिस बात को भुलाने की कोशिश करता है, उसे वह भुला नहीं पाता; बल्कि एक को भुलाने की कोशिश में सब एक समय याद आने लगती हैं। खेलते-खेलते मन कुम्हला जाता है।

एकाएक हटो-बचो होने लगी। पांचू अपने ख़यालों से चौंका। अपने हाली-महालियों के साथ दयाल जमींदार आ रहे थे।

"अरे, राम, राम, राम, राम! ये बेचारे सब-के-सब बीमार पड़ गये! मोनाई ने ऐसा क्या खिला दिया! कहां है मोनाई?"

दयाल बाबू की दृष्टि घूरे के जमघट पर गई। दया उमड़ी।

"मेरी प्रजा पर यह अत्याचार कि जूठन चटाई जा रही है! आखिर ठहरा तो केवट का बच्चा! नीच जाति! चार पैसे टेंट में कर के चन्द्रमा को छूने चला है। कहां है? पकड़ के लाओ उसे।"

मोनाई हाथ जोड़े तब तक मंदिर से भागा हुआ चला आ रहा था। दयाल जमींदार ने एक बार सिर से पैर तक देख कर नफ़रत के साथ कहा–– "इनकम टैक्स बहुत बचा लिया है शायद!!"

मोनाई आंतरिक भय के साथ कांपते हुए और भी अधिक गिड़गिड़ाने लगा। भारी शरीर के साथ इतनी दूर तक दौड़ के आने की थकान और हफनी भी चढ़ी थी।

"नहीं तो अन्नदाता! हें-हें! अ-अ आप बड़े हैं! हें, हें!"

"इन लोगों को क्या हो गया है?" हाथीदांत की लकड़ी की नोंक से बीमार ब्राह्मणों को दिखाते हुए दयाल जमींदार बोले।

अपराधी की तरह उन ब्राह्मणों को एक नजर देखते हुए, मोनाई हाथ जोड़ कर बोला--"मैंने तो बहुत चाहा था अन्नदाता, पर ये लोग जादा खाते हो चले गए। मैं निरदोस हूँ, अन्नदाता! और इन सब बेचारों का भी दोस नहीं! सब भगवान जी की लीला है।"

मोनाई की बात काट कर दयाल जमींदार गरम हो गए।

"अभी इतने बड़े भगत नहीं हुए कि दयाल जमींदार को भागवत सुना सको। हमारा नाम सुना है न तुमने?"

नाम की गोली सीधे मोनाई के दिल पर लगी और लाख सफाई दिखाते हुए भी उसके चेहरे पर डर की लकीरें खिच गईं। दयाल जमींदार के पैरों को दूर से झुक कर नमस्कार करते हुए बड़े संयत भाव से बोला--"आप मालिक हैं। हमारा जीवन-मरन आपके हाथ में है। बाकी और क्या कहूँ, अन्नदाता! मेरा भाग ही खोटा है। भगवान जी जानते हैं, होम करते हाथ जल गए।"

"इन लोगों को दवा-दारू के लिए कौन दाम खर्च करेगा?"

मोनाई इस पर बड़ी जोर से चौंका। दयाल जमींदार के चेहरे को एक बार देख कर जरा हकलाते हुए बोला--"द-द-दवा-दारू?"

"इन सब को दवा-दारू के लिए एक-एक रुपया दो। बेचारे बीमार हों तुम्हारी वजह से और सारा दुख इन्हें ही भोगना पड़े! याद रखना मोनाई,

मेरी प्रजा को यदि कभी कष्ट दिया तो तुम्हें पल भर ही में तुम्हारे बाप की हैसियत पर पहुँचा दूंगा। दो इन सब को एक-एक रुपया।"

बड़ी सख्ती से अपने चेहरे को निर्विकार रखते हुए मोनाई तन कर खड़ा रहा। दयाल ज़मींदार के दोबारा हुक्म करते ही इशारे से अज़ीम को घर की तरफ़ दौड़ा दिया।

घूरे की तरफ़ ज़रा बढ़ते हुए दयाल ज़मींदार ने साहूकार मोनाई केवट को दूसरी पटकनी दी।

"मेरी भूखी प्रजा को जूठन खिला-खिला कर तुम तुच्छ बनाना चाहते हो? धर्म-कर्म लोप कर देने का इरादा है क्या? ख़ुद नीच थे, मगर मुझसे तो कह सकते थे। मैं अपनी प्रजा को कम से कम इस तरह जूठन तो न चाटने देता! गांव के हर एक आदमी को सेर-सेर भर चावल मेरी तरफ़ से बांट दो। आज शाम तक यह काम हो जाना चाहिए, समझे!"

हुक्म देकर दयाल ज़मींदार ने अपने पानबरदार की तरफ़ देखा। फ़ौरन ही चांदी की गंगा-जमुनी डिबिया पेश की गई। पान खा कर दयाल बाबू मुड़े। पुल के पास पांचू बैठा था। दयाल की नज़र पड़ी।

"कहिए, मास्टर बाबू!" कह कर दयाल उसकी तरफ़ दो क़दम आगे बढ़े।

छः दिन का भूखा पांचू यह निश्चय किए बैठा था कि अब न तो वह दयाल से ही किसी तरह का सम्बंध रखेगा और न मोनाई से। ये सब स्वार्थी हैं, नीच हैं, पेट-भरे मक्कार हैं। अगर इनको अपने पैसे का घमंड है तो हमको भी अपनी मुफ़लिसी पर नाज़ है।

पांचू बच्चे की तरह मुंह फुलाए बैठा था। दयाल ने मोनाई को सकड़े में ला घसीटा, उसे बड़ी ख़ुशी हुई। कोई दयाल को भी इसी तरह दबा के रगड़ दे तो मज़ा आ जाय। जी में आया, दयाल से पूछे कि तुमने ही अपनी

प्रजा को कौन-सा निहाल कर दिया जो यों अकड़ते हो। शरम भी नहीं आती कमबख्त को! मरघट जैसे गांव में छैला बन कर घूम रहा है।

तभी दयाल की आवाज़ कानों में पड़ी, नजरें मिलीं और मिलते ही सारा विद्रोह गायब! होठों पर मुस्कराहट, आंखों में दीनता, वही तपाक से उठ कर अदब करने की आदत--गाहक को देखते ही जैसे लड़ाई पहले के दूकानदार अपनी पेटेंट क़वायद शुरू कर देते थे। पांचू यह सब नहीं करना चाहता था। मगर अपने-आप पर उसका ज़ोर नहीं। लाख अनिच्छा होने पर भी नज़रें मिलते ही पांचू मदारी के तमाशे की तरह इशारे से बंधा हुआ नाचने लगा। बड़ी हिफ़ाज़त के साथ अपने शीशमहल में रखे हुए स्वाभिमान को हर पल कंकड़ की ठेस से बचाता हुआ, (साथ ही साथ उसका परिचय देने की दबी धमकी भी देता हुआ) वह दयाल बाबू से मुंहदेखी बरतने लगा।

"यों ही, देखने चला आया ये सब।"

"अजी कुछ पूछिए मत," क़ाज़ीजी के दुबलेपन की अदा लिए हुए दयाल ज़मींदार तुनक कर बोले—"देखा आपने? इन चोर-बाज़ार वालों ने कैसी लूट मचा रखी है--और यों, दिन दहाड़े! गवरमेंट के पिट्ठू हैं साहब! अंग्रेज भी कोई मामूली खोपड़ी नहीं है बाबू। क्या पोलीसी भिड़ाई है कि आप तो सस्ते दामों पर अढ़तिये से नाज ले गए और पबलिक का कोई ख़याल ही नहीं किया। एक तरफ़ तो इन बनियों को आदमी के खून का चस्का लगने का मौक़ा देते हैं और फिर जब पबलिक चिल्लाती है तो कंट्रोल-आर्डर लगाते हैं। समझा मज़ाक़ आपने? माल तो इन मोनाई जैसों के गोदामों में है, कंट्रोल किस पर करोगे?"

कहते हुए दयाल बाबू की आंखों में घमंड और चालाकी की चमक आ गई। चेहरे पर रौब दुबाला होकर झलका। तर्क-विजेता की दृष्टि से एक बार पांचू को देख कर उन्होंने अपने पानबरदार की तरफ़ ज़रा हाथ बढ़ाया। पल की देर न लगी, पान हाज़िर, ज़र्दा हाज़िर, हाथ पोंछने के लिए रेशमी रूमाल

हाज़िर। इशारे की ज़रूरत न थी, ख़ानदानी रईस के नौकर मास्टर बाबू का अदब करने के लिए झुके।

छः दिन के भूखे मास्टर बाबू के सामने खाने के नाम पर पान पेश हुए थे। कुछ भी सही। जी तो चाहता था कि डिब्बे के सारे पान बकरी की तरह चबाते ही चले जायं, मगर आबरू के क़ायदे आड़ में आते थे। केवड़े में बसाए दो पान मुंह में रख कर पांचू ने बड़े जोश के साथ उन्हें चबाना शुरू किया।

दयाल बाबू कहते चले--"अजी साहब, इसी का नाम है ब्रिटिश पोलीसी। हिंदुस्तान का गला हिंदुस्तानी से ही कटवा रहे हैं। बाद में कह देंगे, हम तो अपनी हिटलरी मुसीबत में मुब्तिला थे। बंगाल में हिंदुस्तानी मिनिस्टरी, हिंदुस्तानी कारोबार, हिंदुस्तानी अफ़सर--फिर जब आप ख़ुद ही अपने भाइयों को भूखा मार रहे हैं तो इसमें हमारा क्या दोष? आप लोग स्वराज्य के क़ाबिल नहीं। चलिये साहब, सांप भी मर गया और लाठी भी न टूटी। और आप ग़ुलाम के ग़ुलाम बने रहे।"

पान की गिलौरियों को दयाल बाबू ने एक गाल से दूसरे की तरफ फेरा।

पांचू अपने मुंह के पान अब तक ख़त्म कर चुका था। भूख भड़क गई थी।

दयाल बाबू बोले--"असल बात तो यह है कि हममें एका नहीं। एकता होती तो आज भारतवर्ष की यह दशा न होती।"

पांचू दयाल बाबू के मुंह की तरफ देख रहा था। उनके रोबीले चेहरे को देख-देख कर उसकी भूख और भी बढ़ रही थी। वह बराबर सोच रहा था, दयाल घर से खाना खाकर आया होगा। क्या-क्या खाया होगा? चरपरे मसालों की सुगंध कहीं से उड़ कर उसकी नाक़ में बसने लगी। पांचू को पहले तो अच्छा लगा, फिर तबीयत घबराने लगी। ग़ुस्सा चढ़ा। महास्वार्थी और निकम्मा एकता की दुहाई दे रहा है। ज़रा जोश आ गया, ज़बान अपने-आप खुल गई--

"एकता की दुहाई देना भी आज कल का एक फ़ैशन है। चिल्लाते सब हैं, लेकिन कोई उसे सही तरीक़े से महसूस नहीं करता।"

कहते-कहते पांचू के चेहरे पर सचाई की तमक आ गई। वह अनुभव करने लगा जैसे उसका बोझ हलका हो गया हो। इससे उसे संतोष हुआ।

दयाल ज़मींदार यह सुन कर चौंक पड़े। पांचू के चेहरे को ग़ौर से देखने लगे।

पांचू का हौसला और बढ़ा। वह कहता चला गया—"देश की ग़ुलामी तभी दूर हो सकती है जब हमारे भद्र लोग अपने मूर्खतापूर्ण स्वार्थ और झूठे अभिमान को छोड़कर बुद्धि से काम लें। ग़ुलामी के बोझ से झुकी हुई ज़िंदगी को भद्रवर्ग अपनी ख़ानदानी, माली हैसियत और अपनी साक्षरता की खपाचियों के सहारे खड़ा कर काग़ज़ के कुम्भकरण-सा अकड़ जाता है। यह कह कर हम अंग्रेज़ों की बराबरी करना चाहते हैं कि भारतवर्ष में एकता नहीं है। अगर किसी स्वाधीन देश का कोई स्वाधीन पुरुष यह सवाल करे तो ठीक है, लेकिन हम किससे यह सवाल करते हैं? क्या हम भारतवर्ष में शामिल नहीं? तब फिर वह कमज़ोरी, जो हम सब में बतलाते हैं—क्या वह ख़ुद हमारे में नहीं है? अपनी कमज़ोरी को दूर किए बिना हम पड़ोसी की ओर उँगली उठाने के हक़दार नहीं। हरगिज़ नहीं।"

पांचू यह सब कह तो गया, इसकी उसे ख़ुशी थी, मगर दयाल का डर भी साथ-साथ लगा रहा। बुरा मान रहे होंगे। उँह, ठेंगे से! मगर बुरा तो मान ही रहे होंगे। पर अब तो एक बार तीर कमान से निकल ही चुका है। जैसे सत्यानाश वैसे साढ़े सत्यानाश! कोई फांसी तो चढ़ा नहीं देंगे दयाल ज़मींदार। और उनसे किसी तरह के लाभ की भी आशा नहीं। तब फिर पांचू दयाल बाबू से क्यों दबे? मगर दबता तो है ही। बात कहते हुए इसीलिए दम अंदर-ही-अंदर खिसका जा रहा था। अपने रौब की सतह को एक-सा रखने के लिए पांचू अपने स्वाभाविक तरीक़े से न बोल कर इस तरह से दयाल बाबू के सामने बोल रहा था, जैसे क्लास-रूम में लड़के पढ़ा रहा हो—

और वह भी इंसपेक्टर के सामने। कह चुकने के बाद एक दम से नजरें आमने-सामने होने पर वह घबरा उठा। उस घबराहट को छिपाने के लिए वह खखा-रत हुए दूसरी तरफ़ मुंह घुमा कर थूकने लगा। इससे मुंह का बासीपन कुछ हल्का हुआ।

कलक्टर और जार्डन साहब तक पहुंचने वाला आदमी, विद्वान, फिर तर्करत्न केशव शास्त्री का बेटा--दयाल बाबू पर भी पांचू का रौब ग़ालिब था। इसके अलावा अपने नहले पर यह दहला पड़ते देख दयाल बाबू पहले तो चौंके, फिर जरा-जरा झेंप भी मालूम हुई। कुछ जवाब न सूझता था, खिसियाने से खड़े सोचते रहे। बीच में नौकर के हाथ से पान लेते हुए, बात सुनते-सुनते डिबिया भी ले ली। पान मुंह में रख लिए, मगर डिबिया बातों की रौ में उन्हीं के पास रही। जब पांचू ने अपनी बात ख़त्म की तो दयाल बाबू ने बात को नया 'स्टार्ट' देने के लिए चौंक कर पहले तो अपने दाहिने हाथ में पनडिब्बी को महसूस किया, फिर डिबिया खोल, बसना हटा कर, पांचू के आगे पान पेश किए।

पान खाली पेट में लगते थे। पांचू नहीं खाना चाहता था। दयाल जमींदार अपनापन दिखलाते हुए जोर देकर मस्तानी आवाज़ में कहने लगे--"अरे खाओ जी! हमको तुम्हारी ये भगतबाजी ज़्यादा जमती नहीं, उस्ताद!"

होठों के किनारों पर मुस्कराहट और ख़ुमार-भरी आंखों में शिकायत दरसाकर दयाल बाबू घुले। पांचू पिघल गया। घमंड दिमाग़ में बिजली की बारीक लकीर की तरह कौंध गया। भूख से फीके चेहरे पर दर्प और ख़ुशी की चमक आ गई। पांचू ने मुस्करा कर डिबिया से पान निकाले और कहा--"खिला तो रहे हैं। मगर याद रखिये, शौक लग जायगा तो आप ही के यहां आकर दिन भर पान खाया करूंगा। आजकल ईश्वर की दया से बेकारी के महकमे में तो हूँ ही, दिन भर।"

पांचू दयाल बाबू को 'तुम' कह कर पुकारना चाहता था। लाख चाहने पर भी जीभ न लौटी। फिर भी दयाल जमींदार पर अपनापन और हक़ जता

कर पांचू ने बराबरी का दरजा तो पक्का कर ही लिया। अब वह दयाल बाबू से 'तुम' की बेतकल्लुफ़ी तक रिश्ता बांध कर मोनाई को अपना प्रभाव दिखलाना चाहता था।

मोनाई कुछ दूर पर ज़रा अकेला-सा खड़ा था। बराबरी का दरजा लाख समरथवान हो जाने पर भी उसे हासिल नहीं। एक तो भगवान जी ने ही उसे छोटा बना के धरती पर भेजा है, दूसरे वह पढ़ा-लिखा नहीं। पर इन दोनों बातों में भी मुक्ख बात बेपढ़े-लिखे रह जाने की आती है। जमाना 'गु डुमानी-डं मफ़ूल' का है। गांव में और भी कितने ब्राह्मणों के लड़के पड़े हैं, उन्हें कोई टके सेर भी नहीं पूछता, और एक पांचू है जिसके कारन इस सड़े भए गांव में कलक्टर जैसे बड़े-बड़े अंगरेज आते हैं। बड़े-बड़े जमींदार, दयाल जमींदार ऐसे-ऐसे लोग, पांचू को हंस-हंस के मिलाये रखते हैं। ये विद्या का परताप है।

न्याड़ा को आलिम-फ़ाज़िल बना कर मोनाई अपनी इस कमी को पूरा करना चाहता था। दिन रात उसकी पढ़ाई के पीछे दीवाना। जब से गांव में स्कूल खुला है, गरीब न्याड़ा का लट्टू इतवार के दिन भी ताक से नहीं उतर पाता। सुबह जब उठो तब से लेकर रात में जब तक सो न जाओ बराबर पढ़ते रहो, पढ़ाई की ही बातें सोचते रहो। जिस तरह मोनाई सुबह से रात तक अपना रोज़गार करता रहता है, रोज़गार की ही बातें सोचता रहता है, उसी तरह वह अपने लड़के को भी कर्मठ देखना चाहता है। जब वह न्याड़ा की उमर का था, तभी से उसने काम की फ़िकर सम्हाली थी; इसलिए वह न्याड़ा को भी उस क़ाबिल समझता है। जब गांव के अच्छे दिन थे, सुबह गोविन्द मास्टर दो घंटे घर पर आकर पढ़ाते थे। उसके बाद स्कूल जाता था। सांझ को स्कूल से लौट कर आते ही, हाथ-मुंह धोकर, ज़रा पानी-पिलाव के बाद, फिर अपनी किताब लेकर ज़ोर-ज़ोर से घोखने बैठ जाता था। जहां आवाज़ गिरी कि मोनाई ने डांटा। थोड़ी देर बाद कानाई मास्टर आकर डपट जाते थे। मोनाई ने उन्हें इस मतलब से रखा था कि वह न्याड़ा को स्कूल की सारी किताबें रटा-रटा कर याद करा दें, जिससे न्याड़ा इम्तहान में फ़र्स्ट आया करे, मोनाई

सोचता था, भगवान जी का दिया बहुत है; न्याड़ा पढ़-लिख कर एक बार विलायत पास कर के आवे तो बड़ा सरकारी अफसर बन जायगा। फिर सभी बड़े-बड़े लोगों में मेरी रसाई हो जायगी। करोड़ों बना लूंगा।

मोनाई केवट की यह सब से बड़ी इच्छा थी कि मरने से पहले वह एक बहुत बड़ी ज़मींदारी ख़रीद ले, कलकत्ता के बड़े-बड़े बैपारियों में उसकी साख पुज जाय; कलकत्ते में ऊंची-ऊंची बिल्डिगें बन जांय और एक करोड़ की पुड़िया मुट्ठी में हो। वह अकेले भी यह तमन्ना पूरी कर सकता था, अगर शहर में पैदा हुआ होता। गांव में पैदा होना--और फिर केवट के घर पैदा होना--यह सब से बड़ा अभिशाप था, जिससे लाख सिर पटकने पर भी मोनाई मुक्त नहीं हो सकता था। परम्परा से जिस जगह वह दबता चला आया है, वहां ऊपर उठने के लिए उसे सहारा चाहिए। पैसा लाख हो जाय, मगर कुलीनता के कगारे पर चूक से भी पैर पड़ते ही उसे हीन-भावना के गहरे खड्ड में गिर जाना पड़ता है। अपना केवटपन किसी हद तक धोने के लिए मोनाई कंठी लेकर वैष्णव बना, लेकिन उससे केवल अपना मन ही बदल गया, कोई ख़ास फ़यदा न पहुंचा। गांव में एक मंदिर भी बनवा दिया। उसके बाद भी ग़रीब-से-ग़रीब बामन-कायथ के द्वार पर जाकर उसे ज़मीन पर ही बैठना नसीब हुआ। विद्वान और सरकारी अफ़सर की जात पुंछ जाती है, इसलिए मोनाई न्याड़ा को पढ़ाने के प्रति सतर्क था।

इस वक्त दयाल ज़मींदार ने उसे गहरी पटखनी दी थी। 'चित भी मेरी, पट भी मेरी' वाला हिसाब कर दिया था। आप ही 'परेत भोज' का डंड भी मेरे सिर पर लादा और अब एक-एक रुपया भी दो। ये न्याव करने आए हैं साले। और ऊपर से गांव भर में एक-एक सेर चावल बांटो। जैसे बाप का माल हो, उठा के दे दिया। हां भई, बाप का माल तो है ही। उसकी जमींदारी में रहते हैं। वह इस जगह का राजा है। जो चाहे कर सकता है।

सब मिला कर दयाल ज़मींदार के कारन छः-सात सौ की चपेट पड़ गई। अब तक तो इन्हें मौका नहीं मिला था, उस दिन की वारदात से ज़रा-सा रस्ता

पाय गये हैं सो थुरें उड़ाय के धर इंगे। गांव के आधे पट्टे अब मेरे नाम पर हैं, यह साले को खजता है। भगवान जी ने मुझे दिये सो भोगता हूं। इस साले को जलन क्यों होती है? किसी को बढ़ती आंखों से नहीं देख सकते ये बड़े लोग। ससुर, एकता-एकता चिल्लाते हैं। अपने गरीब भाइयों का तो गला काट के रख देते हैं, सुराज का क्या अचार पड़ेगा? अरे, यह लोग भी कै दिन और ये हत्याचार कर सकेंगे? इनका भी तो अंत आवेगा किसी दिन। भगवान जी सब का न्याव करते हैं। उनकी लीला हो गई तो किसी दिन दयाल की सारी जमींदारी मैं खरीदूंगा और इसी की हवेली में जा के रहूंगा। कर ले, आज इसका जमाना है।

मोनाई ने एक दबी उसांस भरी, कमर पर दोनों हाथ टेक कर जरा तन गया। घर की तरफ़ देखने लगा—अजीमा नहीं आया अभी तक। पटक दूं रुपया ससुरे के आगे, इज्जत बचे। मगर कमर तोड़ डाली साले ने। और अब तो जम-राज ड्योढ़ी सूंघ गया है, जो थाने तक चढ़ बैठा तो मुझे जेहल करा के ही मानेगा—कफ्फन तक लूट के खा जायगा मेरा। मगर पुलिस में ही देना था मुझे, तो उस दिन दरोगा जी के सामने मेरा गुदाम दबी-ढंकी क्यों करवा दिया? जरा-सी सिकैत में तो मेरे ऊपर साढ़े-साती चढ़ जाती। तब फिर चाल क्या है इसकी? दयाल जमींदार अफजूल में हमदर्दी वाले जीव नहीं। कुछ समझ में नहीं आता। बाकी, ये पक्की मानों, कहीं ऐसे में छुरी भोंकेगा मुझे, जहां पानी भी न मिले। भगवान जी, इत्ती सेवा करता हूं तुम्हारी। फिर भी तुम्हारे भगत की छाती पर दुस्मन सवार हो जाय? कहां गए गज के फंद छुड़ाने वाले? मेरी बेर इत्ती देर क्यों लगाई? अजीमा साला कहां मर गया कम्बखत! ये दयाल ससुरा अभी मेरी इज्जत टके सेर बेचने लगेगा। ये देखोऽ, फिर बमका साऽला!

"बाप का ज़माना भूल गया है शायद!" दयाल जमींदार की आवाज़ कानों में आई—"छेद.शेंग! हरामजादा का अक्कल में भाला भोंक देओ। बोलो शाला के जे दयाल तोमार बाबार प्रजा नेई जे तीन घंटा तक दरवाजे पर खड़ा रहेगा।"

एक सेकेंड के लिए मोनाई की आंखें मिच गई। जिन्दगी भर की आबरू गई जो एक पड़...एऽऽझपटा! हे भगवान-परभूनाथ! अजोमा-साला... आया! "वो आ गया राजा बहादर!"

मोनाई ने सन्तोष की एक गहरी सांस ली और छेदासिंह से कतरा कर हाथ जोड़े हुए ज़मींदार की ओर बढ़ा। वह हांफ गया था। कहने लगा--"मेरी इत्ती मजाल कि आपको खड़ा रखूं? भगवान जी ने यह दिन तो दिखाया कि सरकार की गालियां सुनने को मिलीं। अब भरोसा भया कि हजूर ने मुझे अपनी सरनागत में ले लिया है। मालिक जब गालियां दे तो समझो कि दास का अहोभाग है।"

दयाल जमींदार के चेहरे पर सारे भाव तन गए थे। गर्दन में भी तनाव आ गया था। पान चबाते हुए जबड़े चल रहे थे; पानों की घड़ी पर होठों की दर्प-भरी मुस्कान दब-दब कर झलक मार रही थी। बाएं हाथ में हाथीदांत की छड़ी के सहारे कमर ज़रा झुकी हुई थी, और दाहिने हाथ की अंगूठियों के नगीने दमक रहे थे। मोनाई की तरफ़ से मुंह फिरा कर दयाल ज़मींदार ज़रा ऊंचे आसमान को घेर कर फैली हुई 'बैसाख की धूप' को देख रहे थे।

मोनाई उनके चरण छूने को आगे बढ़ा। दयाल जमींदार ने पैर खिसका लिए। दयाल ज़मींदार मन ही मन फूल उठे। "आ गया ठिकाने पर। चौपट कर के फेंक दूंगा साले को। इसके गोदाम में दो हज़ार बोरे से कम न होंगे। काट-पीट कर भी डेढ़'क लाख बचा लेगा पट्ठा। कहां-कहां से छिपा कर धान इकट्ठा किया है इसने! मुझे रत्ती भर भी ख़बर न लगने पाई, बड़ा काइयां है।"

मोनाई की ख़ुशामद दयाल के दिमाग़ को अपने हथकंडे दिखाने के लिए उकसा रही थी। मोनाई की बातें कानों में पड़ कर दयाल के ख़यालों की सतह को छू कर निकल जाती थीं। "पुलिस में दे दूंगा तो मेरे पल्ले कुछ न पड़ेगा। पुलिस वाले सब हड़प कर जायंगे। मिलिटरी वाले दो हज़ार बोरों के लिए पांच सौ इससे क्यों न

झड़प लूं ? बुरा क्या है ? अगर अभी मैं पुलिस में रिपोर्ट कर दूं तो कौड़ी का भी न रह जायगा और जेल में चक्की पीसनी पड़ेगी, सो अलग ! यों पांच ही सौ बोरे तो देने पड़ेंगे मुझे। फिर भी डेढ़ेक हजार बोरे के क़रीब बच रहेंगे साले के पास। लाख सवा लाख के रोकड़े कर लेगा। कुछ कम हैं नीच जाति के लिए ? क्या ज़माना आ लगा है ! ये साले कोरी-चमार-केवट भी अब लखपती होने लगे ! मगर बड़ा काइयां है भाई ! मान गए। गांव के आधे पट्टे अपने नाम करवा लिए। बड़ी गहरी चोट दी थी साले ने। मेरी बराबरी करने चला था। बदमाश से हज़ार बोरे झटकने चाहिए।"

दयाल ज़मींदार ने नज़र तिरछी कर के मोनाई को देखा। गीता-पुरान की दुहाई देने के बाद मोनाई अब दयाल ज़मींदार की एक निहायत नमक-हलाल फ़रमाबरदार रिआया की तरह आंखें झुकाए, हाथ बांधे, दो क़दम हट कर अदब से खड़ा हुआ था। अज़ीम पास आ चुका था। मोनाई ने अज़ीम के हाथों से दस-दस के पांच नोट और एक चांदी का रुपया लेकर दयाल जमींदार के चरणों पर भेंट चढ़ाकर एक बार फिर पैर छुए और हाथ जोड़ कर कहने लगा—"जो कुछ पतरम-पुसपम आपके इस दास से बन पड़ा बस उसी से अब छिमा कर दें मालिक ! चरनों की सरन में पड़ा हूं। सरकार की जूठन से अपने बाल-बच्चे पाल लेता हूं, उनपर दया करें अन्नदाता। भगवान जी आपको सदा सुखी रखें, मेरे मालिक।"

मोनाई ख़ुशामद में दयाल जमींदार के पांव दबा रहा था। घूरे पर से कोई बड़ी ज़ोर से हंसा। किसी का हिसक अट्टहास मोनाई के अहं को ठोकर मार कर, दयाल जमींदार के अहं का प्रिय बना।

भरे गांव में, गांव भर की भूख के ठेकेदार को दयाल ज़मींदार ने अपने जूतों तले लाकर दुनिया को यह दिखला दिया कि उनकी शक्ति कितनी बड़ी है। श्री दयालचांद विश्वास ने आज अपनी चौदह पीढ़ियों को तार कर, कुल की

परंपरागत मान-प्रतिष्ठा में चार चांद लगा दिए थे। उन्होंने दुनिया को दिखला दिया कि नीच जाति सदा नीच ही रहेगी।

"हुं:! बड़े पंख लगा कर उड़ने चला था।" ज़मींदार सोचने लगे—"साला, हम खानदानी रईसों से होड़ लेना चाहता था। मंदिर बनवा दिया साहब, गांव में। आधे पट्टे खरीद कर जी-हुजूर कहलाने की हविस लगी थी जनाब को। मुझ से, दयाल ज़मींदार से, टक्कर लेने के लिए वह मेरी प्रजा को भूखा मार-मार कर अपनी ताक़त दिखाना चाहता था। ले बच्चू अब देख ले कि कौन शक्तिशाली है। सारा गांव आंखें खोल कर देख रहा है कि अपनी प्रजा पर अत्याचार करने वाले दुष्ट को दयाल ज़मींदार कितना कठोर दंड देते हैं! देख ले प्रजा, ज़मींदार अब भी अपनी प्रजा का कितना पालन कर सकता है! नमकहराम हैं, साले सब के सब!"

जिनके लिए खुद दयाल जमींदार इतना कष्ट उठा कर यहां पधारे, जिनके एक बड़े भारी शत्रु को उन्होंने चुटकियों में परास्त कर दिखाया, जूठन चाटने वालों को अन्न और रोगियों को दवा दिलाई, क्या कुछ न कर दिखाया दयाल ज़मींदार ने!...लेकिन, जिसके लिए उन्होंने यह सब कुछ किया उसी महामूर्ख जनता पर कोई भी असर पड़ता नहीं दीखता। किसी ने उनकी जय-जयकार भी नहीं बोली? उनके उस हंसने वाले प्रशंसक ने भी नहीं! "कम-बख्त अब तो इधर देख भी नहीं रहा। घूरे को जूठन खाने में जुटा हुआ है। कमीने हैं सब के सब! और नालायक! आज तो मुझे प्रणाम भी करने नहीं आए। हरामखोर!"

दयाल ज़मींदार की आंखों के सामने सब से पहले मोनाई का मंदिर आता था। फिर वे पेट-भरे मरभुखे, मरीज़; जिजमानों की दया के टुकड़ों पर पलने वाले भिखारी ब्राह्मण—जो उनसे और सब से जाति में उच्च होने के कारण पूज्य थे, मगर शक्ति में कितने नगण्य, कितने हीन! "और उन घूरे चाटने वाले कंगलों में बड़े-बड़े दिग्गज ब्राह्मण भी तो दिखाई पड़ रहे हैं। ये अपने बिबू भट्टाचार्य्य का पोता—क्या भला-सा नाम है—खैर होगा, जाने

दो। कितने नाम याद रहें, और वह भी इन पापियों के? सच पूछो तो ब्राह्मणों ने ही भारतवर्ष का सत्यानाश किया है।" दयाल बाबू जोश में आकर सोचने लगे—"जब से ये गिरे हिन्दू धर्म का लोप हो गया। जब हमारे पूज्य ही गिर गए तो क्षत्रिय बेचारे अकेले कहां तक अपने देश की सेवा करते रहेंगे? फिर भी, क्षत्रियों ने देश के लिए क्या-क्या नहीं किया? भगवान रामचन्द्र, श्रीकृष्ण, बुद्ध, महावीर ऐसे बड़े-बड़े अवतार, और भीम, अर्जुन, राणा प्रताप, वीर शिवाजी से लेकर पृथ्वीराज चौहान तक सब महापुरुष क्षत्रिय ही थे, जो शब्दवेधी बाण तक चला सकते थे। जर्मनी ने वेद चुरा लिए हमारे, नहीं तो आज इस पृथ्वी पर क्षत्रियों का ही चक्रवर्ती साम्राज्य होता।... पर आपस की फूट खा गई। नहीं तो आज हमारे भारतवर्ष में अंग्रेज भला राज कर सकते थे? बनिये भी कभी राजा हो सकते हैं? ... मगर अब कलियुग में तो हो ही रहे हैं। देखो, गांधी जैसा महात्मा वैश्यों में जन्म लेता है। शास्त्रों ने ठीक ही लिखा है, घोर कलयुग आ गया: चारों चरण रख दिए। तभी तो हिन्दू धर्म की यह दुर्दशा हो रही है। ऊंची जात की मर्यादा लोप होती जा रही है। कुलीनों की लाज का यह हाल है कि घूरे की जूठन लोग खुले-आम चाटते हैं। हाय रे हिन्दू धर्म! कितना पतन हो गया है हमारे भारतवर्ष का!"

दयाल ज़मींदार सहसा महसूस करने लगे कि एक उनको छोड़ कर सारा भारतवर्ष, सारी दुनिया रसातल की ओर चली जा रही है। पतन के खड्ड की ओर आंखें मूंद कर बढ़ती हुई महामूढ़ मानवता के प्रति उनके हृदय में अपार करुणा का श्रोत फूट पड़ा। दयाल ज़मींदार सारे संसार के कल्याण की चिन्ता करने लगे। पतितों के उद्धार की प्रबल आकांक्षा उनके मन में उत्पन्न हुई। सोचने लगे, बड़े काम करने से अपना भी बड़ा नाम होगा और हिन्दू धर्म का, देश का उद्धार भी हो जायगा। फिर सोचा, कौन-सा बड़ा काम किया जाय। मंदिर धर्मशाला बनवाने से अब नाम नहीं होता। ये साले कोरी-चमार-केवट भी मंदिर बनवाने लगे हैं अब तो।

बड़े होने का कोई उपाय नहीं सूझ पड़ता था। दयाल जमींदार का जी कुछ-कुछ खट्टा होने लगा। सोचने लगे, मैंने अपनी सारी जिन्दगी बर्बाद कर दी। मुझे कुछ काम करना चाहिए। वैसे कर तो रहा हूँ—ये अभी-अभी ही, भूखों को अन्न दिलवाया, रोगियों को दवा दिलवा दी, इस चिलचिलाती हुई धूप में खड़ा-खड़ा अपने गांव की सेवा कर रहा हूँ। दुनिया के सामने एक महान् आदर्श उपस्थित कर दिया है मैंने। अगर अखबारों में छप जाय तो सारी दुनिया जान लेगी कि श्री द्रयाल चांद विश्वास देश के महान् जमींदारों में से हैं। और जो नाम होने लगे तो बस सीधे पोलीटिक्स में नेता बन जाऊंगा।........इस बार चुनाव हो तो उसमें भी खड़ा हो जाऊंगा। हिंदू महासभा के टिकट पर खड़ा हो जाऊंगा। ....कांग्रेस के टिकट पर भी खड़ा हो सकता हूँ........मगर उसमें जेल जाना पड़ता है।.......हिंदू महासभा ही ठीक है। नाम का नाम होगा और परम पवित्र सनातन धर्म की रक्षा भी होती रहेगी। बस यही ठीक है। अब जीवन में ज़रा आगे बढ़ना चाहिए। इतिहास में नाम आना चाहिए। मास्टर बाबू के ज़रिये यह काम हो सकता है। बड़े काम का है यह लड़का। इससे अपनी प्रशंसा के लेख लिखवा कर छपवा दूंगा। मैं क्या, यही मास्टरवा छपा देगा। होले-बहाने से दस-बीस पचास इसकी जेब में झुका दिया करूंगा। बस, फिर तो यह अपनी सारी अंग्रेज़ी की नालिज मेरे ऊपर खत्म कर देगा। बड़ा विद्वान आदमी है यह पांचू भी। मगर है पट्ठा घमंडी। .खैर! कोई बुरी बात नहीं। विद्या पर तो गर्व होना ही चाहिए। लक्ष्मी और सरस्वती—यही तो गर्व करने लायक हैं। मेरे पास धनबल है, इसके पास बुद्धिबल है। यह मुझे अखबारों में प्रसिद्ध कर देगा, मैं इसके और इसके परिवार को इस अकाल से मुक्त कर दूंगा।

•

दयाल ज़मींदार के मन में नई आशा, नया उत्साह जागा। उन्होंने पांचू की तरफ़ देखा।

पांचू सिर झुकाए किसी गहरे ख़याल में डूबा हुआ था।

पान चबाते हुए पांचू दयाल ज़मींदार से बराबरी की कल्पना अवश्य कर रहा था, किन्तु उसका भूखा पेट व्यंग बन कर मन में निरंतर चुभता रहा।

इधर जब कभी वह दयाल या मोनाई के सामने आता था तो लाख सतर्क रहने पर भी उसे अपनी लघुता का भास होने लगता था। व्यवहार को दुनिया ने धीरे-धीरे उसे यह महसूस करा दिया कि विद्या और बुद्धि के बल पर आदमी अपने बड़प्पन की साख नहीं पुजा सकता। साख पुजाने के लिए पैसा चाहिये। पैसा सबसे बड़ी शक्ति है। दूसरे ही क्षण पांचू अपने इन विचारों को हीन मान कर उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखता था। यह सोचकर उसे बड़ा बल मिलता था कि दुनिया में सदा से ही बुद्धि को धन से भी ऊंचा स्थान मिला है। वह सोचता कि अगर वाल्मीकि न होते तो राजा रामचन्द्र को कौन जानता? रवीन्द्रनाथ यदि कवि न होते तो प्रिंस द्वारकानाथ टैगोर के नाती के रूप में उन्हें कौन पूजता? वह ख़ुद अगर पढ़ा-लिखा न होता तो दयाल क्या उसकी इस तरह लल्लो-पत्तो करते?

.........लेकिन यह सब होते हुये भी वह दयाल के आगे कितना शक्तिहीन, कितना नगण्य है!

समुद्र की लहरों की तरह ऊंचे-नीचे विचार आगे बढ़ते और फिर पीछे हट जाते थे। वह सोचने लगता कि शिक्षित निर्धन न होकर अगर वह मूर्ख धनी होता तो सुखी रहता। सभ्य समाज में मूर्ख धनी का स्थान शिक्षित निर्धन से अधिक सुरक्षित होता है। वह और उसके विद्वान् पिता अपने परिवार के साथ गांव के किसी भी दूसरे गँवार की तरह ही भूखा मर रहे हैं, जब कि दयाल ज़मींदार तोंद पर हाथ फेर कर गुलछर्रे उड़ाता है। दयाल, मोनाई शक्तिमान हैं—केवल इसीलिए कि उनके पास पैसा है।

मन के अँधेरे में पांचू डूबने लगा। दम घुटने लगा। एक आह गले में अटकती हुई बाहर निकली और फिर वैसे ही दबा दी गई। पांचू का सिर झुका हुआ था; हथेली से ठुड्डी पकड़े हुए, बांया हाथ कमर पर टिका हुआ, दाहिना पैर एक क़दम पीछे और बांया आगे जमाकर वह इतनी देर से खड़ा हुआ था। मजबूरी की इस दम घोंटनेवाली भावना से शरीर अस्थिर हो उठा। हाथ ठुड्डी से हट कर नीचे आ गया, दोनों हाथ कमर के पीछे जाकर बंध गये, और दोनों पांव बराबर आ गये। वह अनमना हो गया।

चीलों, कौओं और कुत्तों के सामूहिक शोर के प्रति उसके कान चेतन हुये। पांचू ने सिर उठा कर सामने देखा--मोनाई-अज़ीम एक तरफ़, दयाल जमींदार अपने हाली-महालियों के साथ दूसरी तरफ़; इन दोनों के बीच से गुज़र कर पांचू की नज़रें मोनाई के मंदिर तक पड़ रही थीं। पांचू ने देखा, मंदिर के दरवाज़े पर पछांहीं लठैत अब पहरा नहीं दे रहे थे। मंदिर के सामने पड़े हुए ब्राह्मणों पर आंखें फिसलती थीं, मगर वह पहले घूरे को ही देखना चाहता था। वहां भी भीड़ इस वक्त तक तितर-बितर हो चुकी थी; इक्का-दुक्का आदमी चील, कौओं, और कुत्तों के जमघट में एक शक्तिहीन शत्रु बन कर घूरे को घूरता हुआ दिखाई दे रहा था।

पांचू को यह दृश्य अच्छा न लगा। घूरा इस वक्त उसे मरघट की तरह मनहूस लग रहा था। पहले आदमियों का मेला लगा हुआ था। लोग पर लोग टूट रहे थे। चील, कौए और कुत्तों से घमासान लड़ाई छिड़ी हुई थी। आदमी तगड़ा पड़ रहा था। उस दृश्य में कितना जीवन था, कितनी क्रियाशीलता थी! और अब? वह मैदान छोड़ कर चला गया है। क्या, बात क्या है? घूरे पर की जूठन भी अभी खत्म नहीं हुई। कुछ देर पहले झुंड के झुंड आदमी पेट के लिए आपस में जितना लड़ रहे थे, उतना वे अपना पेट भर नहीं सके थे। तब फिर वे चले क्यों गये?

तुरंत ही पांचू को मोनाई के घर की गोलियों और लाठियों की याद आ गई। सारी बात उसके दिमाग़ में साफ़ झलक उठी। आदमी भूख की तकलीफ़ सहते-सहते टूट ज़रूर गया है, परन्तु इतने दिनों तक अहं के साथ पीड़ा के सह-वास ने उसे एक तरह से इसका आदी भी बना दिया है। अन्न पाने की झूठी आशा लिये हुए, भूख से लड़ कर दिन गुज़ारते हुए भी वह जीवित है, परन्तु गोलियों और लाठियों से लड़ने जाकर उसे तुरन्त ही अपनी ज़िंदगी से हाथ धोना पड़ता। आदमी जीवन से प्यार करता है, मौत से, जहां तक बन पड़ता है, वह दूर ही रहना चाहता है।

मौत के ठेकेदार ज़मींदार दयाल विश्वास को सामने देख कर भूखे हट गये थे। उनके पैर हट जाने के लिये सामूहिक रूप से अपने आप उठ पड़े थे। अब चीलों और कौओं के समान शत्रु रह गये थे। इनका शोर और कांव-कांव हवा के ज़र्रे-ज़र्रे में भर गया था। कान उस शोर के इस क़दर आदी हो चुके थे कि ध्यान दिये बग़ैर वे आवाजें अब खलती नहीं थीं--एक तरह से सुनाई ही नहीं देती थीं।

एक बार पहले भी जब इस हंगामे से आदमियों की चीख़-चिल्लाहट और कराह क्षीण होते-होते मिटने लगी थी, तब पांचू के कानों ने जाग कर उस कमी को महसूस किया था; उसकी आंखें फ़ौरन ही उठ गई थीं। लोगों के हटकर चले जाने पर भी उसका ध्यान गया था। मगर उस वक्त दयाल ज़मींदार बड़ी ज़ोरों के साथ मोनाई के घुर्रे उड़ा रहे थे। पांचू की दिलचस्पी उस वक्त उसमें ही थी। उन भूख के मतवालों को नज़र-अन्दाज़ करके, वह दयाल ज़मींदार के रौब में, मोनाई पर अपनी विजय का अनुभव करने में फंसा हुआ था। बाद में यह नशा धीरे-धीरे उतर चला। वह फिर सिर झुका कर सोचने लगा था कि इन हारने वाले और हराने वाले दो पूंजीशाहों के सामने उसकी हस्ती ही क्या है? चाहने पर पल भर में दयाल ज़मींदार उसका भी पानी इसी तरह खड़े-खड़े उतार सकता है। चाहने पर मोनाई भी उसे मख़मल में लपेट कर दस मार सकता है। और पांचू चाहने पर भी इन दोनों में से किसी

को कुछ भी नहीं कह सकता, क्योंकि वह कायर है । गांव के कमतरीन इंसान भी पांचू से अच्छे हैं । वे अब दयाल या मोनाई की सलामतें-ख़ुशामदें तो नहीं करते ।

कोल्हू के बैल की तरह हीनता के चक्कर में घूमता हुआ पांचू अपने अपाहिजपन से खोझ उठा । लेकिन इस हार, शर्म और बेचैनी से भाग कर वह जा ही कहां सकता है ? अपने अन्दर से वह इस गतिरोध को क्योंकर दूर करे ? उसके दिमाग़ की ऊपरी सतह में अनेकों उखड़े-उखड़े से विचार, तालाब के साफ पानी के अन्दर तेज़ी से आती-जाती-कतराती हुई मछलियों की तरह झलकते तो थे, मगर चेतन-बुद्धि की पकड़ में वे नहीं आ रहे थे। पांचू विचार-शून्य, सिर झुकाये खड़ा था ।

दयाल जमींदार पांचू से अपनी पब्लिसिटी कराने का निश्चय कर उसकी ओर देखने लगे । उन्होंने सोचा किसी गहरे ख़याल में डूबा हुआ है ।

उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करते हुए दयाल जमींदार बोले--"देख लिया मास्टर, ये हैं अपने देशभाई। लाखों चूस कर इक्यावन रुपये की गुठली थूक रहे हैं जैसे देश पर बड़ा भारी एहसान कर रहे हों ।"

कहते हुये दयाल ने रुपयों को पैर से ठुकरा दिया। तैश में आकर बोला--"चार पैसे कमा कर नवाबज़ादा हो गया है साला। वो दिन भूल गया जब घर में खाने के भी लाले पड़े हुए थे ।"

मोनाई सिर झुकाये, हाथ जोड़े, चुपचाप खड़ा था । दयाल कहते गये--"एक तो सड़ा हुआ अन्न खिलाकर इतने ब्राह्मणों को मौत के मुंह में डाल दिया, और अब इक्यावन रुपये देकर घनश्यामदास बिड़ला बनना चाहता है, कमीना ! इससे पूछो भला, इक्यावन रुपल्ली में डाक्टर क्या अपने हाड़-मास से जिलायेगा इतने मरीज़ों को ?'

मोनाई ने देखा देवता संतुष्ट नहीं हुए । वह पहले से ही जानता था । विनय पूर्वक बोला--"मेरे पास रुपये होते तो अपनी जान तक देने से न चूकता। बामन ठाकुर की सेवा में अगर तन की चमड़ी भी अरपन कर दूं तो भी उरिन

नहीं हो सकता । राजा बहादुर तो जानते ही हैं कि उस दिन की वारदात में जो दो चार पैसे बाल-बच्चों के लिये कमाये थे सो भी भगवान जी ने ले लिये । दुक्खम-सुक्खम किसी तरह--"

"दुक्खम-सुक्खम ! हिः !" दयाल ने मुंह बनाया; फिर आवाज़ में तेज़ी लाये--"और वे हज़ारों बोरे जो तुम्हारे तहख़ाने में चुने हुये हैं ?"

मोनाई इसका जवाब देने के लिये तैयार था। फौरन बोला--"वो आपके हैं मालिक । आपके राज में जो कुछ भी है, वो सब हजूर का ही है ।"

यह कह कर मोनाई ने एक दबी निसांस छोड़ी जो दयाल जमींदार तक को सुनाई दी ।

दयाल तमक कर बोले--"देख लिया न मास्टर इस कमीने को । एहसान मानना तो दूर, उल्टे ताने कसता है । साला मेरी प्रजा को भूखा मार-मार कर अपनी तिजोरी भरता रहा । गांव में गोलियां चलानी पड़ीं इस--इस कमीने के कारण। दारोगा जी की नज़रों से इसका गोदाम बचाया मैंने; नहीं तो आज जेल में चक्की पीसता होता । इसके अपराधों की सीमा है भला ? बादशाही होती तो साले की खाल खिचवा कर चील गिद्धों को खिला देता । धन के लोभ में इस कमीने ने बेचारे निर्दोष ब्राह्मणों पर यह अत्याचार किया । मेरा जो कलेजा फटा जाता है अपने देशवासियों की ये दुर्दशा देख-देख कर । छेदासिंग, तोड़ दो इसका गोदाम ।'"

मोनाई की बनिया-बुद्धि जाग उठी; चाल सूझी। बिना घबराये, बिना झिझके, बड़ी शान्ति के साथ उसने तुरन्त ही हाथ जोड़ कर कहा--"इत्ती तकलीफ काहे को करते हैं मालिक ? चार मजदूरे मेरे साथ कीजिये। आप जहां कहें तहां बोरे धरवाय दूं । इस वारदात के बाद मैं तो आपै घबराय उठा हूं । सत्त कहता हूं। उस दिन आपने तो इस दास के लिये बड़ी कोसिस कर दोनी, मुल पुलुस वालों की निगाहैं आप समझैं कि बड़ी पत्थर फोड़ होती हैं। तब से तोन बार दरोगा जी का आदमी आय चुका है मेरे पास । दस हजार मांगता है, नहीं तो तलासी लेवेगा ।"

दयाल ज़मींदार चक्कर में आगये। एक नया दुश्मन, उनसे भी अधिक शक्तिशाली, मोनाई के गोदाम पर दांत गड़ाये बैठा है। रौब नर्म पड़ा; उत्सुक होकर पूछा—"फिर ?"

दिल ही दिल में मोनाई की बांछें खिल गईं, मगर चेहरे की एक शिकन तक न बदली। उसी तरह से उसने जवाब दिया—"रुपये तो मेरे पास हैं नहीं राजा बहादर। औ' पुलुस की नजरों में आयके फंस तो गया ही हूँ। गिरहचक्कर है हमारा—पिरालबध फिर गई है, जौन है तौन! कहलाय दिया कि बाबा, जबर-जस्त का ठेंगा सिर पर; उठाय लै जाओ।"

कह कर मोनाई ने टूट कर एक आह भरी।

दयाल जमींदार का दिल बैठ रहा था। चेहरे की अकड़ के ऊपर खिसियानपन की एक पर्त चढ़ गई। मोनाई की नजरों से यह छिपा न रहा। एक झलक दयाल के चेहरे को देख कर फिर अपनी बात जारी कर दी—"आपके चरनों की सौगन्द खाय के कहता हूँ हजूर, कि मेरा तो चित्त हट गया है इस काम से। कहां तक नुकसान सहूँ? मैं तो अपने बालबच्चों को लेके कलकत्ते चला जाऊँगा। भगवान जी का ही भरोसा है अब तो!"

यह कह कर मोनाई ने फिर जोरदार निसांस छोड़ी। एक बार दयाल को, मास्टर बाबू को देख कर फिर अज़ीम की ओर देखते हुये उससे कहने लगा—"अज़ीमा, बेटा जरा छेदासिंह के साथ जायके गुदाम की तालो सौंप दे। जब दारोग़ा जी का आदमी आवै तो हजूर के पास भेज देना। मैं उरिन हो गया।"

दयाल जमींदार मन ही मन उबल तो बेहद रहे थे, मगर पुलिस का दारोग़ा उनके लिये भी भारी पड़ रहा था। उन्हें मोनाई की इस बात पर यकीन तो क़तई नहीं आ रहा था; लेकिन यह ज़रूर समझते थे कि दारोग़ा को रिश्वत देकर मोनाई उन्हें परेशान कर सकता है। इसके साथ ही साथ वह ये भी नहीं चाहते थे कि मोनाई की धमकी भरी चाल के आगे उनका सिर झुक जाय। दिमाग़ इस गुत्थी में अटका हुआ था। उनका रियासती मिज़ाज पुलिस, दारोग़ा और मोनाई

जैसे 'तुच्छ कोड़ों' से हार मानना हरगिज़ नहीं बर्दाश्त कर सकता था। अचानक उपाय सूझा। उन्होंने तय किया कि गांव में चावल ज़रूर ही बँटवाना चाहिये। पब्लिक की भलाई का बहाना लेकर दारोगा क्या, गवर्नर तक को नीचा दिखाया जा सकता है।

दयाल ज़मींदार ने हुक्म दिया--"छेदाशेंग! ले आओ चाभी। रोज सबेरे और शाम दीन-दुखियों को चावल बांटो। गांव में ढिंढोरा पिटवा दो कि आज शाम को--अ ऽ--स्कूल के बरामदे में सब लोग चावल लेने के लिये इकट्ठा हो जायं।"

फिर मोनाई की तरफ देख कर बड़े रूखे स्वर में दयाल ने कहा--"दारोग़ा का आदमी आये तो कह देना कि मैंने दारोग़ा जी को बुलवाया है। समझ लूंगा।"

कह कर दयाल जमींदार फ़ौरन ही चल दिये।

"आओ मास्टर।" दयाल के कहते ही पांचू चुपचाप उनके साथ हो लिया।

पांचू को साथ लेकर दयाल अपने घर की तरफ़ चले। मोनाई हाथ मलता रह गया।

Badri Nath Pandit.

६

कोठी पर पहुँचते ही दीवान जी ने ज़मींदार को सूचना दी कि यूनियन बोर्ड के सेक्रेटरी मिस्टर दास आये हुये हैं, और उन्हें गेस्ट हाउस में ठहराया गया है।

यह खबर सुन कर दयाल बेहद ख़ुश हुये। पांचू से कहने लगे—"अगर दारोग़ा वाली बात सच भी है, तब भी मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। गांव में यूनियन बोर्ड खुल जायगा तब अगर चाहूँ तो मोनाई का सारा स्टाक ज़ब्त करवा कर उसी दारोग़ा बेटे की निगरानी में अपने यहां उठवा मंगाऊं। सरकारी गोदाम मेरे यहां ही रहेगा। सेक्रेटरी और एस० डी० ओ० को कुछ ले दे कर दारोग़ा साले को ऐसा अँगूठा दिखाऊं कि वो भी ज़िंदगी भर याद करे। और मोनाई को तो मैं तबाह करके ही दम लूंगा। कमीना मुझे पुलीस का डर दिखाता था! समझ लूंगा—उसकी पुलीस—"

इसके बाद दयाल जमींदार ने पुलिस और ब्रिटिश राज की मा-बहन के साथ गहरा रिश्ता जोड़ते हुये पराई हुकूमत पर अपना ग़ुस्सा ज़ाहिर किया।

पांचू तब यह सोचने लगा कि हुकूमत के हामी भी हुकूमत को कितनी बुरी नज़र से देखते हैं। और उसे आश्चर्य हुआ कि फिर भी दयाल और उसके वर्ग के लोग दुनिया पर अपनी हुकूमत कायम रखना चाहते हैं। आदमी जिस चीज़ से नफ़रत करता है, उसी को चाहता भी है—मनुष्य के स्वभाव में यह विरोधाभास क्यों?

दयाल ज़मींदार पांचू को आज अपने शीश-महल में ले चले। शीश-महल की शोहरत दूर-दूर तक फैली हुई थी। पड़ोस के एक दूसरे जमींदार, गौरीपुर के नवाब साहब को नीचा दिखाने के लिये ही दयाल ने यह शीशमहल बनवाया था। पुश्तैनी हवेली का मेहमानखाना बहुत ख़स्ता होगया था। उसकी मरम्मत

कराने का इरादा करते-करते, लागडाट के फेर में, नये सिरे से तिमंज़िली इमारत बनवा डाली। गोरोपुर के नवाब ने अंगरेजी ढंग का मेहमानखाना बनवाया था। शहर से बिजली का कनेक्शन तक दौड़ा मंगाया। दयाल ज़मींदार ने तैश खाकर कलकत्ते से इञ्जीनियर बुलाये। गोरोपुर के नवाब ने सिर्फ़ बिजली ही लगवाई थी, इन्होंने टेलीफोन भी मंगवा लिया। थैलियों के मुंह खोल दिये। फ़र्शी मंजिल पर नई कचहरी बनी; गुमाश्तों को बरसों की मसनद गद्दी छोड़ कर कुर्सी मेज़ पर बैठने की आदत डालनी पड़ी। दीवान जी का कमरा अलग बना। जमींदार की कचहरी में सिंहासननुमा कुर्सी, एक बड़े और मोटे क़ालीन पर, सामने रक्खी गई; कुलीन और सम्मानित सदस्यों के लिये सिंहासन के दोनों तरफ सोफ़ासेट रक्खे गये। बिजली की रोशनी और पंखों की तो भरमार थी। पहली मंज़िल पर एक तरफ़ दयाल ज़मींदार की लायब्रेरी थी, और दूसरी तरफ़ मेहमानों के लिये कमरे। सबसे ऊपर शीशमहल बनवाया गया था। शीश-महल देखा बहुत कम लोगों ने था, मगर तारीफ़ बहुतों ने सुनी थी।

पांचू पहली मंजिल तक से परिचित था। लायब्रेरी में वह दयाल के लड़के को पढ़ाया करता था। मेहमानों के कमरे भी उसने देखे थे और उनकी सजावट से वह प्रभावित भी हुआ था। शीशमहल देखने की इच्छा तो बहुत दिनों से थी, परन्तु ख़ुद कह कर देखना उसे पसन्द नहीं था। आज दयाल ज़मींदार के साथ वह शीशमहल वाली मंजिल पर गया।

बड़े हाल में घुसते ही, दाहिनी तरफ़ एक बनावटी झरना और उसके साथ ही लगा हुआ एक फ़व्वारा था। झरने से लगी हुई दीवार पर, शीशे में जंगल और झरने का दृश्य अंकित किया गया था। बनावटी झरने में जगह-जगह रंगीन बल्ब फिट किये गये थे। दीवारें शीशों पर बनी हुई रंगीन तस्वीरों से मढ़ी हुई थीं। बीच-बीच में क़द्दे-आदम आईने लगे हुये थे। पेंट की हुई छत थी जिसमें बिजली के झाड़ फ़ानूस लटके हुए थे। क़ीमती फ़ारसी क़ालीनों से हाल का संग-मर्मरी फर्श सजाया गया था। आधे हाल को घेरे हुये दो फुट ऊँचा गद्दा पड़ा था, जिस पर रेशम की चांदनी बिछी हुई थी। रेडियोग्राम, पियानो, हारमोनियम,

तबला, सितार, वीणा, वायलिन एक ओर सजाकर रक्खे हुये थे। शराब के लिये दो क़ीमती मेज़ें दोनों तरफ़ रक्खी हुई थीं। दरवाज़ों पर रेशमी परदे पड़े थे। हाल के चारों कोनों शीशम के ख़ूबसूरत स्टैण्डों पर विभिन्न मुद्राओं में नग्न नारी-मूर्तियां रक्खी हुई थीं। हर दरवाज़े के दोनों तरफ ख़ूबसूरत स्टूलों पर गंगाजमनी गमलों में विलायती फूल शोभा बढ़ा रहे थे। हर दो तकियों के बाद गद्दे के नीचे पीतल के बड़े-बड़े उगालदान भी रक्खे हुये थे। उनके बाद रास्ते के लिये थोड़ी-सी जगह छोड़कर हाल में दोनों तरफ दीवारों से सटा कर दो बड़े-बड़े ख़ूबसूरत शो-केस रखे हुए थे, जिनमें दयाल और उनके कुछ पुरखों द्वारा अन्य जमींदारों, नवाबों ओर अंग्रेज़ दोस्तों से पाये हुए उपहार सजा कर रखे गये थे। उनमें ज्यादातर चांदी और सोने के खिलौने, मूर्त्तियां, साग़र व सोना के सेट वग़ैरह थे। उन उपहारों में एक बर्मा के बने हुये भगवान बुद्ध भी थे, जिन्हें दयाल जमींदार के एक नामी-गिरामी नवाब दोस्त ने भेंट किया था। दयाल ज़मींदार के परदादा को मीर ज़ाफर ने ख़िताब, ख़िलअत व सनद दी थी, सो भी शो-केस की सजावट बढ़ा रही थी। बड़े बड़े अंग्रेज अफ़सरों से पाये गये उपहारों में अट्ठानवे फ़ी सदी उनकी दस्तख़ती तसवीरें थीं; दो-तीन मेम साहबाओं की भी थीं। पिछले कलेक्टर की मेम ने अपनी तसवीर पर 'टु डियर दयाल' लिख दिया था।

सामने हाथी दांत के नक्क़ाशी किये हुये अठपहलू फ्रेम में एक क़ीमती घड़ी थी।

दयाल ज़मींदार ने बड़े उत्साह और अभिमान के साथ पांचू को हर चीज़ दिखाई और कहा—"इस कमरे की ब्यूटी तो शाम को देखना मास्टर! और इसके बाद वह जो अंबर का रोयल कमरा है न, उसे भी दिखाऊँगा तुम्हें! देखकर तुम भी कहोगे कि हां, किसी रईस का विलास-भवन देखा।"

फिर उन्होंने हाल की हिन्दुस्तानी सजावट का ख़ास तौर पर ज़िक्र करते हुए बतलाया कि, "इसमें एक पोलीसी है। कोई अंगरेज, चाहे वह लाट साहब का नाती भी क्यों न हो, मेरे शीशमहल में आयेगा तो उसे हिन्दुस्तानी ढंग से ही

ही बैठना पड़ेगा। कुर्सियां जान-बूझ कर ही नहीं रखवाई है मैंने। हिन्दुस्तानी नाच-गानों की महफ़िलें करवाता हूँ, कि बेटा, लुक अवर नेशनल आर्ट।"

इसके बाद दयाल जमींदार ने यह कह कर पांचू की इज्ज़त-अफ़ज़ाई की कि आयन्दा किसी महफ़िल वह उसे जरूर बुलायेंगे। फिर नौकर को बुला कर झरनेवाली टंकी में पानी चढ़ाने का हुक्म दिया। झाड़ और फ़ानूसों से गिलाफ़ उतरवाये। आज मास्टर बाबू की ख़ातिरदारी में शीश-महल में रौशन किया जायगा।

पांचू को इस समय दयाल ज़मींदार की दोस्ती और अपने शीशमहल देखने के सौभाग्य से गर्व नहीं हो रहा था। उसे .गुस्सा आ रहा था कि दयाल के पास इतना ऐश्वर्य क्यों है। उसे दयाल से नफ़रत हो रही थी। इसीलिए वह शुरू में .ज्यादातर चुप रहा। बोलने का काम .खुद दयाल जमींदार कर रहे थे। हर बात में वह अपना ही शाहनामा बखान रहे थे। पूरी बेतकल्लुफ़ी बरतते हुये पांचू अकड़ कर मसनद पर लेटा रहा। शरबत आया, शरबत पीया—जैसे वह उसका हक़ हो। पनडब्बे से बराबर पान निकाल कर खाता रहा।

सुनते-सुनते और मन ही मन विद्रोह करते हुए पांचू थक गया। आख़िर विद्रोह फूटा और बीच-बीच में .खुद उसने भी लनतरानियां सुनानी शुरू कीं। वह दयाल ज़मींदार को पछाड़ना चाहता था। उसने यह प्रकट किया कि जैसे उसे रईसों से इन आराइशों और महफ़िलों की सदा से आदत रही है। अमेरिकन प्रिंसिपल मि० जार्डन का प्रिय शिष्य होने के नाते उसे विलायती समाज में दुनिया देखने के हज़ारों मौक़े मिले हैं। विलायती मर्द और औरतों को प्यार और मुहब्बत में जी खोल कर आज़ादी बरतना अच्छा लगता है।

ऐश्वर्य का भूखा बुद्धिजीवी पांचू धनाधीश होने के कारण 'बड़े आदमी' कहे जाने वाले दयाल जमींदार पर अपने बड़प्पन का सिक्का जमाने का प्रयत्न कर रहा था। अपनी विलासिता और रोमांस की झूठी कहानियों से उसने दयाल जमींदार पर अपना रंग जमा दिया।

दयाल जमींदार को कलकत्ते की कुछ विलायती कसबियों का हाल तो जरूर मालूम था, मगर अंग्रेजी सोसाइटी का घुल-मिल कर लुत्फ़ उठाना उन्हें कभी भी नसीब न हुआ था। हर साहब को उन्होंने दावत दी थी, लेकिन किसी साहब ने उन्हें कभी पूछा तक नहीं––अपनी तसवीर में 'डियर दयाल' लिखने वाली पिछले कलेक्टर की मेम साहब ने भी नहीं। दयाल जमींदार पांचू के विलायती अनुभवों में रस लेने लगे। खोद-खोद कर पते की बातें पूछते थे। पांचू की उड़न-छू लनतरानियां उन्हें होठ काटने और रह-रह कर ठंडी-गर्म सांसें छोड़ने पर मजबूर कर रही थीं।

दयाल जमींदार के विलास भवन में बैठ कर अपने देशी-विलायती रोमांसों की मनगढ़ंत कहानियों से खुद पांचू को तकलीफ़ महसूस होने लगी। उसका चित्त चंचल हो उठा। दयाल के प्रति निरर्थक क्रोध और घृणा के थपेड़े स्वयं उसके मन पर ही तमाचे मारने लगे।

तभी मोनाई के आने की खबर मिली। दयाल जमींदार ने उसे वहीं बुला लिया। मोनाई आकर तरह-तरह से सलामतें, ख़ुशामदें करने लगा।

पांचू को बेहद ग़ुस्सा आ गया। यह शख्श आत्मसम्मान का भाव खो कर बड़े लोगों के सामने इस तरह गिड़गिड़ाया क्यों करता है? जात में, परजात में, सैकड़ों से अच्छी हैसियत रखने वाले इस वैष्णव केवट के पैरों तले सारा गांव दबा पड़ा है, चौदह पीढ़ियों के ख़ानदानी जमींदार और रईस, दस-पंद्रह हजार अन्नदाता किसानों के स्वामी और अन्नदाता, श्रीमान दयाल चांद विश्वास की परंपरागत प्रतिष्ठा को भी अपनी बढ़ती हुई शक्ति से बार-बार झटके देने वाला, दुनिया की नजरों में नीच और नाचीज यह मोनाई अपनी लाखों की दौलत लेकर भी दयाल जमींदार के सामने घुटने क्यों टेक देता है? यह दयाल का ग़ुलाम क्यों बन जाता है? क्यों? क्यों?

मोनाई की पराजय में पांचू इस समय अपनी पराजय देख रहा था। अपनी निर्धनता के कारण वह दयाल से हार गया था और यह चाहता था कि दयाल जमींदार जीत न पायें। खीझ कर वह सोचने लगा, मोनाई तो

दौलतमंद है, फिर यह क्यों दबता है? दयाल को ये मुंहतोड़ तुर्की-बतुर्की क्यों नहीं सुनाता? कायर कहीं का।

पांचू को अपनी कायरता भी झांकने लगी। उसके आभास मात्र से ही वह विचलित हो उठा। वह इन दोनों के आगे कायर हो जाता था। इस ग्लानि से बचने के लिये, वह ज़रा अकड़ कर मसनद पर लेट गया और लेटे-लेटे ही पनडिब्बी की ओर हाथ बढ़ाया। पान खत्म हो चुके थे। फ़ौरन ही उसने दयाल के नौकर को आवाज़ दी। दयाल ज़मींदार ने पूछा—"क्या चाहिये मास्टर?"

"कुछ नहीं। इस डिबिया के वैधव्य को देख कर ज़रा दया आगई।" पांचू ने मोनाई के सामने दयाल ज़मींदार से मज़ाक करके अभिमान का बोध किया।

"हो-हो-हो!" करके दयाल हँस पड़े। फिर मजाक का जवाब दिया—"यह विधवा नहीं, सदा सुहागिन है मास्टर। दिन में सैकड़ों आते-जाते रहते हैं।"

कह कर दयाल आप ही अपने मजाक का मजा लूटते हुये हँस पड़े।

पांचू ने भी सुर में सुर मिला दिया, कहने लगा—"इसी लिये तो और भी दया आती है। जिस दीपक के पास सैकड़ों पतंग आते हों, वह यदि किसी समय पतंगविहीन हो जाय तो उसे कितनी पीड़ा होती होगी।...अरे, पान ले आओ।"

नौकर सामने खड़ा था। लगे हाथ पांचू ने उसे भी हुक्म दे डाला, और इस तरह हुक्म देने वाले का एक मौका दयाल से झटक कर उसे बहुत सुख आ।

मोनाई अपनी अरजी के फ़ैसले का इंतज़ार कर रहा था। घुटनों में सिर झुकाये, हाथ बांधे बैठा था। यहां की बातों पर उसका ज़रा भी ध्यान न था।

छेदासिंह अपने मालिक का हुक्म पाकर दूसरे लठैतों के साथ मोनाई के गोदाम का मालिक बन बैठा था। बोरे उठवा कर उसने गोदाम से बाहर

फिकवा दिये। उन्हें देख कर आसपास फिरते हुये भूखे जन हिंसक आह्लाद और जोश से झपट कर समीप आये। बोरे यों फेंके जा रहे थे जैसे ठाकुर की मूर्तियां मंदिर से बाहर फेंकी जा रही हों। लोगों को सहसा विश्वास नहीं हो रहा था। मोनाई के गोदामों में हज़ारों बोरे देख कर वही अविश्वासमय आह्लाद उमड़ आया जैसा कि उन्हें ब्रह्मभोज और जूठन को देख कर हुआ था। परन्तु उनके पांव ठिठक कर रह गये। चावलों के इन बोरों में शहीदों का ख़ून झलक रहा था। और वे ख़ूनी हो इन बोरों को बाहर फेंक रहे थे।

मूछों पर ताव देकर डपटता हुआ, छेदासिंह एक तरफ़ तो अपने लठैतों को बोरे निकालने का हुक्म देता, और दूसरी तरफ़ मोनाई की सात जाने-आने वाली पीढ़ियों के साथ अपने क्षत्रिय रक्त का मौखिक रूप से मिश्रण भी करता जाता था।

बारह रुपल्ली का नौकर, मगर ज़मींदार का सिपाही ठाकुर छेदासिंह मोनाई जैसे लखपती के मुंह पर लात जमा सकता था। ज़मींदार का सिपाही होने के नाते उसे प्रजा के जान-माल और आबरू पर सर्वाधिकार प्राप्त थे। छेदासिंह ने अपने साथ के पच्चीस लठैतों को चार-चार बोरे इनाम में बांट दिये। दस बोरे चावल उसने अपने लिए रिज़र्व किये, जिनमें से पांच बोरे अपने जूतों के बल पर उसने मोनाई के हाथ तत्काल बेचे भी और रुपये भी नक़द वसूल किये। जूते-मार-मार कर मोनाई का पानी उतार दिया। फिर वही पांचों बोरे उठवा कर स्कूल में भिजवा दिया। इसके बाद उजड़े हुये गांव में ढिंढोरा पीट दिया गया। जिंदा लाशों में फिर से जीवन दमकने लगा।

मोनाई एक ही दिन की लूट में ठंडा पड़ गया था। चावल की लूट से भी ज़्यादा उसे जूतों की मार खाने का ग़म था। एक बार हाथ उठ जाने के बाद छेदासिंह अब उसे जब चाहेगा पीट लेगा, और मोनाई से यह रोज़-रोज़ की मार हरगिज़ बर्दाश्त न हो सकेगी। इसीलिए, दयाल के सिपाही के जूतों से बचने के लिए, उसे मजबूर होकर फिर दयाल की ही शरण में आना

पड़ा था। स्वार्थ ने उसे मजबूर कर दिया था। उसने बिना किसी शर्त के दयाल ज़मींदार के सामने आत्मसमर्पण कर दिया।

हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ाते हुये मोनाई बोला—"आप तारैं तो तर जाऊं, और मारना चाहैं तो हजूर के चरन-कमल में दास का सिर हाजिर है। बाकी अन्नदाता अब छिमा कर दीजिये। आप माई बाप हैं जो डंड मंजूर करैंगे उसे सिर माथे पर धरींगा सरकार। मुझ मेरे पेट पर लात न मारैं राजा बहादर—मेरे रुजगार को रच्छा कर लें।"

मोनाई को इसी पराजय से प्रसन्न होकर दयालबाबू पांचू मास्टर से मजाक करते हुये अपनी खुशी ज़ाहिर कर रहे थे। अपनी शक्ति के माहात्म्य बखानते हुये उन्होंने यूनियन बोर्ड के सेक्रेटरी के आगमन की सूचना मोनाई को दे दी थी। एक नौकर को भेज भी चुके थे कि सेक्रेटरी साहब अगर ग़ुस्ल वग़ैरह से छुट्टी पा चुके हों तो उन्हें ऊपर बुला लाये।

मिस्टर दास तशरीफ़ लाये। सांवला रंग, निहायत दुबले, लंबा क़द, रेशमी सूट पहने, सुनहरी कमानियों का अठपहलू शीशों वाला चश्मा लगाये, हाथ में ५५५ सिगरेट का टिन लिये हुये, और होठों में एक सिगरेट दबा कर मिस्टर दास ने ज़मींदार दयाल विश्वास, हेडमास्टर पांचू गोपाल और व्यापारी मोनाई बोष्टम को अपने प्रथम दर्शन से कृतार्थ किया।

दयाल ज़मींदार तपाक के साथ उठ कर खड़े हो गये। कुर्सी का ग़ुलाम मोनाई ने खड़े होकर कमानी की तरह अपने को झुका कर अदब से हाथ जोड़े। पांचू भी उठ कर बैठ गया, मगर खड़ा नहीं हुआ।

मिस्टर दास पहली ही झलक में पांचू को फूटी आंखों न सुहाये। मिस्टर दास पतलून की क्रीज़ को नज़ाकत के साथ सम्हालते हुये मसनद के सहारे बैठे। सफ़र की तकलीफ़-आराम पर दो सवाल जवाब हुये। फिर दयाल ने मिस्टर दास का हेडमास्टर पांचू गोपाल से परिचय कराया और तारीफ़ की। पांचू ने अपनी तरफ़ से बनावटी शिष्टाचार दिखाया। बहुत मिस्टर दास का बन-बन कर बोलना फूटी आंखों नहीं सुहा रहा था। चावल ही

मिस्टर दास की नज़र अदब से हाथ बांधे और सिर झुका कर खड़े हुए मोनाई की तरफ़ भी गई। मिस्टर दास को अपनी तरफ मिलाने की गरज़ से दयाल ने टूटी फूटी अंग्रेजी में मोनाई का चिट्ठा खोलना शुरू किया। 'डयामफूल, राइकल' आदि नामों से बंगाली-अंग्रेजी में मोनाई को याद करते हुये दयाल जमींदार ने हँस-हँस कर मिस्टर दास से कहा—"आपके आने की ख़ुशी में अपने गांव का यह सबसे उम्दा तोहफ़ा आपको प्रेज़ेंट करता हूं।" इसके ऊपर हँसी हुई। पांचू हँसने के ख़िलाफ़ था, लेकिन मुस्कराने पर मजबूर हुआ।

मोनाई के लिये दयाल ज़मींदार का मिस्टर दास से हँस-हँस कर अंग्रेज़ी में बातें करना असह्य हो उठा। बड़ी घबराहट के साथ वह सोच रहा था—"भगवान जी ही जानें, कौन सी घात साध रहे हैं ये लोग। ये बार-बार मुस्कुराय-मुस्कुराय के हमारी तरफ इसारेबाजी कर रहे हैं, इसका जौन फल मिलै तौन कम है। एक ससुर जमराज और दूसरा जमदूत—मेरे घर को खेत बनाय के चर जावेंगे—जरूर चर जावेंगे।"

एक लम्बी कांपती उसांस लेकर मोनाई मन ही मन में टूट गया। उसे पूरा-पूरा यकीन हो गया था कि—"ये राहू केतू दोनों मिल कर हमें आज जीता न छोड़ेंगे। राम जानै, कौन साइत बिगड़ गई रही उस दिन। दाम लेके चावल दै देता तो परजा जै-जैकार मनाती। न तौन गोली चलती, न जमींदार गुदाम देखते। हज़ार पान सौ नफा कमाने के फेर में अब ये जनम भर की कमाई लुटी जाती है। भगवान जी, ऐसा कौन-सा पाप किया था मैंने?"

मोनाई सतर्क होकर अपने को टटोलने लगा। किसी पाप के कारण ही उसकी यह दुर्दशा हुई है, इसका उसे डर था। पाप का ध्यान आते ही फ़ौरन उसके प्रायश्चित का संकल्प कर, उस दर्शनी हुंडी को दिखा कर भगवान के ...ोदा पटाने की सूझी।

को मार हर

से बचने के ...िना पाप जाने परासचित कौन-सा किया जाय? वैसे जब से ...नी जान में तो कौनो पाप किया नहीं मैंने। चींटी को चारा देता

हूं, गो भी हैं, मंदिर में ठाकुर जी और गोमाता की सेवा होती है। पुजारी जी को इसी हेत रखा है। पुजारी जी को तनखाय देता हूं, परब-तिउहार के दिन जैसी सरधा है वैसा दान पुन्न भी करता ही हूँ—इस तरह बाह्मन की सेवा भी कर देता हूँ। तब कौन सा पाप मुझसे भया है नाथ? सबेरे चार बजे माला भी जपता हूँ तुम्हारे नाम की। मुल परसों लेट हुइ गया रहा, साढ़े चार बजे आंख खुली थी। मुल इससे क्या, जिस दिन गोली चली रही उस दिन तौ सारी रात जागरन करके माला जपता रहा था। हां, मूतक में जपी रही। गिन्नी ने मना भी किया था कि सूतक में कंठी न छूना। मुल परेतों का ऐसा भय था कि कंठी हाथ से न छूटी। बस यही पाप भया; इसी से भगवान जी का कोप मुझ पर भया है। मुल, भगवान जी, कीड़े को क्यों मारते हो? छिमा करौ नाथ। और जो आदमी मरे रहे उनका भी किरिया करम अब तौ कराय दीना। बरमभोज भी हुई गया। और चलौ, जो रहा सहा परासचित था सो भगवान जी जमींदार बाबू के रूप में हमसे पूरा कराय दीना।...देखौ, क्या माया है भगवान जी की। जित्ती बेला जमींदार बाबू ने छेदासिंह को अडर दिया कि गांव भर में चावल बांट देओ, उत्ती बेला तौ मेरी छाती में मानौ गोली दग गई रही। मुल अब ध्यान में आया कि उस दिन द्वार से सैकड़ों भूखे लौट गये रहे। जरा से स्वारथ के फेर में हमरी मत अंधी हुइ गई रही। वैसे इसे स्वारथ क्यों मानें? रुजगार धंधा तौ करम है। भगवान जी भी कहते हैं कि करम करौ अपना। गांव वाले भूखे तौ जरूर रहे, मुल साधू भिखारी थोड़े रहे। हां, साधू भिखारी द्वार से भूखा लौटता तौ सचमुच बड़ा पाप लगता। इसमें क्या? ये तौ दुकनदारी ठहरी, सौदा पटा तौ दिया नाहीं तौ जै राधे। उल्टे वही लोग सब हमारे ऊपर अन्याय करने लगे। क्या भगवान जी ने नहीं देखा होगा कि मोनाई बोष्टम निरदोष है? औ' मान लेओ कि हम मायामोह में पड़े सिंसारी जीव हैं, कोई अपराध अनजाने में बन पड़ा होय, तौ भगवान जी ने उसके परासचित में यें डंड दै दीना—जूते खाये, गालियां सुनी, लूटे गये—क्या-क्या दुर्गत नहीं भई? बहुत डंड हुइ चुका नाथ। हे दीनदयाल, अब छिमा करौ। देखौ, हमारा चावल ही

आज भूखों को बांटा जा रहा है। दुनिया समझे कि दयाल जमींदार ने अन्नदान दिया, मुल हे दीनानाथ, तुम तौ अन्तरजामी घट-घट व्यापी हौ—तुम तौ सब जानते हौ। मैं संसारी कीड़ा जरूर हौं, पर पर तुम्हारा भगत हौं। तुम्हारी सरन में दिनरात पड़ा रहता हौं। इन पापिष्ठों से मेरा गला छुड़ाओ दीनबन्धू! हे दीनानाथ, नाथों के नाथ, इस पापी को नाथो। कालियानाग से कुछ कम नहीं हैं ये दयाल। इस ससरे के काटे का मंतर नहीं है। बड़े-बड़े हत्तियाचार किये हैं इसने। इसके जुलुम से पिरथी थर्राय उठी है, ये अकाल पड़ रहा है। जिस गांव का राजा पापी है, उसमें तो जरूर ही अकाल पड़ेगा—वेद सासतर तक में यही बात लिखी गई है। सारे बंगाल में इसके ऐसे पापी जमींदार भरे पड़े हैं। ये सब साले गौरमिन्ट से मिल गये हैं। इन्हीं सबों ने रुपिया दै-दै के गांधी महातमा और नेता लोगन को जेल में बन्द करवाय दीन्है। पुलुस से गोलियां चलवाय के अन्दोलन दब-वाया इन लोगों ने। अभी, मेरे यहां भी इसी राच्छस दयाल के आदमियों ने गोलियां चलाई। मैंने तो किसी पर एक हाथ भी नहीं उठाया। उल्टे मैं ही मार खाता रहा, भगवान जी जानते हैं। ये सब बड़े लोग बस अपना ही स्वारथ चाहते हैं। गरीब को बढ़ती तो देखही नहीं सकते। अरे, इनका भी सत्तिया-नास हो जायगा। आने दो जरा सुभाष बाबू को फौज ले के। वो इनको कालेपानी भेजेंगे और इनकी सरकार को भी। सब गरीब लोग ही तब सेठ साहूकार और जमींदार बैपारी बनाय दिये जायेंगे। अरे, एक बार सुराज हुइ जाने देओ तब हम गरीबों के दिन भी बहुरेंगे।"

मोनाई के लिये इस तरह निराश्रित होकर हाथ बांधे बैठा रहना असह्य हो रहा था। डेढ़ घंटा हो गया, किसी ने इसकी तरफ़ आंख उठा कर भी न देखा। मोनाई की जान सूली पर लटकी हुई थी; उसका रोजगार-धंधा, चाल-कुचाल, सब दयाल जमींदार के फैसले पर ही निर्भर करता है। मगर दयाल जमींदार पांचू मास्टर और मिस्टर दास के साथ हंसी मज़ाक में मगन थे। शर्बत और फलों का नाश्ता हुआ; दम पर दम पान और सिगरेटें चलती रहीं; हा-हा ही-ही होती रही—वक्त यों ही बीतता रहा।

शीशमहल जगमगा उठा। इन लोगों ने तब जाना कि बाहर अंधेरा हो चुका है।

कमरे भर में रंग ही रंग दिखाई देने लगे। कांच पर बनी हुई, बड़ी-बड़ी तस्वीरों के पीछे बल्ब जगमगा उठे। झाड़फानूसों में जोत जग गई। बीच-बीच में लगे हुये बड़े-बड़े आईनों से विस्तार पाकर शीशों से मढ़ा हुआ हॉल एक विशाल शीशमहल का भ्रम कराने लगा।

महराबदार, और जगह-जगह से घुमावदार पतली सीढ़ियों पर से उछलता हुआ सतरंगी पानी का झरना बह रहा था। गहरे अंजनी रंग के निहायत छोटे छोटे बल्बों से पहाड़, हरी रोशनी के दरख्त और पीले लाल फूल रोशन थे। सतरंगी पानी का झरना उभर कर नजरों में आता था। नीचे रंगीन फ़व्वारा! रंग-बिरंगी रोशनियों को अपना कर पानी की बूंदें ऊपर की ओर उछल रही थीं। झरने के पीछे, शीशे पर बना हुआ जंगल और पहाड़ों का दृश्य (निमिषमात्र के लिये) प्रकृति का भ्रम उत्पन्न करता था। पेड़ों से झांकते हुये चंद्रमा और तारों भरी रात में, दरख्त की एक शाख पर फूलों का हिंडोला डाले हुए एक नग्न सुन्दरी झूल रही है। एक तस्वीर, 'नूरजहां की सुहागरात' बनी थी। जहांगीर के रंगमहल के दरवाजे की चौखट पर एक पैर रक्खे, लाज की मूर्ति नूरजहां, बारीक घूंघट में अपने मुखड़े पर बरसते हुए नूर को झांप लेने की कोशिश में ठिठकी हुई खड़ी है; और शाहंशाह जहांगीर आग्रह-पूर्वक उसका स्वागत करने के लिए आगे बढ़ रहा है। एक दूसरी तस्वीर, 'विश्वामित्र मेनका'--तूफ़ानी रात में राजर्षि की कुटिया में आश्रय पाकर छद्मरूपा मेनका बेसुध होकर सो रही है। राजर्षि विश्वामित्र उसे गर्म वस्त्र उढ़ाने के लिए आये हैं; आंधियों से अस्त-व्यस्त वसन में धूपछांव सी झलकती हुई अपराजिता नारी ने महा-तपस्वी के नेत्रों को बांध लिया है। 'स्वर्ग यही है'--इस चित्र में अनेकों अर्द्ध-नग्न और प्रायः नग्न रूपसियों से घिरा हुआ शाहजादा बैठा है। नृत्य हो रहा है, दासी शराब का पात्र लिए खड़ी है; दो दासियां पंखा झल रही हैं, और शाह-जादे को बाहों में जकड़ी हुई दो मदमाती रमणियां उसे रिझा रही हैं। इनके

अलावा उमरखैयाम और साकी, गोपी चीरहरण, मुगल हरम का स्नानगृह, वसन्त, नारी का निमंत्रण--संयोग शृंगार के मांसल चित्रों से मन की वासनायें स्थूल होने लगीं। उनका वेग और भार हृदय में व्यग्रता उत्पन्न करने लगा।

पांचू, मिस्टर दास, मोनाई सब यकायक शीशमहल के जगमगा उठने पर चौंक कर देखने लगे। सबको चकित करनेवाले अपने वैभव को दयाल ज़मींदार ने भी चारों ओर नज़र घुमाकर देखा, और उनका चेहरा खुशी और दर्प से चमक उठा।

नज़रें बंध गईं; ख़याल बंध गये--नग्न सुन्दरियों से सेवित अलिफ़लैला के शाहज़ादे की भांति पांचू इस समय शीशमहल के विलासितापूर्ण वातावरण से घिरा हुआ था। उत्तेजना मन को अस्थिर करने लगी। अशान्त होकर उसने सोचा--"ये ऐश्वर्य दरअसल हमारे जीवन में है कहां? यह स्वप्न हम साधारण जनों के जीवन में साकार ही कब हो सकता है? विलासिता का यह आडम्बर पैसे का कोढ़ है, इन्सान के दिमाग़ की विकृति का भद्दा प्रदर्शन है।"

दयाल बाबू अपने ऐश्वर्य-चमत्कार को दिखाकर अब पारा चढ़ाने लगे। मोनाई का इंसाफ़ करने के लिए बढ़े। ज़बान के तीरों से उसका रोम-रोम बींध डाला। फिर नौकर को बुलाकर छत पर 'सामान' लगाने का हुक्म दिया।

पांचू के मनोभाव दयाल ज़मींदार के विरुद्ध जा रहे थे।

मिस्टर दास दयाल के शीशमहल के जादू से बंधे हुए, मुंह और आंखें फाड़-फाड़ कर तस्वीरें देख रहे थे।

मोनाई ज़मींदार के पैर पकड़ कर गिड़गिड़ा रहा था। अपना अपराध स्वीकार कर वह दयाल ज़मींदार से दंड की भीख मांग रहा था। वह जानता था कि दयाल ज़मींदार लम्बी रिश्वत लिए बिना हरगिज़ न मानेंगे। इसलिए खुद अपनी तरफ़ से ही बात निकाल कर उसने दयाल को बतलाया कि शास्त्र के अनुसार बिना 'डंड परासचित' किये उसकी गति नहीं; और वह हर तरह से सेवा में हाज़िर है।

पांच सौ से बढ़ते-बढ़ते हजार बोरों पर 'डंड' पूरा हुआ। बीच-बीच में मोनाई ने दस हजार बार मालिक के चरणों की सौगंध खाकर भगवान और ईमान की दुहाई पीटी। सेक्रेटरी साहब को नजराने में दो सौ बोरे देना तय हुआ। मोनाई सब कुछ खुशी और उत्साह के साथ स्वीकार करता चला गया। वह सोचता था कि सब कुछ लुट जाने से तो भागते भूत की लंगोटी ही भली है। अपनी चापलूसी और खुशामद से उसने जमींदार और यूनियन बोर्ड के सेक्रेटरी को खुश कर लिया।

पांचू अकेला पड़ गया था। उसका कहीं भी जिक्र न था। उसकी तरफ़ किसी का भी ध्यान न था। यूनियन बोर्ड का यह कुरूप, अर्द्धशिक्षित और घमंडी सेक्रेटरी भी उससे बड़ा है--पांचू इस तरह से सोचता था और यह उसे खल रहा था। यह हार ब्राह्मण कुलोद्भव विद्वान् पांचू मुखर्जी के हृदय को करुणार्द्र कर रही थी।

मोनाई अपनी बात पर कलई चढ़ाते हुये, सेक्रेटरी साहब के सामने अपने अन्नदाता दयाल की तारीफों के पुल बांध रहा था। ऐसा वैभव सारे बंगाल में किसी जमींदार का नहीं है। मालिक के सामने खास अंगरेज कलिट्टर तक किस तरह अपना टोप उतार कर गोटमैनी करता है; शहर के बड़े-बड़े हाकिम-हुक्काम और रईस लोग मोहनपुर के महाराज का अतुल ऐश्वर्य देख कर किस तरह चकित होते हैं; किस तरह राजा इंद्र की अप्सरायें मोहनपुर के महाराज के इस शीशमहल में नाचने आती हैं--वगैरह लन्तरानियां चवन्नी भर सच में बारह आने झूठ मोनाई झाड़ता चला गया।

दयाल बहुत सन्तुष्ट होकर पूर्ण गम्भीरता के साथ सुन रहे थे। मिस्टर दास मोनाई के मुंह की तरफ देख रहे थे। लहर में आकर उन्होंने मोनाई से गांव के 'नमक' का हाल पूछा।

मोनाई पहले तो सकुचाया, फिर बनावटी मुस्कुराहट के साथ बोला--"सरकार, राजा के घर में भला मोतियों का काल होता है। मालिक का इसारा हुई जाय तो आज ही भिजवाय दूं।"

मालिक ने इशारा कर दिया ।

मौका साध कर मोनाई ने अब अपना तीर छोड़ा; कहने लगा--"सारा रुजगार बैपार चौपट हो गया है । जो कहीं गांव में यूनन बोट खुल गया तो मेरे मिट्टी मोल बिकने की नौबत आय जायगो, अन्नदाता ।" इसके बाद उसने अर्ज किया कि गांव में उसके चावलों का सदाबर्त बँटना बन्द हो जाय । वह यूनियन बोर्ड का सारा चावल खरीदने को तैयार है । सरकार दस रुपये के भाव से बेचेगी, वह बारह रुपये पर खरीदने को तैयार है ।

दयाल और दास की नजरें मिलीं । दयाल को उज्र न था । दास पन्द्रह के भाव पर बेचने को राजी हुये । मोनाई ने जाहिर किया कि वह लुट चुका है । वरना पन्द्रह भी खुशी-खुशी दे देता । दास पन्द्रह से नीचे न हुये । मोनाई ने उस समय विशेष आग्रह न किया । दोनों सरकारों की सलामतियां और जैजैकारियां मनाते हुये, रात में अजीमा के साथ 'दो' भिजवाने का वायदा करके वह चला गया ।

मोनाई के जाने के बाद बातों का दौर बदला; यार लोग फिर रंगीनी में बहने लगे । शीशमहल की विलासिता दिलों पर छाने लगी ।

हॉल के बायीं ओर बाहर पड़ती छत थी । नकली संगमर्मर और संगमूसा का फर्श था, जिस पर अभी ही पानी छिड़का गया था । किनारे-किनारे फूलों के गमले रक्खे हुये थे । मुंडेरों पर सफेद पत्थर की कूंडियों में फूल खिल रहे थे । छत पर चार छोटी आराम कुर्सियां रक्खी हुई थीं, शराब का इंतजाम था ।

जेठ की धुली चांदनी थी । दूर तक दिखाई पड़ने वाले खेतों के ऊपर पांचू एक अजीब किस्म की मनहूसियत महसूस कर रहा था । छत पर आने के बाद उसका मन और भी गिर गया ।

शराब उसने जिंदगी में कभी चखी न थी । मगर दयाल के सामने वह अपने को पक्का शराबी सिद्ध कर चुका था । लाख हीले-हवाले किये, मगर पकड़े जाने पर चोर के लिये सजा से छुटकारा पाने की कोई सम्भावना ही नहीं रह जाती । कड़ुवे घूंट को पी जाने के बाद नशे की उत्तेजना पांचू के अनुभवों

में शामिल हुई। हारकर उसने अपने बारे में अच्छा-बुरा, कुछ भी सोचना बन्द कर दिया। थके हुये मनुष्य की तरह निश्चेष्ट होकर नशे की चढ़ती हुई तरंगों में वह बहने लगा।

विलायती रोमांसों की बातें फिर शुरू हुईं। दयाल ने पांचू को किस्से सुनाने के लिये कहा। इच्छा और अनिच्छा की विपरीत धाराओं में फँस कर अनिश्चित गति से बहता हुआ पांचू बातचीत में भाग लेने लगा। उसकी इच्छा वहां से उठ कर भाग जाने की होती थी; मगर वह ऐसा कर न सका। वह अपने स्वाभाव की असलियत से दूर जा रहा था।

शराब के साथ कुछ मुंह चलाने के लिये भी सामान आया। खाने की चीजें देख कर पांचू की आंखों में चमक आगई। पांचू का हाथ बढ़ा, लेकिन तुरन्त ही उसके दिमाग में सारे परिवार की भूख सिमट आई। उसका हाथ रुक गया। मानसिक उलझन दूनी हो गई। एकाएक वह कुर्सी छोड़ कर उठ खड़ा हुआ। दास और दयाल के पूछने पर जवाब दिया—"यों ही, टहलने को जी चाहता है।"

"अरे बैठो भी। यह भी कोई टहलने का वक्त है?" दयाल जमींदार ने पांचू का हाथ पकड़ कर बैठा दिया।

मशीन के पुर्जे की तरह पांचू बैठ गया। कुछ क्षणों के लिये उसका मन उलझा। मगर भूख परेशान कर रही थी। भूखे परिवार के ख़याल को जमींदार की दोस्ती की आड़ में छिपा कर उसका हाथ मेज की तरफ बढ़ा। पांचू खाने लगा। हर निवाला खाकर वह अपने दिल की आवाज को दबा रहा था। गुनाह को भूलने के लिये वह गुनाह करके अपने साथ न्याय कर रहा था। उसने पढ़-सुन रक्खा था कि ग़म गलत करने के लिये शराब नायाब चीज है। पांचू इसके लिये भी कोशिश कर रहा था।

"दास बहुत जोर-जोर से बोलता है—बड़ी शेखी बघारता है"—दयाल जमींदार पर उसका असर कम करने की ग़रज से पांचू ने बातों को नया रुख दिया। अंग्रेजी सरकार के जुल्म—बयालिस के विद्रोह से लेकर अकाल तक—वह जोश

के साथ सुनाता चला गया। सरकारी नौकरों को खास तौर पर लपेट में लिया; स्वार्थी, डाकू, रिश्वतखोर, राक्षस, देशद्रोही—जो कुछ भी नशे की धुन में जबान पर आया, कहता चला गया।

अंग्रेज सरकार और उसके नौकरों को गालियां सुनाने में दयाल जमींदार भी पीछे न रहे। यूनियन बोर्ड के सेक्रेटरी मिस्टर दास भी देश-प्रेम के नशे में बहने लगे। फिर उन्हें अपने ऊपर दया उमड़ी—"हम भी क्या करें? जब चारों तरफ लूट देखते हैं तो हमारी तबीयत भी ललचा उठती है। रिश्वत में साझा बंटाने की गरज से हमसे बड़े अफसरान हमें दबाते हैं। उनके लिये भी हमें लूट खसोट करनी पड़ती है। आजकल दिल्ली से माल आरहा है। ये व्यापारी लोग थैलियां ले-लेकर हमारे पास आते हैं। फिर बताइये हम क्या करें? हम कोई ऋषि-मुनी तो हैं नहीं मास्टर बाबू। ये तो जब तक सोशलिज्म नहीं आयगा, देश की यही दशा रहेगी।"

"आने दो शोशलिज्म को!" पीकर दयाल जमींदार मेज पर खाली गिलास रखते हुये दहाड़े—"शोशलिजम वान्टेड! लाओ शोशलिजम।"

नौकर आगया, समझा सरकार कुछ मांग रहे हैं।

दयाल जमींदार अपनी ही धुन में कहते गये—"मास्टर, तुम हमारी पर—प—परशंशा में अच्छा-अच्छा लेख लिखो। तस्वीरें छपाओ हमारी। सब अकबारों में। समजा? एं? क्या हम इस काबिल नहीं हैं? हैं न! देखो, हामसे बड़ा जमींदार कौन? कोई नईं। हम—हम अपनी प्रजा को चावल बंटवाया, दवा बंटवाया—और, और अब शोशलिज्म बंटवाऊंगा। जुरूर बंटवाऊंगा।"

दास और पांचू दयाल के नशे को देखने लगे। बात सोशलिज्म से फिर शराब पर आई, औरतों पर आई, जवानी पर आई और देखते-देखते ही जवानों पर पलंग बिछने लगे। शराब की तेजी ने वातावरण में गर्मी पैदा कर दी।

दयाल बोले--"माऽऽस्टर, चाऽर चाऽर अ-अ-औरतें--समझे? दो बोतल व्हिसकी पोके--बट--नेऽव्हर नेव्हर-डाउन। क्या समजे? आं।।।!"

फिर गिलास को टेबल पर रखते हुये वृन्दावन को आवाज़ दी। यह दयाल का पांचवां पॅग था; मिस्टर दास छठा ख़त्म कर रहे थे, और पांच ने अभी तक पहले गुनाह से ही छुटकारा नहीं पाया था। दयाल जमींदार ने मिस्टर दास के गिलास पर नज़र डाली; तीन-चौथाई ख़ाली हुआ था। दयाल बोले--"अबे पी जा। पी जा। देखूं आज कितनी पीता है तू।"

सिगरेट का आख़िरी कश खींच, उसे फेंक कर धीरे-धीरे धुंआं छोड़ते हुये मुस्करा कर मिस्टर दास ने कहा--"डोन्ट वरी सनी, मैं टू बाटल्स तक नार्मल रहता हूँ।"

दयाल जमींदार हँसे, फिर हँसते हुये बोले--"अबे हां हांऽऽ, पराये धन पर सब गुलछर्रे उड़ाते हैं। पिये जा, पिये जा जी खोल के। मेरा दिल भी तेरी ब्रिटिश गवरमैन्ट से कम नहीं है। वृन्दावन! भरे जा साले का गिलास। साले को हिज़ मास्टर्स वाऽऽ--नई--हिज़ मास्टर्स कंट्रीज वाइन--प्योर व्हिसकी--पिला कर इसकी सरकार को गालियां सुनाऊंगा।"

दयाल बड़ी ज़ोर से ठहाका मार कर हँस पड़े। फिर उमड़े--"पियो बेट्टा! वृन्दावन, शाहब का मूं में बोतल का मूं लागा देओ। पियो शालाऽ।"

दयाल जमींदार ख़ुद उठ आये, वृन्दावन के हाथ से बोतल झटक कर मिस्टर दास की तरफ़ बढ़े--"शाला, तुझको खूब पिलाऊँगा। नई-नऽई! शाला बोलता, दो बाटल पी जाता। हामको धमकी देता! एं:? पांशशो रुपट्टी का नोकर शाला--दुश्मन का कुत्ता! शाला शमजता, दयाल बिश्शास दो बोतल व्हिसकी नई पिला शकता। हारामजादा, हाम तुमको दस बोतल पिलायेगा। शाला, जाके बोलना अपनो गवरमेंट को कि इंडियन जमींदार का दिल क्या है?"

दयाल जमींदार एक हाथ से मिस्टर दास का कंधा पकड़ कर उन्हें कुर्सी से दबाते हुये उनके मुंह में बोतल ठूंसने की कोशिश करते हुये ललकारने लगे।

मिस्टर दास आफ़त में फंस गये थे। अपने दोनों हाथों से दयाल को दूर हटाने की कोशिश कर रहे थे। बीच बीच में दो-दो, चार-चार शब्द फूट जाया करते थे—"ये क्या मिस्टर विश्वास? देखिये, देखिये। सच्ची की मजाक अच्छी नहीं होती। आप बहुत पी गये। आप मेरी बेइज्ज़ती कर रहे हैं। मैं बहुत ग़म खा रहा हूं, वरना......."

दुबले-पतले मिस्टर दास कुर्सी पर ही बैठे-बैठे हाथ पैर पटक रहे थे। ग़ुस्से के मारे गले में आवाज़ अटकती थी। ग़ुलामी की ज़मीन पर पनपने वाली अफ़सरी की बू लाजवन्ती के पौधे की तरह मुरझा गई थी।

नशे में उभरने वाली दयाल की उद्दण्डता पांचू पर भी असर कर रही थी। वह बेहद घबरा गया था। वह सोचता था—"अगर मेरे साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया तो...मैं घूंसा मारूंगा। ऐसी ज़ोर से मारूँगा कि याद करेगा।...नहीं, ज़रूर मारूँगा फिर चाहे कुछ भी हो जाय। ये दास साला बोदा है। बैठा बैठा में-में कर रहा है, यह नहीं होता कि धक्का दे। मरने दो कायर को। लेकिन यह ठीक नहीं। इसके बाद दयाल मेरे ऊपर टूट पड़ेगा। नशे में आदमी का क्या भरोसा? इसे रोकना चाहिये।"

दो तीन बार पांचू ने अपने विचार की पुष्टि की और फिर हठात् उठ कर दयाल को मिस्टर दास से अलग किया—"ये क्या कर रहे हैं दयाल बाबू?"

दयाल ने एक बार घूम कर ग़ौर से पांचू को देखा। पांचू घबराया। दयाल बोले—"पिला रहा हूँ। तुम भी पियो। ख़ूब पियो। इसको, साले गवरमैण्ट के नौकर को भी पिलाओ। पी साले।"

पांचू बेहद घबरा उठा था; और साथ ही उसे क्रोध भी आ रहा था। दयाल को घसीट कर अलग करते हुए वह बोला—"मगर आप कर क्या रहे हैं? अपने मेहमान के साथ ऐसा बर्ताव किया जाता है!"

मिस्टर दास को सहारा मिला। दिल का दर्द उभड़ आया—"देख लीजिये, देख लीजिये मिस्टर मुखर्जी! ये कितना अत्याचार कर रहे हैं मुझ

पर? ऐसे ही अत्याचारी जमींदारों के कारण ही तो हमारा देश ग़ुलाम बना है और ऊपर से ग़ुलाम कहता है--ग़ुलाम--मुझको!"

मिस्टर दास फूट-फूट कर रोने लगे, रोते रोते कहा--"मैं आत्महत्या कर लूंगा। ये ग़ुलामी का जीवन मुझे भार है।"

पांचू बुरी तरह से घिर गया था। दो-दो शराबी, दोनों ही अपने-अपने रंग में गाढ़े होते चले जाते हैं--कैसे इनसे छुटकारा मिलेगा? कहीं कुछ हो गया तो?

पांचू अस्थिर हो उठा।

वृन्दावन मूर्ति की तरह चुपचाप खड़ा था। उसका सिर झुका हुआ था। अदब से हाथ बांधे खड़ा था। उसे मालिक और उनके दोस्तों की किसी जा-बेजा हरकत को देखने का अधिकार नहीं; उससे यह उम्मीद की जाती है कि ऐसे-ऐसे मौक़ों पर वह मालिक और उनके दोस्तों की किसी भी अच्छी या बुरी बात को नहीं सुन रहा। वह शून्य रहा। वह शून्य है, नौकर, और कुछ भी नहीं।

पांचू ने घबरा कर वृन्दावन की तरफ़ देखा। उसकी झुकी गर्दन और निर्विकार मुद्रा देख कर वह झुंझला उठा, कहा--"देखते क्यों नहीं साहब को। सम्हालो उन्हें।"

दयाल जमींदार अब तक अपनी कुर्सी पर बैठ चुके थे। दास के रोने और पांचू के डांटने से उनका पारा एक डिगरी नीचे उतर चुका था। पांचू को घबराया हुआ देख कर बोले--"कुछ फिकर मत करो मास्टर। ज़रा चढ़ गई है दास बाबू को।"

मिस्टर दास गर्म होकर बोले--"मुझे नहीं, आपको चढ़ गई है मिस्टर बिस्वास। आपने एटीकेट का--आपको इस तरह से मेरा अपमान....."

दास का गला फिर भर आया। आंसू उमड़ पड़े।

दयाल सम्हले। उन्हें ख़याल हो आया कि वे आनन्द मनाने बैठे हैं। दास को समझने लगे; दार्शनिक मूड में आकर कहने लगे—"चार दिन की ज़िंदगी में किसी से लड़ना झगड़ना नहीं चाहिये। खाओ पियो मौज करो—यही जीवन की बहार है। कल तुम कहां होगे, और हम कहां होंगे। आओ पियें।"

फिर से महफ़िल आबाद हो गई। दास और दयाल, दोनों ही, नशे में एक दूसरे के बहक जाने पर हँसने लगे। एक दूसरे से बेहद घुल मिल गये। वृन्दावन को ख़ाली गिलास भरने का हुक्म हुआ। हुक्म की चाभी पर चलने वाला पुतला वृन्दाबन अपना काम करने लगा।

पांचू को डर लगा कि दयाल इस बार कहीं बोतल लेकर उसके सिर पर न धमक जाय। उसका पहला गिलास भी अभी तक आधे से ज्यादह ख़ाली नहीं हुआ था। ज़िंदगी में पहली मर्तबा उसने शराबियों को इतने निकट से देखा था! वह मन ही मन घबरा रहा था।

वृन्दाबन दयाल के गिलास में ढाल चुकने के बाद अब दास के गिलास को हाथ में उठा चुका था। इससे पहले कि वह पांचू की तरफ़ बढ़े, पांचू ने अपना आधा भरा हुआ गिलास हाथ में उठा लिया, और गिलास की तरफ़ देखते हुये कहने लगा—"काश कि आदमी का ख़ून भी इस शराब की तरह सुनहला होता, तब उसकी भी क़ीमत कम से कम उतनी तो लगती ही जितनी कि शराब की है।"

दयाल और दास पर इसका प्रभाव पड़ा। दोनों पांचू की ओर देखने लगे। अपने विद्वान् होने के यश का लाभ उठाते हुए, भड़कीले वाक्यों की आड़ में पांचू कतरा कर निकल रहा था—"इस गिलास में जितनी क़ीमत का पानी भरा है, उससे दस आदमियों का पेट भर सकता है। मरभुखों की मौत ही इस गिलास के सुनहरे पानी में नशा बन कर हम लोगों को ख़ुश कर रही है। आइये, हम हज़ारों की मौत का एक जाम पियें।"

कह कर झटके के साथ पांचू गिलास को होठों तक लाया। शराब ने होठों को छुआ। पांचू ने गिलास रख दिया।

नाटक सफल होगया। दयाल और दास दोनों ही, पांचू के वाक्य चमत्कार से पूरी तरह प्रभावित हो गये। वृन्दावन इससे बेअसर, अपना काम करता रहा--गिलासों में सोडा डालने के बाद हाथ बांध कर, सिर झुका कर खड़ा रहा। पांचू के कहने के साथ ही दयाल और दास ने भी अपने गिलासों को उठा कर हजारों की मौत के जाम पिये।

"हजारों की मौत का जाम," इस वाक्य ने दयाल और दास के भावुक हृदयों को कविता की तरह स्पर्श किया था। शराब से भरे गिलासों के सामने मरभुखों की बात पहले उन्हें झटका देने वाली सिद्ध हुई थी। उन्हें शराब में गुनाह दिखाई देने लगा था, जो वह न देखना चाहते थे। लेकिन जैसे ही पांचू ने नाटकीय ढंग से मरभुखों की मौत पर एक जाम पीने को कहा, उनके दिलों की बांछें खिल गई। यह वे कर सकते थे। कठोर सत्य शोक का घूंट बन कर हलक़ के नीचे उतर गया। सहानुभूति नशा बन कर दिमाग़ पर सवार होगई।

दास बताने लगे कि जहां-जहां वह गये, उन्होंने किस तरह हजारों नंगे-भूखों की महादुर्दशा को अपनी 'इन्हीं' आंखों से देखा। किस तरह उनके दिल में अपने देश की ग़ुलामी के लिये दर्द उमड़ा, अन्न से भरे हुये सरकारी गोदामों को देख कर किस तरह उनकी इच्छा होती थी कि वह उन गोदामों को खुलवा कर ग़रीबों को बंटवा दें--"हाय हमारा प्यारा भारतवर्ष! हमारा बंग देश! क्या दुर्दशा होगई हमारी! जिस पवित्र भूमि पर दूध-घी की नदियां बहा करती थीं, वहीं अब अन्न के एक एक दाने के लिये लोग मोहताज हैं?"

मिस्टर दास ने देश के दुःख से अति द्रवित होकर फिर शराब का एक घूंट पिया।

दयाल जमींदार ने ठंडी सांस छोड़ी। कहने लगे--"मास्टर, सच कहता हूं, बार-बार मेरी इच्छा होती है कि अपना सब कुछ इन ग़रीबों को बांट दूं। हाय हाय, कितना कष्ट है इन बेचारों को।"

कुछ देर के लिये सब मौन होगये। दयाल और दास की बातों से पांचू ने उनमें मानवता की एक झलक देखी। वह सोचने लगा--"इंसानियत ऐसे

लोगों के दिलों में भी अपनी जगह रखती है। लेकिन, फिर भी ये लोग इतने कठोर क्यों कर हो जाते हैं? इन्हें अपना पाप दिखलाई क्यों नहीं पड़ता? क्यों स्वार्थी हो जाते हैं?"

यह सोचते हुये ख़ुद को झटका लगा; उसने भी तो पाप किया है। घर भर भूखा है और वह यहां बैठा हुआ रंगरलियां मना रहा है, खा रहा है, पी रहा है।

अपने से बचने के लिये पांचू को कहीं भी ठिकाना न था। अपनी ही नज़रों में वह ख़ुद इतना गिर गया था कि दूसरों के गुनाहों की तरफ़ आंख उठा कर देखने की भी हिम्मत नहीं होती थी। शराब के लिये नफ़रत थी, गुनाह के लिये नफ़रत थी; और गुनाह के ख़याल से बचने के लिये दिल में अजहद बेचैनी भी थी। जब कोई बचाव न सूझा तो ईश्वर की शरण में पहुंचा--"मैं क्या करूं? ईश्वर ने ही मुझे इस क़दर कमज़ोर बनाया है। और फिर अगर मैंने गुनाह किया तो वह मेरा गुनाह नहीं।"

इस ख़याल से भी पांचू को चैन न मिला। छटपटाहट ज़्यादह महसूस की। झटके के साथ बुद्धि से संबंध टूट गया। तेज़ी से हाथ बढ़ा कर उसने गिलास उठाया और आंखें मींच कर एक घूंट निगल गया। जल्दबाज़ी की वजह से एक घूंट में ज़्यादा पी गया, गले में फंदा पड़ा, खांसी पैदा हुई, आंखों में जलन और सिर की नसों में ज़्यादा उत्तेजना हुई।

दम तोड़ कर पांचू ने अपना सिर कुर्सी से टिका दिया। उसे ज़रा भी चैन न था।

घड़ी के घण्टे बजने लगे। नशे में, झटके के साथ सिर उठा कर पांचू ने देखा। घड़ी कमरे के अंदर थी, सामने से दिखाई भी नहीं देती थी। कान लग गये--एक, दो, तीन, चार... सात, आठ, नौ... घण्टे बजने बंद हो गये।

नशे में पांचू चौंका। फिर ख़याल जमा--"नौ बजे हैं। बड़ी रात हो गई। अब उठना चाहिये। मगर मन मुंह चुराता था--"कैसे जाऊं?"

मिस्टर दास अपने ढंग से केदारा गा रहे थे, और दयाल जमींदार जी खोल कर दाद दे रहे थे।

"बेवकूफ़ कहीं के।" पांचू ने मन ही मन कहा और आसमान की ओर देखने लगा।

जेठ की फीकी चांदनी थी। धूल भरे आकाश में तारे पांचू को बड़े फीके लग रहे थे। "आधा चंद्रमा अच्छा नहीं लगता, खूबसूरती मारी जाती है। चंद्रमा या तो पतला, नोकीला अच्छा लगता है, या फिर, पूनो की रात का। ये तो बड़ा भद्दा लगता है--एकदम मनहूस। कितनी निष्प्राण चांदनी है। कितनी मनहूसियत फैली हुई है चारों तरफ! दम घुटता है!" ख्यालों के साथ ही उसका मन भी उखड़ गया।

"मैं अब चलूंगा दयाल बाबू। बड़ी देर हो गई है।" कह कर वह उठ खड़ा हुआ।

मिस्टर दास और दयाल बाबू में बहस छिड़ गई थी। मिस्टर दास अपने गीत को केदारा राग में गाया हुआ मानते थे, और दयाल जमींदार उसे बागेसरी समझ कर सराह रहे थे। मिस्टर दास ने एतराज़ उठाया। बहस छिड़ गई। केदारा के उदाहरण देने के नेक इरादे से दयाल बाबू गाते-गाते, अपने गले के मुताबिक भीमपलास की ओर मुड़ गये। दास ने उसके मालकोस होने का फ़तवा दे दिया। दयाल बिगड़ पड़े....

केदारा, भीमपलास, और मालकोस के इस झगड़े के बीच में ही पांचू उठ खड़ा हुआ था--'मैं चलूंगा अब....."

दयाल और दास, दोनों ने ही चौंक कर पांचू की तरफ देखा। दयाल के कुछ कहने से पहले ही एक नौकर आ गया। अदब के साथ उसने बतलाया कि मोनाई ने दो औरतें भिजवाई हैं।

दास का चेहरा दमक उठा। बेताब होकर वह दयाल ज़मींदार और उस नौकर की ओर देखने लगा।

दयाल ने हुक्म दिया--"भेज दो।"

औरतों के साथ अजीम दरवाजे के पीछे ही खड़ा हुआ था। फ़ौरन ही आगे बढ़ कर सलाम किया। लाज से सिकुड़ती हुई, घूंघट से मुंह ढांके दोनों स्त्रियों ने भी हाथ जोड़ कर प्रणाम किया।

पांचू ने देखा, दोनों औरतें धुली हुई उजली धोतियां पहन कर आई हैं। अरसे से गांव में औरत-मर्द, किसी के तन पर उजला कपड़ा नहीं दिखाई देता था। ये उजली नई धोतियां पांचू की आंखों के लिये नुमाइशी चीज हो गई थीं।

दोनों नौकर और अजीमा बाहर चले गये।

दयाल जमींदार गर्माये--"हटा घूंघट। हाथी की सूंड़ें निकाल रक्खी हैं।

औरतों के हाथ कांप कर अपना घूंघट हटाने लगे। पांचू ने कौतूहल से देखा--बढ़ई मुनीर की विधवा और...और कालीराय की पत्नी।

कालीराय उसका बचपन का घनिष्ठ मित्र था। तीन महीने हुये, वह गांव से भाग गया था। पांचू कालीराय की पत्नी को ख़ूब जानता है। उसे बौ-दीदी कहता है। कालीराय के पिता यहीं हैं।

"बौ-दी यहां?" पांचू की आंखों के आगे सितारे घूम गये।

दयाल जमींदार ने उठकर दोनों के सिर का कपड़ा खींच कर नीचे गिरा दिया।

पांचू ने अपना सिर झुका लिया था।

दयाल जमींदार दोनों को देख कर खुश हुये--"मोनाई ने अच्छा काम किया है।" मुनीर की बेवा की ठोड़ी उठाकर उसके गाल की चुटकी लेते हुये बोले--"किसकी औरत है तू?"

सवाल के साथ ही पांचू की नजरें उठ गई। कालीराय की पत्नी की आंखें भी सकपका कर उठीं। उसकी आंखें अचानक पांचू की उठती हुई आंखों से

मिल गईं। उसे काठ मार गया। चेहरा जर्द पड़ गया, और वह आंखें उलटा कर गिर पड़ी।

पांचू तेज़ी से कमरा छोड़ कर बाहर चला आया। उसके लिये जीवन असह्य हो उठा था। बौ'दी से बौ'दी तक--घर तक --तुलसी, मंगला..

उसे होश नहीं था कि वह कहां चल रहा है, किधर जा रहा है। आंखों में आंसू छलछलाये हुये, तमतमाया हुआ चेहरा, और पैरों के साथ आंधियां बह रही थीं। शीश महल पार किया, झरने के पास से ग़ुजर कर दरवाज़े के बाहर आया, और ज्ञान-शून्य-सा नोचे उतरने लगा। तेज़ी के साथ लड़खड़ाते हुये पैरों की खटाखट आवाज़ सीढ़ियों पर सुनाई देती थी।

वृन्दाबन पांचू की यह दशा देख कर समझा कि, बहुत पी गये हैं। उसे गिरने से बचाने के लिए वह झपट कर आया। उसने दोनों हाथों से पांचू को थाम लिया। पांचू निश्चेष्ट सा उसके ऊपर ढुलक पड़ा। उसकी आंखें बंद हो गईं। वृन्दाबन ने सम्हाला--"छोटे ठाकुर! छोटे ठाकुर!"

पांचू ने आंखें खोलीं, वृन्दावन को देखा। वृन्दावन बोला--"घर पहुंचा आऊँ छोटे ठाकुर?"

पांचू की शर्म पर करारा तमाचा पड़ा। वह बड़ी तेज़ी के साथ सम्हला, सीधा खड़ा हो गया और सिर झुका कर बोला--"नहीं, वृन्दावन, मैं ठीक हूँ।"

वृन्दाबन के सामने भी पांचू की निगाहें झुकीं। पांचू के अन्तर में लज्जा-जनित पीड़ा अब पहाड़ बन गई थी। अपनी अति गहन हीन भावना पर वह कठोर अनुशासन कर रहा था। वह पत्थर बन रहा था।

वृन्दावन ने पांचू के पैर छुये और हाथ जोड़ कर बोला--"छोटे ठाकुर! बगलों की पंचायत में हंस का कौन काम? अब तक तो नहीं, मुल आज आप को हियां देख के समुझ पड़ा कि कलजुग आय गया। जब पहाड़ डोल गये, तब धरती कैसे बचेगी?--जैसी लीला भगवान की!' कहते हुये वृन्दावन ने एक निसांस छोड़ी और हाथ हिलाकर, सिर लटकाये हुये एक सीढ़ी ऊपर चढ़ गया।

पांचू ने अपना सिर उठाया और तान लिया। वृन्दावन की तरफ़ देख कर बोला—"तुम मुझसे बड़े हो वृन्दावन। मुझे क्षमा कर दो।"

वृन्दावन ने घूम कर पांचू को देखा। वह तेजी के साथ नीचे उतर रहा था।

"सारा संसार मुझसे बड़ा है। हर शख्स मुझसे बड़ा है। दुनिया की हर चीज मुझसे बड़ी है। मुझे किसी को भी छोटा समझने का अधिकार नहीं—कोई नीच नहीं; कोई बुरा नहीं। सारी बुराइयां मुझी में हैं। मैं सब से बुरा हूं। मैं ही बुरा हूं।"

राह न पाकर तैस आंखों से बरस पड़ा। दोनों गालों पर धीरे-धीरे आंसू बह रहे थे और पांचू सिर झुकाये हुये, दयाल जमींदार की हवेली के बाहर, गांव में जा रहा था।

हठ के साथ पांचू अपने अहं को छुरियां भोंक रहा था। हुक्म की चाभी पर चलने वाला बेजान पुतला, ग़ुलामों का ग़ुलाम, वृन्दावन, इस समय उसकी नजरों में बहुत ऊंचा उठ गया था—गुरु सा महान लग रहा था।

अकाल पड़ने से पहले पांचू की महत्वाकांक्षायें संयत भाव धारण किये हुये थीं। बिना किसी प्रकार के मानसिक द्वन्द के उसका जीवन सधा हुआ और सीधा बढ़ रहा था। अकाल में उसने अपनी आर्थिक परवशता, और उससे उत्पन्न जीवन की कठिनाइयों का अनुभव किया। कुलीनता, आबरू, उच्चशिक्षा और स्वाभिमान के सहारे वह अपनी आर्थिक हीनता से लोहा लेकर अपने को ऊंचा उठाये रखने का प्रयत्न करता था; और यहीं असफल होकर वह अस्थिर हो उठा था। और एक बार आत्मविश्वास खो बैठने के बाद उसे अपने मन की थाह न मिली। वह सदैव अंतर्द्वन्द की गहराइयों में डूबना-उतराता रहा। समाज में अपने स्थान के लिये वह आवश्यकता से अधिक व्यग्र रहने लगा। व्यग्रता ने बुद्धि का संयम खोया; और बड़प्पन की चाह ने ही उसे दयाल जमींदार का मुसाहब बना कर, आज, अपनी ही नजरों में बेहद गिरा दिया। मन की इसी गिरी हुई हालत में पांचू ने ख़ुद को दुनिया का कमतरीन इंसान

स्वीकार किया; इस अप्रिय बात को स्वीकार करने के कारण उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बह चली।

आंसुओं से ग़ुबार निकल जाने के बाद, धीरे-धीरे बुद्धि संयत हुई। वह सोचने लगा—"लेकिन बड़प्पन की चाह किसमें नहीं होती?"

सवाल ख़ुद ही जवाब भी बन गया—"तब फिर किसी के बड़प्पन को दबा कर उस पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का अधिकार भी किसी को नहीं। हर मनुष्य स्वभाव से ही बड़ा है। इसलिये हर मनुष्य समान है, एक सा है—एक है।"

—"फिर यह छोटे बड़े का भेदभाव जो हर तरफ़ दुनिया में दिखाई देता है?"

—"यह उसी बुराई का परिणाम है, जिसने मुझे गिराया है।"

पांचू ने अपने पतन में संसार के पतन का कारण देखा—"ख़ुदी के लिये सारी दुनिया तबाह हुई जा रही है।" पांचू ने सोचना शुरू किया—"लेकिन यह ख़ुदी है क्या? और क्यों है? अपने अस्तित्व की चेतना को मनुष्य सर्वव्यापी और सामूहिक रूप में क्यों नहीं देखता? मैं अपने को सारी दुनिया से अलग रख कर क्यों देखता हूँ? दुनिया से अलग रह कर मैं अपनी असलियत का अनुभव ही क्योंकर कर सकता हूँ? सम्मिलित रूप से, समाज की प्रत्येक क्रिया प्रतिक्रिया का प्रभाव मुझ पर पड़ता है और मुझे चैतन्य बनाता है। मैं अपने हर अच्छे और बुरे काम का निर्णय समाज के तराज़ू पर ही करता हूं। मैं ही नहीं, हर एक आदमी यही करता है। अपने हर काम में मनुष्य को दुनिया के रुख़ बेरुख़ की ही फ़िक्र रहती है—फिर वह अलग कैसे हो जाता है? क्यों हो जाता है?"

प्रश्नों की लड़ी पूरी हुई, परन्तु उत्तर उसे नहीं मिला। पांचू का सिर ऊपर उठा—मानो अपना मार्ग खोजने का प्रयत्न कर रहा हो। लेकिन सामने जो कुछ था, उसे देख कर वह चौंक उठा। चांदनी में दूर तक—सामने, आसमान लाल हो रहा है! क्यों? लपटें उठ रही हैं। आग! कहां लगी?

पांचू का कौतूहल भय के साथ साथ बढ़ा। वह तेज़ क़दम बढ़ाने लगा—"क्या भूख और महामारी ही काफ़ी नहीं थी जो प्रकृति को भी ज़ुल्म ठानने की ज़रूरत महसूस हुई? भयंकर आग है।"

पांचू और तेज़ी के साथ आगे बढ़ने लगा।

मोनाई की दूकान दिखाई देने लगी। शोर और हंसी सुनाई देने लगी। आग की नाचती हुई लपटों से घिरा हुआ मकान दीखने लगा। "स्कूल के पास है—नहीं, स्कूल में ही आग लगी है"—पांचू के दिल की धड़कन बढ़ गई। उसने मोनाई की दूकान की तरफ़ देखा। दूकान सूनी पड़ी थी। वह दौड़ने लगा।

आदमी चारों ओर, घेरे में, उछल कूद और शोर मचा रहे थे। स्कूल में आग लगी थी। हवा में गर्मी भरी हुई थी। अट्टहास, गाना, शोर, सब मिल कर कानों में भयंकर रूप से समा रहा था।

दिन ढले, शाम को छेदीसिंह ठेले पर बोरे लदवा कर स्कूल में लाया था। अपने और अपने साथियों के लिये जो बोरे उसने मोनाई से ज़बर्दस्ती वसूल किये थे, वे भी स्कूल के ही एक कमरे में लाकर रक्खे गये थे। बांटे जाने वाले चावलों के बोरे बाहर रक्खे गये। अपने लठैत साथियों की मदद से छेदीसिंह ने गांव में चावल बांटना शुरू किया। उसमें भी जितनी बन पड़ी, काट-फांस की। फिर भी, चावल सब को मिल रहा था। ख़ुशी सब के दिलों में नाच रही थी।

अन्न का देवता आज मानव पर प्रसन्न हुआ था। जिसके पीछे पैसा-टका गया, गहना-कपड़ा गया, घर का तार-तार बिक गया, आबरू गई, लाज गई, धरम-ईमान गया, मा-बाप, बहन भाई, स्त्री और बच्चे तक बिछड़ गये—जान देकर भी जिस अन्न के देवता को मानव संतुष्ट न कर सका था, वही आज छेदीसिंह को गालियों के साथ लुट रहा था। जीवन का भिखारी, इंसान, आज, आख़िरकार जीवन के सहारे को पा ही गया। वह ख़ुशी के मारे पागल हो उठा। हंसी, आंसू, चीख, पुकार, गाने, नाचने, गले मिलने और धौल-धप्पा करने के रूप में ख़ुशी बहुत दिनों बाद आज इंसान के दिल की गहराइयों से निकल कर

वातावरण पर छा जाने के लिये वेग के साथ बढ़ रही थी। आज मोहनपुर गांव में अन्न का त्योहार था। लोग नाच रहे थे, चक्कर खाकर गिर पड़ते थे, चावल बिखर जाता था, लोग बीन-बीन कर छीन छीन कर खा रहे थे; मुट्ठी भर-भर कर चावल मुंह में रखते थे——हँसी फूटी पड़ती थी।

अज़ीम ग़ुस्से से उबला पड़ता था। जिस तरह आज छेदासिंह ने उसके मालिक और गुरु, मोनाई की तथा उसकी बेइज्ज़ती की थी, उसका बदला लेने के लिये वह दिल ही दिल में बेताब हो रहा था। छेदासिंह और उसके साथियों को यह जीत और ख़ुशी उसे न पची। अँधेरा होते ही, पोखर के पीछे से जाकर उसने स्कूल के उस कमरे में आग लगा दी जिसमें छेदासिंह और उसके साथियों ने अपनी लूट के हिस्से के बोरों को लाकर रक्खा था। आग-जगह-जगह से लगाई गई; और देखते ही देखते आसमान में लपटें उठने लगीं।

चारों ओर 'आग-आग' का शोर मच गया। छेदासिंह और उसके साथी घबरा कर बरामदे से बाहर भागे। चावल पाने की आस में खड़ी हुई भीड़, छेदासिंह के हटते ही, चावल के बोरों पर टूट पड़ी। उन्हें आग की चिन्ता नहीं थी। पेट की आग को बुझाने के लिये वे चावल के बोरों से जूझ रहे थे।

आग की लपटों को देख कर लोग ख़ुश हुये। उनके लिये यह एक बहुत बड़ा तमाशा बन गया। किसी को सूझ गया, इस आग में चावल पकाना चाहिये। चारों ओर 'पकाएंगे, पकाएंगे' का शोर मच गया। बहुत से लोग इधर-उधर से टूटे-फूटे मटके, नादें वग़ैरह लाने के लिये लपके। पोखर से पानी भर कर लाने लगे। शक्ति से अधिक वह काम कर रहे थे। इस समय कमजोरी और थकावट के लिये कहीं भी, ज़रा भी सी, गुंजाइश न थी।

आग की लपटें ऊँची उठ रही थीं। सामने, छेदासिंह और उसके साथी हतप्रभ और अवाक् खड़े थे। परिस्थिति उनके रौब, दबदबे और बस के बाहर थी, वे चूं तक करने की हिम्मत नहीं कर सकते थे।

आग के आसपास टूटी-फूटी नादों और मटकों में पानी भर कर चावल छोड़ा जा रहा था। लोग सोचते थे, पक जायगा। कुछ यों ही फंकी मार रहे

थे। कच्चे चावल पेट में चुभते थे, मरोड़ होती थी, चीख़-पुकार होती, कोई गिरता था, कोई पेट पकड़ कर मसलता था, कोई .ख़ुशी से नाचता था, कोई थक कर चूर हो गया था।

लपटों की लाल रोशनी में काली, खुरखुरी झिल्लियों से मढ़े हुये हड्डियों के ढांचे .ख़ुशियां मना रहे थे। सिर और चेहरे की हड्डियों के हर उभरे हुये हिस्से, गहरे गड्ढों में धँसी हुई आंखें, दांतों की क़तारें, दाढ़ी और सिरों के बाल .ज़्यादातर उड़े हुये——जगह-जगह उगे हुये उनके गुच्छे; कंधों की उठी हुई हड्डियां, पँसलियों में पेट की खोह, कमर में लिपटे हुये फटे-चिथड़ों में चमकती हुई कूल्हे की हड्डियां, घुटनों की उठी हुई हड्डियां——लपटों की रोशनी में सिर्फ़ हड्डियां ही हड्डियां चमकती थीं। अपना ही रक्तमांस खा-खा कर मानव देहधारी जीवन अनैतिकता और अन्याय के ख़िलाफ़ जेहाद बोल रहा था।

सूखी टांगें, बड़ा पेट, अस्सी बरस के बूढ़ों की तरह झुर्रियां लटकी हुई गालों के गुचकुल्ले नाक की हद तक जबड़ों के भीतर धसे हुये, हँसने पर दांत उस रोशनी में तलवार की धार की तरह चमकते थे——चार-पांच से लेकर दस-बारह बरस तक के बच्चे, नौजवान, जवान, अधेड़, बूढ़े, खाज, गर्मी वगैरह चर्म रोगों से सड़े हुये शरीर वाले, छोटे, बड़े; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, हिन्दू मुसलमान——मानव——जीवित कंकालों का मेला लगा था। लपटों की पार्श्वभूमि में भूख का त्यौहार मनाया जा रहा था। जन समूह आनन्द से परिपूर्ण था। उन्हें तन बदन का भी होश नहीं था। अन्न को जीत कर उन्हें भूख का ध्यान नहीं रहा; भूख को जीत कर उन्हें अपना ध्यान नहीं रहा। बहुत बड़ी .क़ीमत चुका कर मानव जीवन आज अपना त्यौहार मना रहा था। वह मुक्त था——भय से, चिन्ता से, भूख प्यास, मान-अपमान से, बुद्धि से, ज्ञान से चेतना से।

आबरूदार (जिन्होंने सरकारी तौर पर अपने घरों में अकाल होने की घोषणा नहीं की थी, मगर जिनके घरों का हाल कलकत्ते और तमाम हिन्दुस्तान

के अखबारों में रोज़ छपता था) ज़रा दूर, जगह-जगह टोलियों में खड़े देख रहे थे। मौक़ा पाकर चावल भी चुरा लाते थे।

अज़ीम बदला लेकर जीत गया था। मगर जब उसने मोनाई से अपने इस महान् कृत्य का बखान किया तो उसने इसे फटकारा। उसकी चाल के अनुसार यह सब चावल जनता को ही मिलता और छेदासिंह हाथ मसल कर रह जाता। मगर छलक जाने वाले दूध पर पछताना मोनाई का स्वभाव नहीं। दोनों एक कोने में खड़े हुए सामने का दृश्य देख रहे थे।

अज़ीम बोला--"क्या नज़ारा है! भूत जैसा भयावना!"

मोनाई बोष्टम, सामने देखते हुए, चेहरा निर्विकार रख कर अति गम्भीर भाव से बोला--"ये भूत नहीं है अज़ामा; ये है वर्तमान--परत्तच्छ वर्तमान--भूत से भी जादा भयंकर। ये भूख मेरे गुदाम का एक दाना भी नहीं छोड़ेगी। आज की जागी हुई भूख बरसों नहीं बुझेगी। गोलियां और लाठियां भी इसे नहीं रोक सकतीं।"

मोनाई की इस बात से अपने सामने वाले दृश्य की गम्भीरता का अनुभव करते हुए, अज़ीम ने चिंतित स्वर में पूछा--"तो चाचा फिर?"

अज़ीम के कंधे पर हाथ रख कर, आवाज़ दबा कर मोनाई कहने लगा--"बेटा, अपने बाप से जाके कह दे, तुर्त-फुर्त आठ नावों का बन्दोबस्त कर दें। दुइ घंटे में सब सरोजाम हुइ जाय--समझे? और देख, तू लौट के आ, तब तक मैं घर पहुँचता हौं। दुइ सौ रुपै अन्टी में बांध के ज़रा छेदासिंघ के पास लपक जाना। पिछली बार तो पचास में निपट गया था, मुल अब की बेर मामला और है। जहां तक बनै, कमती में पटाना--आगे फिर राम मालिक हैं। बीस आदमी लाना। पचास बोरे छोड़ के, बाकी रातों रात आज ही लदाए देता हौं।"

अज़ीम ने पूछा--"कहां ले जाओगे चाचा?"

"अभी तौ देवीपुर की हाट जाऊँगा। औ' हुआं से जो जुगुत बैठ गई तौ कलकत्ते तक निकल जाऊँगा। सुना है, भाव सैकड़े पर टकोरे लै रहा है आजकल।"

अज़ीम चिन्ता प्रकट करते हुए बोला—"सुना है आजकल दरिया-पुलुस बहुत बढ़ गई है चाचा।"

मोनाई ने निश्चिन्त स्वर में उत्तर दिया—"अरे बेटा, बड़े-बड़े पानी देख चुका हौं। ये दरिया पुलुस भी देख लेऊँगा। और, यौं तौ, इत्ती बेला हारे जुआरो का दांव है मेरा।"

"पर चाचा, हारे जुआरो के दांव से कैसे चलेगा? बोरों के साथ, खुदा न करे, कहीं तुम पकड़ लिए गए तो यहां का क्या होगा?"

मोनाई मुस्कुराया; अज़ीम के कन्धे पर प्यार से हाथ फर कर बोला—"मेरी चिन्ता न कर बेटा। मोनाई केवट किसी की पकड़ाई में आने वाला जीव नहीं। हां, बोरे भले ही पकड़े जायं तौ.....मुल सो कुछ नहीं, भगवान जी ने चाहा तौ सब कुसल होयगो। वैसे इधर का इंतरजाम भी लैस कर चला हौं।"

अज़ीम को लेकर मोनाई अपने घर की ओर मुड़ा—"यूनन बोट के सित्तरो साहेब आए हैं। जमींदार के हियां भेंट भई तौ मैंने पानी चढ़ाया। तुम्हारो वो दोनौं औरत भी काम करेंगी। अभी पन्द्रा पर अड़े थे, मुल साइत कल मान भी जायं। मैं बारह को बात कह आया हौं। तीस हजार रुपया घर में गिन्नो को दै जाऊँगा। पौने पन्द्रा तक जाके पटाना। फिर भी न मानै तौ रुपिया पटक के माल उठाय लाना। दूसरो खेप में वो हजार बारे भी जब निकाल आऔंगा तब जाके घाटा पूरा होवैगा। क्या समझे। बड़ा जखम कीना है जमींदार ससरे ने भी। ये साला भी मेरे हार्थों—'

मोनाई को बांह झिझोड़ कर अज़ीम ने धीरे से कहा—"चाचा— छोटे ठाकुर!"

पोखर के किनारे खड़ा हुआ पांचू अपने सामने के दृश्य में खो गया था। वह टकटकी बांध कर अपने स्कूल से निकलती हुई आग की लपटों को देख रहा था।

पांचू का सपना जल रहा था। लपटें उसके दिल से उठ रही थीं। राम दुलाल खूड़ो, और गांव के दूसरे बड़े-बूढ़ों के विरोध से तन कर उसने इसी

ज़मीन पर दूले-बाग्दियों के लड़कों को पढ़ाना शुरू किया था। इसी ज़मीन पर पर वह बड़े-बड़े ज़मींदारों, साहूकारों, रईसों, अफ़सरों और कलक्टर तक को ला चुका था। बच्चों का शोरगुल, खेल कूदना; दर्जों में बैठ कर पढ़ना, दर्जों में बच्चों को पढ़ाते हुए कानाई और गोविन्द मास्टर; गणेश--जिस दिन गणेश मरा, वही पांचू के स्कूल आने का भी आखिरी दिन था। उसी दिन मुनीर मरा था। उसी दिन मोनाई से बेंञ्चों का सौदा किया था। उसी दिन, जीवन में पहली बार पांचू ने आत्मविश्वास खोया था। उसी दिन जनता के पवित्र दान से खरीदी हुई बेंञ्चों को अपने स्वार्थ के लिए बेंच कर पांचू का अभिमानी मस्तक सदा के लिए झुक गया था । स्कूल की इमारत के साथ-साथ पांचू की पुरानी स्मृतियां, पांचू का गौरव, पांचू का कलंक भी जल रहा था।

आग से उसकी टकटकी बंध गई थी; पत्थर की मूर्ति की तरह वह खड़ा हुआ था--"मेरा पाप जल रहा है। मेरा अहंकार जल रहा है।"

लाज के बंधन तोड़ कर स्त्रियों का दल आया। चावलों पर लाज विहीना स्त्रियों के धावे से आनन्दमग्न पुरुष दल चौंका। स्त्रियां अनावृत दशा में बाहर चली आईं--पागलपन की अवस्था में भी पुरुष समाज यह देख कर चीख़ उठा। पुरुषों को क्रोध आया। वे स्त्रियों पर गालियों की बौछार करते हुए टूट पड़े। स्त्रियां भी पीछे नहीं हटीं। उन्हें भी खाने का हक़ है; उन्हें भी जीने का हक़ है। पुरुष इस हद तक स्त्री को अपनी दासी बना कर नहीं दबा सकता।

पांचू उन्हें देख कर सोच रहा था--"हमें सब का समान अधिकार स्वीकार करना ही होगा। जब तक एक भी स्त्री दासी रहेगी, उसके गर्भ से दास ही उत्पन्न होंगे। दासता जीवन को मृत्यु की जड़ता से बांध देती है। यह अकाल हमारी दासता का परिणाम है। यह अकाल मनुष्य की दासता का परिणाम है।

"अपने पेट की आग को बुझाने के लिए पुरुषों ने स्त्रियों के तन के कपड़े बेच दिए, उनका तन भी बेच दिया था--फिर नारी की कौन सी लाज मिट जाने के भय से पुरुष इस समय त्रस्त है ?"

दो पुरुष एक स्त्री को पीछे ढकेल रहे थे। उस स्त्री ने उनमें से एक के हाथ को क्रोध से चबा लिया। उसका मांस उखड़ आया। पुरुष जोर से चीख कर गिर पड़ा।

पांचू ने आंखें मींच लीं। फिर उसके मन में हुआ कि इन्हें बचाया जाय; किन्तु पास जाने का साहस न हुआ।

पांचू घर लौट चला।

वह सोच रहा था—"मनुष्य यहां तक गिर गया है! फिर बर्बर युग से आज में अंतर ही क्या रहा? तो क्या मानव की आज तक की प्रगति, उसकी सभ्यता, ज्ञान, विज्ञान, सब ग़लत है?"

पांचू की बुद्धि इसे स्वीकार करने के लिए तैयार न थी।

"इस पतन का कारण," उसने आगे सोचा, "व्यक्ति का अहं है जो दूसरे को गिरा कर प्रसन्न होना चाहता है; दूसरे को अपना ग़ुलाम बना कर, पाशविक शक्ति के बल पर अपनी सत्ता चाहता है। जब तक यह वृत्ति रहेगी, जब तक दुनिया में एक भी ग़ुलाम रहेगा, दुनिया में योंही अशान्ति बनी रहेगी। मुक्त होने के लिए, मनुष्य को अपने इस जंगली संस्कार का बीज नाश करना होगा। सभ्य बनने के अनेकों प्रयोगों में समाज को एक करते हुए, व्यक्ति हर बार, अनजाने तौर पर अपने को ही महत्व देता चला गया। बौद्धिक और दार्शनिक रूप से भी उसने समाज को सदा अपना चेला बना कर ही आगे बढ़ाया। उन्हें अपना साथी बना कर साथ साथ आगे नहीं बढ़ा। व्यक्ति समाज का नेता नहीं, साथी बन कर ही ठीक तरह से चल सकता है। मानव और मानवता को तभी एक रूप में देखा जा सकता है। सच पूछो तो, इन्हें दो नाम दे कर अलग-अलग देखना ही भ्रम है। एक ही चीज़ के दो नाम हैं—'व्यक्ति और समाज—मानव और मानवता।'

विचारों की गति से ही पांचू के पैर भी आगे बढ़ रहे थे।

—

७

इधर कई दिनों से गिद्ध सैकड़ों की संख्या में आसमान पर मंडराया करते हैं। वे बड़े निडर हो गये हैं। चलते-फिरते आदमियों को छोड़ कर, पड़े हुए हर ज़िन्दा और मुर्दा आदमी को वह अपना आहार मानते हैं। गाय, बैल, आदमी, औरतें, बच्चे, बात की बात में गिद्धों, सियारों और कुत्तों द्वारा ठठरियों में परिवर्तित कर दिये जाते हैं। गांव में जगह-जगह ठठरियां और अधखाई, सड़ती हुई लाशें दिखाई देती हैं।

स्कूल की होली जला कर, चावलों से खेल चुकने के बाद, गांव तबाही की अंतिम दशा को पहुँच चुका था। भूख के साथ-ही-साथ हैज़ा और मलेरिया का भी ज़ोर हुआ। पर्रे-के-पर्रे साफ़ होने लगे।

मोनाई उसी रात माल लदवा कर बाहर चला गया। अज़ीम ने मोनाई के आदेशानुसार यूनियन बोर्ड के सेक्रेटरी से हज़ार बोरे ख़रीद लिए और उन्हें लेकर वह ख़ुद ही सेठ बन बैठा। उसने अपनी नावें चलानी शुरू कर दीं।

बढ़ई नुरुद्दीन मुनीर की बीवी को लेकर कलकत्ते गया है। मुनीर की दोनों निस्सहाय लड़कियां मां-बाप से बिछड़ कर बेहाल हो गईं। पड़ोस के दीनू ने उन्हें अपने घर में शरण दी। दया की भावना अब भी कभी-कभी जाग पड़ती थी। दीनू के घर में कोई नहीं रहता था। उसकी पत्नी अपने बच्चों को लेकर मैके चली गई थी। बाद में ख़बर आई कि वह बच्चों को छोड़ कर गोरों की पलटन में अपना तन बेचने लगी है। दीनू को इससे गहरा धक्का लगा। बीबी-बच्चे खोकर भूख का मारा दीनू चांद और रुकिया को अपना वात्सल्य प्रेम देकर जी बहलाने लगा।

खाने को दीनू के पास कुछ था नहीं। चांद और रुकिया की भूख देख कर वह तड़प उठता था। भूख के कारण रोती हुई बच्चियों को अपने पास

सुला कर रोते-रोते वह रात बिता देता था। दीनू ख़ुद घर से निकलता था, न बच्चियों को ही कहीं जाने देता था। धीरे-धीरे उसने बोलना छोड़ दिया। आठों पहर वह गुम होकर बैठा रहता और लुटे हुए घर को निहारा करता। एक दिन वह बड़ी देर तक चूल्हे की ओर देखता रहा। देखते-देखते उसे विचार आया कि जिस दिन से चूल्हे में आग जलना बन्द हो गई है उसी दिन से घर की यह दुर्दशा हुई है। इसलिए अगर चूल्हा फिर से जल जाय तो उसके घर की रौनक भी फिर से लौट आयेगी। दीनू को सहसा यह विश्वास हो गया कि चूल्हा जलते ही उसकी पत्नी घर लौट आयेगी, बच्चे आ जायेंगे, अकाल ख़त्म हो जायगा और फिर से अमन-चैन का राज हो जायगा।

इस विचार ने दीनू को स्फूर्ति दी। उसकी आंखें चमक उठीं। वह तेज़ी से उठा, अपनी झोपड़ी के टूटे हुए छप्पर से बांस निकालने लगा। उसे बड़ी मेहनत करनी पड़ी। बांस खींचते हुए उसका हाथ कट गया, ख़ून निकलने लगा; लेकिन उसे इसकी परवाह न थी। फटे बांस को उसने पैर से दाब-दाब कर तोड़ा। छोटी-छोटी खपाचियां बनाईं। हाथ का ज़ख़्म और बढ़ने लगा। उसे इसका ध्यान भी नहीं था। चांद और रुकिया आश्चर्य से उसे देख रही थीं। खपाचियां बना कर दीनू ने चूल्हे में रखीं और लपकता हुआ बाहर गया। अरसे बाद दीनू घर से बाहर निकला था। अज़ीम का घर पास था। उसके दरवाज़े पर हुक्के-पानी के लिए कौड़े में आग रहती थी। दीनू चोर की तरह से कौड़ा उठा कर भागा। अमानुषिक स्फूर्ति के साथ दीनू काम कर रहा था। कौड़े की आग चूल्हे में डाल दी। चांद और रुकिया से कहा—"फूंको।" बहुत दिनों बाद दीनू बोला था। यथाशक्ति वे चूल्हे को सांस से फूंकने लगीं। लड़कियां कमजोर पड़ती थीं। दीनू उनकी गर्दन पकड़ कर ख़ुद भी फूंकता था और लड़कियों को भी मजबूर करता था। दोनों लड़कियां डर गई थीं।

बांस की खपाचियों से लपट निकली। दीनू ख़ुश होकर नाचता हुआ किलकारियां मारने लगा। बच्चियां आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगीं।

सहसा दोनू ने सोचा कि जब चूल्हे में आग होती थी तब कुछ पकता था और जब पकता था तभी घर में रौनक़ होती थी। पके क्या? उसने घर में चारों ओर नजर दौड़ाई। कुछ भी न था। लेकिन कुछ न कुछ तो ज़रूर ही पकना चाहिए, वरना घर की रौनक़ नहीं लौटेगी। दोनू अधीर होने लगा। लपट ज़रा धीमी होने लगी थी। दोनू की व्याकुलता बढ़ने लगी। वह चारों ओर देखने लगा। सहसा उसने सोचा, यह लड़कियां किस दिन काम आयेंगी? इन्हें पकाओ—पकाओ तो घर की रौनक़ लौटेगी—पकाओ। चमकती हुई आंखों से चांद को देखते हुए सहसा बड़ी ज़ोर से उसकी गर्दन पकड़ी और ज़ोर के साथ चूल्हे में उसका मुंह झुका दिया। चांद चीख़ पड़ी। रुकिया ज़ोर-ज़ोर से चीख़ने लगी। दोनू दोनों हाथों से दृढ़तापूर्वक चांद का मुंह चूल्हे की आग में जलाता ही रहा। उसे अपने घर की रौनक़ चाहिये थी। घर की रौनक़ आये बग़ैर अकाल नहीं जायगा। वह अकाल से छुट-कारा चाहता है। वह सुख और शान्ति चाहता है।

अज़ीम रुकिया की 'बचाओ, बचाओ' गुहार सुन कर दौड़ आया। दोनू को चांद का मुंह आग में झुलसाते हुए देख वह एक क्षण के लिए सिहर कर स्तम्भित हो गया। फिर तेज़ी से लपक कर दीनू को घसीट कर अलग किया। चांद के प्राण निकल चुके थे। चेहरा जल कर अत्यन्त विकृत हो चुका था। चर्बी और मांस-मज्जा के लोथड़े चमक उठे थे। दीनू ग़ौर से देखने लगा। वह समझ नहीं सका कि यह क्या हो गया है।

गांव में पागलों की संख्या बढ़ रही थी।

गांव दिन-ब-दिन सूना होता जा रहा था। छोटे बच्चे या बूढ़े औरत मर्द ही गांव में अधिक दिखाई देते थे। यों, अब उनकी संख्या भी कम होती जा रही थी। जवान बहू-बेटियां बिकने लगी थीं। अज़ीम और नूरुद्दीन ने यह व्यापार शुरू कर दिया था। मोनाई से लाग-डाट चल रही थी।

मोनाई जब गांव लौट कर आया तो उसने देखा कि उसका अति विश्वस्त दाहिना हाथ, शिष्य और सहकारी, अज़ीम उसे तीस हज़ार रुपये का धक्का

पहुँचा कर सेठ बन चुका था। मोनाई ने अपनी पत्नी को बेहद पीटा, मगर अज़ीम से उसका बस न चल सकता था। पित्ते मार कर वह चुप बैठा रहा। माल खपा कर जो रक़म वह कमा कर लाया था, उसे ही ज़मीन में गाड़ कर वह अपनी बुरी ग्रह दशा पर आह भर कर भविष्य के लिए चिंतन करने लगा। व्यापारी मोनाई नुकसान पर आंसू नहीं बहाता, नुकसान से नफ़ा कमाने की सोचता है।

उसने सुना, अज़ीम और नुरूद्दीन गांव की जवान औरतों को ख़रीद कर बाहर बेच रहे हैं। बड़ा नफ़ा कमा रहे हैं। मोनाई के मुंह में पानी भर आया।

नूरूद्दीन मुनीर की बीबी को लेकर कलकत्ता गया था। बड़े-बड़े तजुर्बे लेकर लौटा है। नुरूद्दीन ने कलकत्ते की सड़कों पर हज़ारों अकाल-पीड़ितों को भीख मांगते, सड़ते और मरते देखा था। उसने अपने गांव के भी कुछ लोगों को उन अकाल-पीड़ितों की भीड़ में देख कर पहचाना था। उसने दो-दो चार रुपये में जवान औरतों को बिकते हुए देखा था। रिक्शा वालों को फ़ौजी पलटनियों को बुला-बुला कर चकलों में ले जाते हुए देखा था। अँगूठे में बड़ा घुंघरू अटका कर रिक्शा के हेंडिल को ठोकते हुए वे लोग पलटनियों को देख कर 'ठुनठुन बाबू' 'ठुनठुन साहब' चिल्लाने लगते थे। यह चकलों में चलने के लिए सांकेतिक निमंत्रण था। बड़े-बड़े महलों, मोटरों, ट्रामों और बसों से भरी हुई धनाधीशों की महाविशाल नगरी की चकाचौंध देख कर उसकी इच्छा भी कमाने की हुई। उसने चकले वालों से दोस्ती की, रिक्शा वालों से जान-पहचान बढ़ाई, बाजार को जांचना शुरू किया। उसे पता लगा कि कई बड़े-बड़े सेठों ने सस्ते दामों में औरतें ख़रीद कर चकले आबाद किये हैं। गुंडों को इस धंधे में साझीदार बनाया है, पिये हुए गोरों और पलटनियों की जेबें ख़ाली करवा कर वह इस धंधे से भी दो पैसे कमा लेते हैं। नूरूद्दीन को लालच लगा। मुनीर की बीबी को सोनागाछी की एक वेश्या के यहां बेच कर उसने भी चकले की दलाली शुरू की। अच्छे

पैसे बनने लगे। ख़ूब 'सनीमा' देखा, मौजें उड़ाई। अकाल-पीड़ितों की दुर्दशा देख कर उसका दिल कभी-कभी पसीज भी उठता था। चकले की बहुत-सी लड़कियां बीमार होकर बेकार हो चुकी थीं। चकले की चौधराइन से नूरुद्दीन का सौदा तय हुआ था कि अगर वह नई लड़कियां ला दे तो वह चकले में साझीदार भी बन सकता है।

नूरुद्दीन गांव आया। उसकी टेंट में पांच सौ रुपए थे। अजीम मोनाई को धोखा देकर सेठ बन चुका था। अजीम से मुलाक़ात हुई। कलकत्ते के हाल-चाल बयान किये। नूरुद्दीन ने अपने आने का आशय बताया।

इस काम में मुनाफ़े की कल्पना कर के अजीम के मुंह में पानी भर आया। उसने नूरुद्दीन की ठोड़ी पकड़ी—"चार रुपै औरत पर तै करो उस्ताद। दो तुम्हारे, दो हमारे। हम रुपै के बजाय चावल देंगे, गाहक चावल देख कर फौरन जाल में आयगा। और रुपै तुम चाहे लाख दिखाओ, कोई तुम्हें पूछेगा भी नहीं।"

नूरुद्दीन की समझ में बात आ गई। उसने मंजूर कर लिया।

नूरुद्दीन ने गांव में ख़बर फैलाई कि कलकत्ते में एक सेठ ने धरमशाला खोली है, जहां ग़रीब औरतों की परवरिश होती है। उन्हें खाने और पहनने को दिया जाता है, दीन-धरम के उपदेश दिये जाते हैं। नूरुद्दीन ने यह भी बतलाया कि जिसके घर की औरतें धरमशाले में भेजी जाती हैं, उसको कलकत्ते के सेठ की तरफ़ से चावल भी मिलता है।

धरमशाला की हवा चली। आसपास के चार-पांच गांवों तक में 'धर्मशाला' की धूम मच गई। दो मुट्ठी चावल के लिए औरतें बेची जाने लगीं। बूढ़ियों को धरमशाला में दीन-धरम के उपदेश सुनने के लिए भरती नहीं किया जाता था। धरमशाला का रहस्य मालूम हो गया। पर औरतों की अस्मत जाय तो जाय—खाने को मिले। बहू-बेटियों को वेश्या बनने दो! आबरू जाती है तो जाने दो! पेट से बढ़ कर दुनिया में कोई चीज नहीं। बेचो! बेचो!!

नूरुद्दीन और अज़ीम का रोज़गार चल निकला।

पहली बार नुरुद्दीन अपने साथ बारह औरतें लेकर कलकत्ता गया।

मोनाई से अज़ीम की यह बढ़ोतरी न देखी गई। औरतों के इस नए धंधे में आमदनी अच्छी है। मोनाई ने जांच-पड़ताल की, हिसाब फैला कर देखा, अज़ीम और नूरुद्दीन को सेर भर चावल में चार औरतें पड़ती हैं। चावल अगर अस्सी रुपए मन भी बेचा जाय तब भी औरतों के व्यापार में कम से कम उससे दुगना नफ़ा है।

मोनाई को लालच सताने लगा। मगर मन फटकारता था। अपने गांव की, भले घर की बहू-बेटियों से कसब कराना बड़ा पाप है। मगर, फिर मोनाई सोचा—"यों भूखी मर रही हैं बिचारी, वैसे कम से कम खाने पहनने को तो मिलेगा। वो सुखी होंगी और चार पैसे मुझ को भी मिल जायेंगे। भगवान जी ने अगर इस नए ब्योपार में अच्छे पैसे बनवा दिये तो आगे चलकर एक अनाथाला और आसरम भी खुलवाय दूंगा। यही तो धरम की महमा है। संसारी जीउ मोह माया में पड़ के अगर पाप भी कर बैठे तो परासचित कर के पुन्न की नैया में भवसागर के पार उतर जाय। अहा, धन्न हो भगवान जी। तुम्हारी लीला अपरमपार है। एक ओर तो अरजुन को उप-देस दीना कि अर्जुन मोहमाया में मत पड़। और दूसरी ओर राजपाट के लिए उससे जुद्ध भी करवा दीना। वाह-वाह, ऐसा न्याव भगवान जी के सिवाय और कौन कर सकता है। धरम और करम दूध और पानी जैसा कर दिया। मुल न तो दूध का दरजा हीन किया और न पानी का। जोगी-जतियों के लिए धरम का मारग दिखाया और करम की महमा दिखाने के लिए खुद आप अर-जुन के सारथी बन गए। धन्न हो परभू नाथ! बड़े दयालू हो।"

हुक्क़ा छोड़ कर हाथ जोड़े, मोनाई वोष्टम की दोनों आंखों से नीर बहने लगा। गद्गद् हो कर मोनाई भगवान जी की प्रार्थना करने लगा—"हे दीना-नाथ! हमारे भी सारथी बन जाओ! इत्ती बेला यही महमा दिखाओ! मैं तुच्छ हूं तो क्या भया, हूं तो तुम्हारा भगत ही। परतच्छ दरसन देओ परभूनाथ!

नाथ! अब संसार में पाप की हद हुइ गई हैं। अजोमा गहरो दगा दे गया साला! बेद-पुरानों में झूठ थोड़े लिखा है कि कालिया नाग और मलेच्छ दोनों एक समान हैं। मैंने बड़ी गलती की कि जो अजोमा का बिसवास किया। बड़े-बूढ़े कहते थे कि बेटा, जो महजित से निमाज की अवाज भी सुनाई पड़ जाय तो चट से कानों में उँगली ठूंस लो। इनका दीन-मजब उलटा है। इनके धरम का भरोसा ही नहीं है। ठोक कहते रहे बड़े लोग। हम पूरब में पूजा करते हैं, ये पच्छिम में निमाज पढ़ते हैं। हमारे धरम में तो भगवान जी का भगत बिचारा मेरा जैसा भोला भाला होता है, जो छल-कपट का नाम भी नहीं जानता; हर एक पर सोधे मन से बिसवास कर लेता है।....मांगता तो दस-पांच हजार की जमानत हैं दैके इसकी आढ़त खुलवाय देता। मैंने इसे बेटे की तरह प्यार किया, और अंत में यों दगा दै गया! मलेच्छ... अरे, भगवान जी ने चाहा तो मैं भी उसे चारों खाने गिनाय दूंगा। बेटा जी को भी मालूम नहीं है कि गुरू एक गुर सदा अपने पास जादा ही रखता है।"

मोनाई की छोटी-छोटी आंखें दर्प से चमक उठीं। उसने फिर हुक्का गुड़-गुड़ाना शुरू किया।

दयाल, पुलिस, सरकरी अफ़सर या किसी कुलीन हिंदू से मार खा जाने में मोनाई अपनी शर्म नहीं समझता था। मगर अजीम एक तो मुसलमान, दूसरे ग़रीब मल्लाह का बेटा, तीसरे उसका नौकर और किसी हद तक शिष्य भी था; अजीम से मार खा कर मोनाई को किसी करवट चैन नहीं मिल रहा था। अलावा इसके, अज़ीम को औरतों के व्यापार में फलते-फूलते देख कर उसकी जलन और भी बढ़ गई थी। अज़ीम को परास्त करने के लिए मोनाई ने धर्म की शरण ली।

वह दयाल की शरण में गया—"हिंदू धरम डूब रहा है राजा बहादर! आपके राज में मुसलमान लोग हमारे घर की बहू-बेटियों को फुसलाए लिए जा रहे हैं।"

गो-ब्राह्मण प्रतिपालक क्षत्रिय जमींदार का वंशज तैश खा गया। मोनाई पानी चढ़ाने लगा—"कलजुग में गांव वालों की तो मत मारी गई है। धरम-अधरम नहीं देखते, सब को अपने पेट की हाय पड़ी है। अजीमा और नूरुद्दीन धरमसाला के नाम पर औरतें खरीद रहे हैं।"

मोनाई एक प्रस्ताव ले कर गया था। सरस्वतीपुर दयाल जमींदार के इलाके में है। वहां गोरी पलटन की छावनी बन रही है। एक अनाथाला वहीं पर असथापित कर दी जाय। पलटन पास रहेगी तो किसी का हियाव नहीं पड़ेगा। औरतों की रच्छा होती रहेगी और हिंदू धरम भी बच जायगा। इस धरम कारज के लिए मोनाई पांच सौ एक रुपए का दान देने को भी तैयार है। बस राजा बहादुर पीठ पर हाथ धर दें तो बाकी इंतरजाम मोनाई आप कर लेगा।

टेंट से पांच सौ एक खोल कर, भगवद्भक्त मोनाई ने गो-ब्राह्मण प्रतिपालक, धर्मावतार, धर्ममूर्ति श्री दयाल चांद विश्वास के चरण कमलों में सादर सविनय अर्पित कर के प्रणाम किया। दयाल जमींदार ने हिंदू धर्म की रक्षा के लिए मोनाई को आश्वासन दिया।

श्री सनातन धर्म अनाथालय के निमित्त मोनाई ने सात गांवों में फेरे लगाने शुरू किए। बड़े जोर-शोर के साथ अपना काम शुरू किया। साथ ही साथ उसको इस बात का भी डर लगा रहता था कि घाव खा कर अज़ीमा कभी चुप नहीं बैठा रहेगा। बंगाल में मुसलिम लीग का सुराज है, कोई अचरज नहीं जो कोई सरकारी दांव चल जाय, तब? उसने छिपे तौर पर अज़ीम और नूरुद्दीन की हरकतों पर निगाह रखना शुरू किया।

मोनाई इस वक्त चौमुखी लड़ रहा था। दयाल को साधना, 'अनाथाला' सम्हालना, अजीमा पर निगाह रखना—हर तरफ उसके आदमी तैनात थे। हर आदमी पर उसकी निगाह थी।

उसने दयाल जमींदार के लठैतों से नूरुद्दीन को औरतों के साथ गिरफ़्तार कराया। खुद आड़ में रहा। नूरुद्दीन और अजीम की अच्छी तरह मरम्मत

कर के उन्हें छोड़ दिया गया। औरतें भी सनातन धर्म अनाथालय में भेज दी गई।

औरतों में हिंदू भी थीं और मुसलमान भी। दयाल ज़मींदार के नाम पर मोनाई सभी को चावल बांट रहा था। दो मुट्ठी चावल के लिए सभी अपने घरों की अस्मत ख़ुशी से लुटा रहे थे। उन्हें अज़ीम की धरमशाला और मोनाई के अनाथालय का रहस्य अच्छी तरह से मालूम था, मगर उन्हें परवाह न थी।

अज़ीम और नूरुद्दीन अपने रोज़गार में चोट खा कर इसलाम को ख़तरे में महसूस करने लगे। ज़मींदार के लठैतों के ज़ोर पर मोनाई अपने नए रोज़-गार को जमा कर सनातन धर्म की जय बोल रहा था। अज़ीम और नूरुद्दीन की दाल नहीं गल पाती थी—"काफिर के बच्चे गरीबों पर जुलम ढा रहे हैं। इन्हें अपने पैसे का घमंड है, ताकत का जोम है।" अज़ीम और नूरुद्दीन मन ही मन ताव खाने लगे—"हिंदुओं से बदला न लिया तो शेरे-इसलाम नहीं।"

अज़ीम को गौरीपुर के नवाब साहब की याद आई। उनसे दयाल जमीं-दार की पुरानी लागडाट है। दोनों के इलाके पास-पास हैं। जब से दयाल ने शीशमहल बनवा कर नवाब को नीचा दिखाया है वह मन ही मन ख़ार खाता है।

अज़ीम और नूरुद्दीन नवाब साहब के हुज़ूर में पहुँचे—"आपके रहते हुए मुसलमानों पर आंच आ जाय हुजूर, तब तो दुनिया में हमारे लिए कहीं ठिकाना ही नहीं रहेगा। काफिर का बच्चा हमारी बहू-बेटियों से कसब करा रहा है। अपने इलाके में मुसलमानों को तबाह किए डाल रहा है।"

शेरे-इसलाम तैश खा गया। पुरानी अदावत फिर से जोर मार गई। हुक्म हुआ—"कलकत्ता जा कर पचास गुंडों को ले आओ। भिड़ा दो उसके लठैतों से। उसके यहां डाका डलवा दो। और अगर उसके शीशमहल में आग लगवा सके तो तुम्हें दो हज़ार रुपया इनाम दूंगा। वह हिंदू कुत्ता बहुत दिनों से सर उठा कर हमारे सामने चल रहा है। मगर ख़याल रहे, किसी को ख़बर न लगने पाये कि इसमें मेरा भी हाथ है।"

अज़ीम और नूरुद्दीन को सपने में भी खयाल न था कि इतनी आसानी से काम बन जायगा। पांच सौ रुपए गुंडों पर खर्च करने के लिए नक्द मिले। अज़ीम और नूरुद्दीन ख़ुशी के मारे सातवें आसमान पर पहुंच गए।

चांदनी रात थी। अज़ीम और नूरुद्दीन नवाब साहब की कोठी से निकल कर अपने गांव की तरफ़ चले।

कोठी से कुछ फ़ासले पर पेड़ की आड़ में मोनाई बैठा था। अज़ीम और नूरुद्दीन उधर ही आ रहे थे। मोनाई खड़ा हो कर जूते पहनते हुए खखारने लगा।

अज़ीम और नूरुद्दीन ठिठक गए, सहम गए।

मोनाई उधर देख कर बोला—"कौन? अरे अजीमा! कहो बेटा, अच्छे तो हो? अरे, ये कौन नूरुद्दीन हैं? अरे भैया, बहुत दिनों में दिखाई दिये।"

मोनाई उनके पास आने लगा। अज़ीम नफ़रत और ग़ुस्से से कांप उठा। मोनाई हंस कर कहने लगा—"बेटा, मुझे मार कर कुछ भी नहीं पाओगे? मैं तुमसे जरा भी दुस्मनायगी नहीं रखता। न्याड़ा की कसम खा के कहता हूं, भगवान जी की कसम खाता हूं।"

मोनाई उनके बिलकुल क़रीब पहुंच गया। अजीम पर उसका नशा चढ़ने लगा। उसके कंधे पर हाथ रखते हुए मोनाई बोला—"ज़मींदार के कान मैंने ही भरे थे। तुम्हारी बेइज्जती और नुकसान भी मैंने ही कराया था। मुल भगवान जी जानते हैं, ये मैंने दुस्मनायगी के सबब से नहीं कराया।"

सुन कर अज़ीम चिढ़ उठा, ज़रा जोश आया। ताने के साथ बोला—"तो क्या प्यार जताने के लिए कराया था?"

चट से आसमान की तरफ़ आंखें उठा कर मोनाई ने जवाब दिया—"भगवान जी जानते हैं, प्यार के कारन ही ये चाल चली।"

अपने कंधे पर से मोनाई का हाथ झटककर अज़ीम सख़्ती के साथ बोला—"प्यार तो तुम अपने सगे बेटे से नहीं करते, मुझसे क्या करोगे? सुना नूरू, काका ने हमसे प्यार जताया है, हिः!"

मोनाई डपट पड़ा—"इते बरस तुम्हें तोते की तरह से पढ़ाया, मुल अकिल जरा भी नहीं आई। दूर का सूझतो हो नहीं?"

फिर नूरुद्दीन की तरफ़ देख कर कहने लगा—"नूरुद्दीन, तुम्हें जो अपनी चाल सुनाऊँ तो कहोगे कि हां, काका दूर की कौड़ी लाते हैं। ये अभी क्या जानें ब्यौपार की चालें। ये तो गधा है। घर चल रहे हो?"

कह कर मोनाई चलने लगा। नूरुद्दीन और अज़ीम भी चुपचाप चलने लगे। मोनाई इस वक्त उन पर छा गया था।

मोनाई धीरे-धीरे बोलता हुआ चलने लगा—"जब हम लौट कर घर आए तो गिन्नी ने तुम्हारा सब हाल बताया। सच मानना, मेरा कलेजा दुइ हाथ का हुइ गया। मैंने हँस के तुम्हारी काकी से कहा कि लौंडा हुसियार हुइ चला है। बेटा, रुजगार का गुर यही है कि मौका पड़े तो सगे बाप को भी न छोड़े। मुल एक बात कहें बेटा, अपने बचपने में तुम जरा चूक गये, नहीं तो और लम्बा दांव मारते!"

मोनाई हँसा। फिर कहने लगा—"मैं तुम्हारी जगह होता तो जानते हो क्या करता?

अज़ीम और नूरुद्दीन दोनों मोनाई की ओर देखने लगे।

मोनाई बोला—'बेटा, तुमने दांव तो सीख लिया, मुल अभी सफाई नहीं आई। अरे पगले, काकी को पता भी न लगने देता कि बोरे तू निकाल ले गया है। उन्हें धोखे में ही रखता। पहले कुछ बोरे बेच कर आठ-दस हजार रुपै उनके हाथ में धरता, और फिर उनसे कहता कि काकी, फलाने-फलाने गांव में यूनन बोट वाले इसी भाव पर दुइ हजार बोरे और निकाल रहे हैं। काका के न होने से बड़ा भारी नुकसान हुइ रहा है। यह कह के जो एक ठंडी सांस और छोड़ देता तो बेटा, तेरी काकी अपने गहने उतार कर तेरे आगे धर देतीं।"

मोनाई का जादू चढ़ गया। अज़ीम और नूरुद्दीन मोनाई की बातों के टोने में बँधे हुए चल रहे थे। अज़ीम मन ही मन अपनी ग़लती महसूस कर रहा था। मोनाई कहता गया—"अरे, औरत वानी, नफे का नाम सुनते ही पानी हुई जाती। वो आठ-दस हजार रुपे भी तुम्हीं को दे देती, और ऊपर से अपने गहने तक उतार देती। मैं तुम्हारी जगह पर होता तो एक तीर में दो सिकार करता। रुजगार में सबर से काम ले और ठंडे मगज से चाल सोचे। वो बंपारी क्या जो एक तीर से दुइ सिकार न कर सके।"

मोनाई काका के उपदेशों को ध्यान और श्रद्धा के साथ सुनने की आदत अजीम को सदा से रही है। मोनाई के प्रति श्रद्धा का भाव उत्पन्न होते ही अजीम का अपराधी मन आत्मग्लानि से पीड़ा पाने लगा। वह सिर झुका कर चल रहा था। नूरुद्दीन और अजीम दोनों मंत्रमुग्ध से चुपचाप चले जा रहे थे।

मोनाई ने जरा नज़र उठा कर दोनों की तरफ़ देखा। देखा, दोनों ही उसकी बातों की तलवार से कट चुके हैं। होठों की मुस्कराहट को दबा कर मोनाई ने आगे बात बढ़ाई—"अब तुम्हारी दूसरी गलती तुम्हें बतावें?"

अजीम खिसियाना-सा हो गया था। शर्म के मारे उसका सिर नहीं उठ रहा था। नूरुद्दीन मोनाई की तरफ़ देखने लगा। मोनाई ज़रा हँस कर नूरुद्दीन से बोला—"इसी को कहते हैं लड़क-बुद्धी! देखो, अब सिर नहीं उठ रहा इनका! अरे बेटा, अपनी एक चाल चलो तो दुस्मन की दो चालें सोच लो। तुम ये कैसे भूल गये कि मोनाई काका बंपारी आदमी हैं, मेरी चाल पर वो भी कोई चाल जरूर चलेंगे। तुमने उधर तो ध्यान दिया नहीं और नूरू के साथ दूर की कौड़ी लपकने के लिए आंख मूंद कर बढ़े। जैसे तुम सिड़ी, वैसे ये नूरू सिड़ी। अक्किल गिरों रख के रुजगार करने चले थे साहब।"

दोनों का सिर झुक गया। नूरुद्दीन भी शिष्यों की श्रेणी में आ गया।

मोनाई फिर जरा जोर से हँसा। बोला—"जब मैंने ये देखा तो बड़ी जोर से हँसी आई। उसके पहले, सच कह दूं, मुझे तुम पर थोड़ा-बहुत गुस्सा जरूर रहा। मुल जब देखा कि लौंडा बड़ी कच्ची चालें चल रहा है तो यकीन

मानो, बड़ी दया आई। फिर ये ख्याल मगज में दौड़ा कि आधी विद्या में ही फूल कर लड़का नदानी कर रहा है। इसे जरा सिच्छा देनी चाहिए। नहीं तो आगे चल कर किसी बाहर वाले से करारी मात खायगा; मेरा नाम डूब जायगा। इसीलिए ये सब चाल खेलनी पड़ी।"

अपने शिकारों पर मोनाई ने फिर नज़र डाली। बातों की गाड़ी और आगे बढ़ी। मोनाई ने अब आख़िरी वार किया—"तुम अपने मन में सोचते होगे कि काका कोई चाल चल रहे हैं। बेटा, अगर मुझे तुम लोगों से चाल ही चलनी होती तो इस बखत तुम्हें यों टोक के न बुलाता। सुनसान रात, तुम दोनों जवान, मुझे अपना दुस्मन समझने वाले, जरा-सी देर में मेरी गर्दन मरोड़ कर मेरी लहास फेंक देते तो कौन जानता? तुम क्या ये समझते हो कि मैं बिना सोचे-समझे ही तुम्हारे पीछे यहां चला आया?"

अजीम और नूरुद्दीन दोनों चौंके। उन्हें एक नया डर पैदा हुआ। तभी मोनाई अजीम के कंधे पर हाथ रख कर बड़े प्यार के साथ बोला—"बेटा, मेरे मन में कपट होता तो दूसरी चाल चलता। इस दम तुम्हारा पीछा कर के तुमसे बातें करने में मेरा बड़ा गहरा मतलब है। तू तो जानता ही है मैं सदा एक तीर में दुइ सिकार करता हूं। दयाल जमींदार से मिल कर तुम्हें सिच्छा भी दे दी, और अपने तुम्हारे फंदे के लिए एक चाल भी चल गया।"

अज़ीम और नूरुद्दीन की वाकशक्ति लुप्त हो गई थी। आधा रास्ता तय हो गया, बोलने का काम सिर्फ़ मोनाई ही करता रहा।

सहसा मोनाई धीरे-धीरे बड़े गम्भीर स्वर में कहने लगा—"नबाब साहब को हिंदू मुसलमान के झगड़े के लिए उकसाया?"

अजीम और नूरुद्दीन एक दम से सहम गये। अजीम की जबान लड़खड़ा कर आप ही आप खुल गई—"न . . . न . . . नहीं काका, झगड़ा . . ."

बात काट कर मोनाई बोला—"अरे बेवकूफों, ठीक तो किया। डरते क्यों हो? अरे, यही तो मैं चाहता था। हिंदू-मुसलमान का झगड़ा डालो, इसी में हमारा-तुम्हारा फंदा है।"

नूरुद्दीन बड़ी सफाई दिखाते हुए बोला--"नहीं काका, ऐसी बात भला हम कर सकते हैं!"

मोनाई फ़ौरन ही तानामेज लहजे में कह उठा--"नहीं! तुम लोग तो बस घास छील सकते हो--गधे कहीं के। अरे, मैं कहता हूं कि नवाब साहब और दयाल के बीच में हिंदू-मुसलमान का झगड़ा डालो। ये लोग जब लड़ेंगे तभी हम लोगों का फंदा होगा। जब तक ये बड़े-बड़े जमींदार और राजा रोग हमारी खोपड़ी पर स्वार रहेंगे तब तक हमें कुछ नहीं मिलेगा। क्यों भई नूरुद्दीन, कुछ झूठ कहता हूँ मैं?"

अजीम मोनाई की इस बात को हज्म नहीं कर पा रहा था। उसे मोनाई की सूझ-बूझ पर गहरा विश्वास था। और वही विश्वास इस समय उसे मोनाई के प्रति अविश्वास उत्पन्न कर रहा था। वह चकित और भयभीत था। मोनाई को उसके और नवाब साहब के मिलने का कारण मालूम है--एक तरह मालूम ही है। वह भांप गया है। दयाल को अगर इसने पहले से ही सचेत कर दिया तो उलटी आफ़त आयगी। दयाल नवाब साहब से ज़्यादा अमीर है। जरा-सी लाग-डांट होते ही उसने लाखों खर्च कर के शीशमहल तैयार करा डाला। इस बार भी वह नवाब साहब को पछाड़ सकता है। मगर मोनाई को यही करना था तो इस वक्त इस तरह, यहां आ कर वह मेल-मिलाप करने की कोशिश क्यों करता? फिर दयाल और नवाब साहब के बीच में हिंदू-मुसलमान का झगड़ा डालने की बात भी ख़ुद ही कर रहा है। चाहता क्या है आख़िर?

अज़ीम और नूरुद्दीन दोनों मिल कर भी मोनाई से पार नहीं पा सकते। दोनों, ख़ास तौर पर अज़ीम तो बेहद घबराया हुआ था। वह कुछ सोच ही नहीं पाता था। नूरुद्दीन अपने को सम्हाल कर बोला--"बात तो चौकस है काका, बाकी ये नही समझ में आता कि हिंदू-मुसलमान का झगड़ा क्यों डाला जाय?"

मोनाई ने फ़ौरन ही गम्भीर स्वर में उत्तर दिया--"इसमें एक गहरी चाल है। पहले तो तुम ये समझो कि हिंदू-मुसलमान का झगड़ा क्यों होता

है ? इसीलिए न कि दोनों अपने अपने धरम को बड़ा समझते हैं। और जब छुटाई बड़ाई का फैसला नहीं हुइ पाता तो दोनों अपनी ताकत अजमाते हैं। है कि नहीं ? कहो, हां ?"

नूरुद्दीन ने सिर हिला कर कहा—"हां, ये तो सही है।"

"बस, तो इसका तातपरज ये भया कि लड़ाई धरम की नहीं होती, घमंड की होती है। क्या समझे ? अरे, धरम तो भगवान जी का मारग है, चाहे उन्हें खुदा जो कह लो, चाहे भगवान जो कह लो। उसमें कुछ भी फरक नहीं पड़ता। फरक तो छुटाई-बड़ाई का है, सो घमंड के कारन है। अब तुम्हीं लोग हो, क्यों गए नवाब साहब के पास ? इसीलिए न कि तुम्हारा उनका दीन-मजब एक है और तुम्हें ये बात मालूम रही कि दयाल और नवाब साहब की आपस में खटकती है। दयाल ने तुम्हें नीचा दिखाया, नवाब साहब की आड़ लेके तुम उन्हें नीचा दिखाना चाहते थे। कहो, आ गई घमंड की बात कि नहीं ?"

"लेकिन काका, "नूरुद्दीन बोला—"हम इसलिए उनके यहां नहीं गए थे। हम तो......"

बात काट कर मोनाई बोला—"बेटा, दाई के आगे पेट छिपाना बेफजूल है।"

अज़ीम और नूरुद्दीन भी दरअस्ल यही अनुभव कर रहे थे। एक क्षण के लिए रुक कर मोनाई ने फिर बात का सूत्र उठाया—'और सच्ची पूछो तो बेटा, न तो तुम्हारा और नवाब साहब का धरम एक है, न मेरा और दयाल जमींदार का। असली धरम तो हमारा तुम्हारा एक है। हमारे लिए दयाल और नवाब दोनों ही ससरे विधर्मी हैं। अरे, कलजुग में धरम काहे का ? स्वारथ का। और स्वारथ हमारा तुम्हारा एक है। हमारा स्वारथ इसी में है कि ये बड़े लोग आपस में जूझें और हम मिल कर नफा उठायें। है कि नहीं ? अब देखो, यों तो नवाब और जमींदार में पुरानी अदावत है, मुल इस समै इन्हें लड़ाने के लिए कोई परतच्छ कारन नहीं रहा। तुम नवाब साहब के हिरदै में धरम की आग सुलगा आये। चलो, हमारा काम बन गया। बाकी हम तुम जो इस आग

में अपने घमंड के कारन पड़े तो गेहूं के साथ घुन की तरह हम भी पिस जायेंगे। घमंड, भैया, पेट भरे पर होता है। हम तुम तो धन के भूखे हैं, काहे का घमंड करेंगे? और जो इस पर भी घमंड करेंगे तो नासमझी में अपने पैर पर आप कुल्हाड़ी मार लेंगे। क्यों अजीमा, बोलो न, चुप क्यों हो?"

अजीम के लिए अब कोई मार्ग न था। सिर झुका कर बोला—"मैं तुमसे कहीं बाहर थोड़ी हूं, काका।"

मोनाई की बांछें खिलीं, अजीम की पीठ पर हाथ रख कर बोला—"ये तो मैं जानता हूं, बेटा। क्या तै कर आए हो?"

अजीम का सिर अभी भी नहीं उठ रहा था, सिर झुकाये हुए ही उसने जवाब दिया—"दयाल की कोठी पर हमला होगा।"

"कब?"

"नूरू कलकत्ते जायगा, आदमी लाने।"

मोनाई बहुत गम्भीर हो कर सारी बात पर गौर करने लगा—"हूं, कुछ पैसे झटके?"

"पांच सौ!" अजीम कहना नहीं चाहता था, मगर जबान पर मोनाई का असर था।

मोनाई बोला—"उहूं! हमला दयाल की हवेली पर नहीं, सरसुतीपुर में, जहां मैंने औरतें रखी हैं, वहां होना चाहिए। पूछो क्यों?"

अजीम मोनाई के मुंह की तरफ़ देखने लगा। उसकी झिझक मिट गई थी।

मोनाई बोला—"अगर दयाल की हवेली पर हमला भया तब इन दोनों की तो ठन जायगी, बाकी हमारे लिए एक तौर से दो शिकार न होंगे। सुनो औरतों के धंधे में हम तीनों का साझा रहेगा। अनाथाले में कुछ फ़ैदा नहीं, पलटनिये ससरे सराब पी के अपनी मनमानी करते हैं। मेरी चार औरतें मर चुकीं। ठेकेदार अपना कमीसन सिर चोर कर ले लेता है। औरतों की खिलाई-

पिलाई का खर्चा अलग देना पड़ता है। मैं ये चाहता हूँ कि नूरू कलकत्ते में ही सब को ठिकाने लगा आवे। उसी में नफा है। इसलिए नूरू जिस दिन गुंडे ले के आवेगा, मैं ठेकेदार को कुछ ले देकर मोटर का इंतरजाम कर रखूंगा। जहां औरतें लाद के रवाना कीं कि खाली घरों में गुंडों से हल्ला मचवाय देंगे। क्या समझे?"

अजीम ने सवाल किया—"ये तो ठीक है, मगर हमें इसमें हिंदू-मुसलमान की बात कहां आई?"

"आगे आती है!" मोनाई बोला—"सुनो, इसमें एक साथ कई चालें चलनी पड़ेंगी। नवाब साहब के रुपै से जो गुंडे लाओ तो उन्हें ये समझाना कि वे दयाल जमींदार के आदमी हैं। क्या समझे, नूरू?"

"क्यों काका?" नूरुद्दीन ने समझने की गरज से सवाल पूछा।

"इसमें चाल ये है कि पलटनिये जब औरतें नहीं पायेंगे तो भड़केंगे। गुंडों को देख के समझेंगे, इन्हीं ने औरतें उड़ा दी हैं। गोरी पलटन का जो जंडैल है, उसी में बाद में ये पट्टी पढ़ाऊंगा कि छावनी के ठेकेदार ने दयाल के साथ मिल कर औरतें उड़ाई हैं। सबूत दूंगा कि ठेकेदार की मोटर ही औरतों को ले गई रही। इस तरह एक तो ठेकेदार का छावनी से पत्ता कटैगा, दूसरे जब गुंडे गिरिफ्तार होंगे तो वो यही बतावेंगे कि हम दयाल जमींदार के आदमी हैं। इस तरह गोरों की गवाही दयाल के खिलाफ होगी। सरकार में दयाल जमींदार की बदनामी हुई जायगी। दयाल का पच्छ कमजोर होगा। इधर तो यों साधूंगा, उधर दयाल को ये पट्टी पढ़ाऊंगा कि औरतें नवाब साहब ने उड़वाई हैं। आपके अनाथाला की औरतों को मुसलमान बना के वो आपसे बदला ले रहे हैं। मैं कहूंगा कि औरतें भूतों की महजित में छिपाई गई हैं। दयाल को गुस्सा दिला के उसके लठैत उधर भिजवाऊंगा, क्या समझे? और अजीमा नवाब साहब को भड़कावे। ये कहेगा कि दयाल आज रात महजिद तुड़वाने वाले हैं। उसके लठैत पहले ही महजित में छिपाये रखना। क्या समझे अजीमा? महजित पर दोनों पालटियों के लठैत खून खराबा

करेंगे, बात अपने आप पुलुस और कोरट तक पहुंचेगी। पलटन के जंडैल भी दयाल के खिलाफ अपना अडर लिखेंगे। दयाल दोनों तरफ से गच्चे में आवेगा। क्या समझे? दयाल के ऊपर जादा दबाव पड़ना चाहिए। काहे से कि हम लोग इसी गांव में रहते हैं। उसके ऊपर इत्ती आफत पड़े कि उसका ध्यान किसी दूसरी बात की तरफ पड़े ही नहीं। तभी हम लोग निर्सांचित हुई के अपना रुजगार कर सकेंगे। बल्के मैं तो दयाल को यहां तक पट्टी पढ़ाऊंगा कि मुसलिम लोग का सुराज है, नवाब साहब को वहीं से मदद मिल रही है। कलकत्ते जाय के आप भी हिंदू सभा का अंदोलन कीजिए। अरे बेटा, दयाल अगर यहां रहा तो वह मुसलमान होने के कारन तुम लोगों पर सक करेगा और हत्तियाचार करेगा। मैं तुम लोगों पर जरा भी आंच नहीं आने देना चाहता। तुम लोग तो मेरे लड़के के समान हो।"

अजीम और नूरुद्दीन पर मोनाई की बातों का ज़बर्दस्त प्रभाव पड़ा। अजीम ने गद्‌गद् भाव से फ़ौरन ही मोनाई के पैर पकड़ लिए। आंखों में आंसू भर कर बोला—"काका, मैंने तुम्हारे साथ बड़ी नालायकी की है। मैं बड़ा पापी हूं।"

मोनाई ने फ़ौरन ही अजीम को उठा कर अपने कलेजे से लगा लिया। बोला—"बेटा, भगवान जी जानते हैं, मैंने जरा भी बुरा नहीं माना। अरे भाई, नासमझी के कारन लड़के कभी ऊटपटांग कर बैठते हैं। मां-बाप भी जो ऐसी ही नासमझी कर के बुरा मान जायं तो फिर ये संसार चले कैसे? क्यों नूरू, मैं झूठ कह रहा हूं बेटा?"

नूरुद्दीन सिर झुका कर बोला—"ठीक है काका, मगर इतना तो मैं भी जरूर कहूंगा कि तुम्हारे जैसा धर्मात्मा इस दुनियां में होना बड़ा कठिन है। तुम को गलत समझ के हमने बड़ी भूल की।"

फ़ौरन अपने कान पकड़ कर आकाश की ओर देखते हुए मोनाई बोला—"नहीं बेटा, ऐसी बात मत कहो। मेरा घमंड बढ़ेगा। जो कुछ करते हैं, सब

भगवान जी करते हैं। मेरी क्या सकती है। अरे, भगवान जी ने चाहा तो ये दयाल और नवाब, और ये जित्ते बड़े-बड़े जमींदार, राजे-महराजे हैं--ये सब एक दिन मिट्टी में मिल जायेंगे। और इनका मिट्टी में मिल जाना ही अच्छा है। ये बड़े आदमी सब राच्छस हैं, राच्छस। इनके हत्तियाचारों से पिरथी तिराह-तिराह पुकार रही है, बेटा! देख लो, लड़ाइयां हुइ रही हैं। बम, तोपें और मारकाट मच रही है। हमारे इन सुरग जैसे गांवों की आज ये दसा हुइ गई है। बस, अब पाप की हद हुइ गई है। इनका नास करने के लिए भगवान जी जरूर औतार धारन करेंगे। गीता जी में भगवान जी ने कहा है कि 'परतराना साधू नाम और बिनासा होवेगा दुस्टनाम!' सो जरूर होवेगा, बेटा। तुम्हारे कुरान जी में जरूर यही बात लिखी होगी, क्योंकि बेटा, धरम-मजब तो सब भगवान जी के बोल हैं, सब में एक ही बात लिखी है। अब तो हम गरीबों का सुराज होवेगा, क्योंकि गरीब ही भगवान जी के सच्चे भगत होते हैं। मैं तो, बेटा, भगवान जी के उपदेस पर चलता हूं। तुम लोग मेरे प्यारे हो, ये लोग मेरे दुस्मन हैं। इनका संहार करूंगा तुम्हारा उद्धार करूंगा। अब ये सब चालें जो भगवान जी की दया से बैठ गई तो ठेकेदार, दयाल और नवाब साहब उलट जावेंगे। फिर ठेका भी मैं ही लूंगा। क्या समझे? ठेकेदारी, दूकानदारी और ये औरतों का काम! ये औरतों का काम भी बड़े धरम का है, नूरू! अन्न से बढ़ कर कोई धरम नहीं। इज्जत-आबरू सब इसके पीछे है। और बेसियायें जो पापिनी होतीं तो भगवान जी इन्हें बनाते क्यों? पेट भरने के लिए भगवान जी ने सब करम बनाये हैं। कोई करम करो, मुल भगवान जी का नाम लेते रहो, फिर कोई पाप नहीं है। क्या समझे? जब मैंने गुरू जी की कंठी ली तब ये ग्यान की गूढ़ बातें मेरी समझ में आईं। बस इसीलिए, बेटा, ये सब काम-धंधा फैला के अपना करम करता हूं और आगे भी कुछ दिनों तक करूंगा। तुम सब लोग हुसियार हो। जहां तुम लोगों ने मिल कर सब काम-काज सम्हाल लिया, तो न्याड़ा और उसकी मां को अजीमा के हाथों में सुपुर्द कर के फिर मैं सन्यास ले लूंगा। क्या समझे?"

अज़ीमा ख़ुशामद करता हुआ बोला—"नहीं काका अभी तुम्हारी कुछ उमिर थोड़ी हुई है।"

"नहीं बेटा, फिर तो मैं संन्यास ले लूंगा। करम से धरम में जाऊंगा। कुछ कह लो, ये करम का मारग है बड़ा कठिन। बड़े मायामोह करने पड़ते हैं इसमें। (आह भर कर) भगवान जी, तुम्हीं हो, तुम्हीं हो!"

हच्च से एक डकार आई। भक्तिभाव ने स्थूल रूप धारण कर लिया। पेट पर हाथ फेरते हुए मोनाई बोला—"ससुर खट्टी डकारें आय रही हैं। तुम्हारी काकी ने मीठा भात और लूची बनाई थी आज। जबरजस्ती कर के जादा खिलाय दिया। भगवान जी, भगवान जी!"

मोहनपुर गांव की सीमा निकट आ गई थी। तीनों अपनी एक बहुत बड़ी उलझन को सुलझा कर हलके हो चुके थे, और अब किसी नई बात की खोज में थे। चांदनी रात थी, इस पर ध्यान गया। अपना गांव आ गया था, इस पर ध्यान गया। फ़सल तैयार हो चली थी, इस पर भी ध्यान गया।

अज़ीम बोला—'फसल अच्छी रही है, काका। बाकी कोई काटने वाला नहीं इस साल।"

दस क़दम आगे रास्ते में पांच-छः कंकाल पड़े थे। जानवर मांस चाट चुके थे। मोनाई उन्हें देख कर बोल—'फसल काटने वाले तो ये पड़े हैं, भैया।"

मोनाई ने बहुत गंभीर हो कर कहा था। तीनों मौन हो गये। वे ठठरियों के क़रीब आ पहुंचे थे। चमकते हुए दांतों की पंक्तियां आंखों के गड्ढे, पसलियों के पिंजरे, हाथ-पैरों की हड्डियां—मनुष्य का अप्रत्यक्ष रूप प्रत्यक्ष देख कर तीनों के पैर ठिठक गये। उन अस्थि-पंजरों की आड़ में सत्य ने मानो भागते हुए चोरों को पकड़ लिया। वे सहम गए। यों तो नई बात नहीं, आंखें अरसे से ये ठठरियां देखने की अभ्यस्त हो गई हैं, जगह-जगह दिखाई पड़ जाती हैं। जब तक लाशें जलाने-दफ़नाने की शक्ति रही, लोगों ने उनकी सद्गति कर दी। लेकिन अब तो लोगों से अपने प्राणों का बोझ ही नहीं उठाया जा सकता, फिर लाशें कौन उठाये!

गांव में जगह-जगह ठठरियां बिखरी पड़ी हैं। हड्डियों के टुकड़े और सिरों के गेंद कुत्तों का मनोरंजन बन गये हैं। टूटे, उजड़े हुए मिट्टी के घर खड़ी फसलें और ठठरियों की संख्या में मोहनपुर का वैभव निहित था। सैकड़ों तपस्वियों की जीवन-ज्वाला से तपी हुई भूमि को धुंधली चांदनी की शीतलता और प्रकाश से शान्ति मिल रही थी। धुंधली चांदनी के प्रकाश में ठठरियां रहस्यमयी-सी लगती थीं।

तीनों देखते रहे, पहले मोनाई बोला--"फसलें खड़ी करने वाले तो ये पड़े हैं भैया, फिर काटने कौन आयगा? एक दिन ये भी हमारी-तुम्हारी तरह थे। इनके साथ हमने हाट-रुजगार किया है, हँसे-बोले, उठे-बैठे हैं। इनके साथ लड़ाई-झगड़ा भी किया है; होली-दीवाली और ईद भी मनाई हैं। आज पहचान में भी नहीं आते कि कौन कौन है? भगवान जी, इन्होंने ऐसा कौन-सा पाप किया रहा जो ऐसी मौत पाई? और हमने ऐसा कौन-सा पाप किया रहा जो ये दिन देखना पड़ा।"

मोनाई की आंखों में आंसू छलछला उठे।

अजीम बच्चों की तरह अपने सामने के दृश्य में खो गया था।

नूरुद्दीन को अपनी भूखी मां की याद आ रही थी, जिसे उसने भूख के जोम में गला घोंट कर मार डाला था; बढ़ई मुनीर की याद आ रही थी। मुनीर की बीबी की याद आ रही थी, जिसे उसने पीट-पीट कर तन-फ़रोश बनाया था। उसे मुनीर की मासूम बच्चियों की याद आ रही थी। अजीम से उसने चांद के चूल्हे में जलाए जाने का हाल सुना था, रुकिया की मौत की ख़बर सुनी थी। मुजस्सिम गुनाह बन कर बेशर्मी के साथ अपने को महसूस कर रहा था। उसे अपनों की याद आ रही थी।

अपनी कोमल भावनाओं पर संयम करते हुए मोनाई विचारक बना। बोला--"खरी जिन्दगी तो इन मरने वालों की रही बेटा। ये सदा दुनिया के काम आये। और मरने पर भी काम आय रहे हैं। हमें सिच्छा दे रहे हैं—इस माटी का क्या मोह, मूरख? हंस अकेला जाई बाबा, माटी ससरी को

कोई पहचानेगा भी नहीं। बस करम किया रह जावेगा। करम कर प्रानी, अपना करम किये जा।"

अज़ीम और नूरुद्दीन दोनों चुपचाप खड़े थे। एक क्षण रुक कर मोनाई बोला--"एक बार कलकत्ते के इस्पताल में गया था मैं। वहां ऐसे ढांचे देखे थे हमने। डागदरों के लड़के इससे पढ़ते हैं।"

नूरुद्दीन--कलकत्ते का अनुभवी--फौरन बोल उठा--"अरे, मिडकल कालिज में सारी पढ़ाई इसी पर होती है। मैंने अपनी आंखों से देखा है। और मसमरीजम--जादू वालों की दूकानों में मैंने बहुत-से देखे हैं। इन्हें देख के मुझे डर नहीं लगता, काका!"

अज़ीम भी फ़ौरन अकड़ कर बोला--"अरे डर-वर क्या, मैं तो भूतों की मसजित में रात भर सोया हूँ। मुझे इनसे जरा भी डर नहीं लगता।"

मोनाई शान्त स्वर में कहने लगा--"इनसे काहे का डरना बेटा? ये तो जिन्दगी भर आप ही दूसरों से डरते रहे। डरते-डरते मर गये बिचारे। मेरी ये इच्छा हो रही है, अज़ीमा, कि इन विचारों की सदगती करा दी जाय। जब तक जिये, दूसरों के काम आये; और मर जाने पर भी दूसरों के काम आवें, यही मैं चाहता हूँ। न जाने कित्ते लड़के इनसे सिच्छा पायेंगे; न जाने कित्ते-कित्ते बसीकरन मंत्र इन पर सिद्ध किये जायेंगे।...पुन्न का पुन्न है। नूरू, कलकत्ते तो जा ही रहे हो बेटा, भाव पूछते आना इनका। क्या समझे?"

नूरुद्दीन और अज़ीम चमक उठे। बड़े उत्साह के साथ अज़ीम बोला--"वाह काका, कमाल की बात सोची है तुमने। हमारा तो खयाल भी नहीं पहुँच सकता था। क्यों नूरू?"

नूरुद्दीन तो मोनाई का भक्त हो गया था। गद्गद् होकर बोला--"अरे भाई, ये काका की खोपड़ी है। ये ज़माने भर के तजरबेकार की निगाहें हैं, जो मिट्टी में भी सोना ढूंढ़ लेती हैं। मैं कल ही कलकत्ते जाऊँगा काका। ये तुमने बड़ी दूर की सोची है। मगर ले कैसे जायेंगे, काका?"

मोनाई बोला—"ये फिकर तुम्हारी नहीं, हमारी है। हम कर लेंगे इसका इंतजाम। और सुनो बेटा! आओ, चलते आओ। मैं ये कह रहा था नूरू, कि अब कुछ साझे-सौदे की बात भी हुइ जाय। रुजगार-बैपार में हिसाब कौड़ी का और बकसोस लाख को। क्या समझे?"

नूरुद्दीन ज़रा कुछ लापरवाही दिखाने का स्वांग करते हुए नीम रज़ामंदी से सिर हिला कर बोला—"हां, ये तो एक तरह से ठीक है, काका। मगर...."

इसकी तरफ़ ध्यान न देते हुए मोनाई कहने लगा—"नवाब साहब से जो पान सौ की रकम तुम्हें गुंडों के लिए मिली है, उसमें तुम जो बचा लो, वह तुम्हारा है। उसमें अजीमा का हिस्सा नहीं रहेगा।"

मोनाई मूंछ खुजलाने के बहाने जरा रुका और तिरछी नजर से अज़ीम को देखा। अज़ीम चुप रहा। मोनाई ने आगे बात बढ़ाई—"यही नहीं, आगे भी जो तुमको हजार पान सौ मिल जाय, सो भी तुम्हारा।"

नूरुद्दीन ज़रा बनकर बात काटते हुए बोला—"नहीं काका, अजीमा का भी हक है।"

मोनाई तड़से बोल उठा—"देखो बेटा, बुरा न मानना नूरू! अजीमा का क्या हक है और क्या नहीं, इसका न्याव हमारे सामने करने जोग तुम नहीं हो। तुम अजीमा के दोस्त हो, इसलिए मेरा धरम है कि तुम्हारा भी भला चेतूं। बाकी देखो, बुरा मानने की बात नहीं है। अजीमा के भले और हक की बात जो मैं सोचूंगा, वो दूसरा कोई नहीं सोच सकता। क्या समझे? अजीमा मेरे दोस्त का बेटा, मेरा सागिरद है। भगवान जी जानते हैं, इसे और न्याड़ा को मैंने कभी अलग करके नहीं माना। इसलिए मैं जो कहता हूं वह सुनो। नबाव साहब के पैसे में अजीमा को मैं कोई हक नहीं देता। औरतों के मामले में छः-छः आने तुम दोनों के, चार आने मेरे। इन ठठरियों के मामले में भी यही फैसला रहेगा। ठठरियों में जो मेरी चवन्नी रहेगी, उसमें से एक आना मैं अजीमा को दूंगा, एक आना पुन्न के खाते में और दो आने मेरे। क्या समझे?"

"ठीक है काका। हमको खुसी है।" नूरुद्दीन संतुष्ट होकर बोला।

मोनाई फिर कहने लगा—"अच्छा, अब रही मेरी दूकान, सो उसमें अजीमा की चार आने की पत्ती रहेगी। और छावनी का ठेका जो लूंगा, उसमें दो आने तुम्हारे, चार आने अजीमा के और दस आने मेरे। देखो भाई, मैं कुछ अन्याव तो नहीं कर रहा हूं? तुम्हें कुछ सक-सुभा होय तो अभी मेरे मुंह पर ही कह दो। मैं बुरा न मानूंगा। बाकी पेट में न रखना। क्या समझे नूरू?"

नूरुद्दीन बांछे खिलाता हुआ, हाथ जोड़कर बोला—"नहीं काका, अल्ला कसम, मैं तो बहुत खुस हूं। तुम्हारे फैसले में कभी गैर-इंसाफी नहीं हो सकती। सच कहता हूं अजीमा, आज से मैं तो काका का गुलाम हो गया हूं, अपनी कसम!

"और अजीमा!" मोनाई बोला—"जो हुइ गया उसे भूल जाओ। भगवान जी जानते हैं, मेरे मन में तुम्हारी तरफ से जरा भी मैल नहीं है।"

मोनाई का घर दिखाई पड़ने लगा था।

अजीम बेहद शर्मिंदा हो रहा था। बड़ी दीनतापूर्वक सिर झुकाकर बोला—"मेरे मन में अब कुछ नहीं है काका। उस दम न जाने मेरे सिर पर कौन-सा भूत सवार हो गया था। अल्ला गवाह है, मेरी रूह बड़ी तकलीफ पा रही है इस दम।"

"तू तो सिड़ी है।" मोनाई ने हंस कर अजीम के गाल पर एक हलकी-सी चपत लगा दी। वह अपने घर के दरवाजे के सामने था। कहने लगा—"चले आओ, अपनी काकी से भी मिलते चलो। नूरुद्दीन बुरा न मानना बेटा अब इस दम तो मैं अजीमा को अपने साथ लिए जा रहा हूं। बहुत दिनों बाद—तुम तो समझते ही हो बेटा!"

"हां, हां, काका, मुझे खुसी है। अच्छा तो मैं चलता हूं। सबेरे मिलूंगा।" नूरुद्दीन बोला।

"अच्छी बात है, सबेरे जरूर आना। बस, फौरन से पेस्तर अब काम पर जुट जाना है। क्या समझे? अच्छा बेटा, जीते रहो, भगवान जी तुम्हें बनाये रखें" कहकर मोनाई अपने घर की कुंडी खटखटाने लगा।

मोनाई का प्रेमपात्र बनकर अज़ीम ज़रा बड़प्पन का भाव लेकर नूरुद्दीन से बोला—"सबेरे मिलूंगा, नूरू। अच्छा सलाम भाई।"

मोनाई की पत्नी ने दरवाज़ा खोला। अज़ीम को पति के साथ देखकर ज़रा चौंकी। अज़ीम के प्रति उसकी घृणा चेहरे पर झलक गई। उसके ही कारण बूढ़े पति की बड़ी लाड़ली पत्नी को पति के हाथों मार खानी पड़ी थी और उसे तीस हज़ार रुपयों का ग़म सहना पड़ा था।

काकी से तीस हज़ार रुपया ले जाने के बाद अज़ीम आज पहली बार सामने आया था। उसकी आंखें इस वक्त झुक रही थीं।

मोनाई ने परिस्थिति को दोनों तरफ़ से सम्हाल लिया। अज़ीम के प्रति उसकी काकी के प्रेम का बखान करना शुरू किया। बहुत याद करती रही है। काकी के हाथ का मीठाभात खाने के लिए इसरार किया। अज़ीम की नादानी कोई बड़ा गुनाह नहीं, बच्चे कर ही जाया करते हैं। मरने के पहले वह अज़ीम को कुछ न-कुछ अवश्य ही दे जाता, सो उसका हक़ था। फिर अज़ीम को बतलाया कि वह दयाल को मुसीबत में डालने के बाद छेदासिंह को मिला कर उसके गोदाम में चोरी भी कराने वाला है। उसमें भी अज़ीम का साझा रहेगा। चोरी करके रातोरात नावें लदवानी होंगी।

उसने यह भी बतलाया कि चोरी पाप नहीं है। दयाल की डाकेज़नी का जवाब है। अज़ीम को आगाह किया कि नूरुद्दीन को इन सब बातों की हवा भी न पहुंचने पाये। इसके बाद मोनाई ने अज़ीम और नूरुद्दीन की दोस्ती को भी नापसंद किया—"उसका तुम्हारा कौन साथ? वह उचक्का है; तुम सरीफ हो, बैपारी हो। काम निकाल लेना दूसरी बात है, मुदा लफंगों का साथ करने से बैपारी की साख उठ जाती है। क्या समझे?"

अज़ीम को उसने फिर से शीशे में उतार लिया। नया उत्साह देकर उसे विदा किया। मोनाई की पत्नी को अज़ीम पर विश्वास नहीं रहा था। उसके प्रति वह अपना क्रोध नहीं मिटा सकती।

मोनाई ने समझाया--"तू तो निरी पगली है। अरे, जो इस दम मिलता नहीं तो मैं ठंडा पड़ जाता। ये लोग नबाब साहब के पैसे पर गुंडागिरी करानेवाले रहे। हिन्दू मुसलमान वाली चालें मेरे साथ भी चल रहे थे। दयाल का क्या है, बड़ा आदमी है, मगर मैं तो भिखारी हो जाता। अब इसको दम-पट्टी दे के साथ लिया है। और वो चाल चली है कि सदा के लिए खटका ही मिट जायगा। दयाल ने जो इत्ते-इत्ते हत्तियाचार मेरे ऊपर किये हैं, सो अब वह उसकी सजा पा जायगा। जब वो फंस जायगा, तब नूरू और अजीमा को भी अलग अलग फांस के मिट्टी में मिला दूंगा। जो नुकसान सहा है उसे ब्याज समेत वसूल कर लूंगा। भगवान जी सदा सहाय रहें, कलकत्ते में महल चुनवाऊंगा। क्या समझती हो तुम ! और तुम्हें तो गहनों से लाद दूंगा, मेरी लाड़ो। मोटर में बिठाय के कलकत्ते की सैर कराऊंगा तुम्हें। ज़रा इधर एक नज़र देख लो मेरी तरफ। ए, तुम्हें मेरी कसम !"

बूढ़े मोनाई की तीसरी पत्नी कनखियों से उसकी तरफ़ देख कर मुस्करा दी।

तीसरी पत्नी का कौतूहल बड़े-बड़े सवाल करता था, जिसके आधार पर मोनाई के नये नये सपने बनते थे। बस गांव में यह आखिरी बाजी जीत लेने के बाद गांव का काला मुंह करके कलकत्ते चला जायगा। वहीं रुजगार फैलेगा। हम तुम सेठ-सिठानी बनेंगे। नौकर-चौकर रहेंगे, मोटर रहेगी, कलकत्ते में बड़े बड़े झंडे गाड़े जायेंगे। भगवान जी ने चाहा तो एक बार कलकत्ते के बड़े बड़े धन्ना-सेठों में अपनी साख पुजवाय लेऊंगा। तुम समझती क्या हो, मेरी रानी ! अरे, तुम्हें तो मैं सोने में मढ़वाय के अपनी तिजोरी में बैठाय दूंगा, मेरी मैना !

चांदनी रात की रोमानी फिज़ां मरभुखों, मुर्दों के इस गांव में सब तरफ़ से मायूस हो कर मोनाई के आंगन में खिलखिला रही थी।

बाहर, चारो दिशाओं से कुत्तों के भौंकने और सियारों की मनहूस आवाज़ें आ रही थीं। कहीं से हिस्टीरिया में चीखते हुए किसी इन्सान का

दर्द रात के सन्नाटे को चीरता हुआ हवा में कंपकंपी पैदा कर देता था। वर्ना यों मुर्दों की बस्ती में तनखसोट .ख़ूंख़ार जानवर ही अपनी आवाज़ बुलंद कर रहे थे।

मौत की आख़िरी घड़ियों में, जब कि इन्सान शांति से दम तोड़ना चाहता है, कुत्ते और सियार उसे इस तरह मरने की मुहलत नहीं देते। जान निकलने के पहले ही कुत्तों के पैने दांत शरीर की चीर-फाड़ शुरू कर देते हैं। दम के दम में आदमी लाश, और लाश से ठठरी में बदल जाता है।

बेनी कांपते और डगमगाते पैरों से चला आ रहा था। उसके हाथ में एक गंडासा है। उसकी नज़र एक लाश को खाते हुए कुत्तों के झुंड पर पड़ती है। कुत्तों को इस तरह पेट भरते हुए देख कर वह बर्दाश्त नहीं कर सकता। उसे कुत्तों पर ग़ुस्सा आया। घर जाते-जाते वह लौट पड़ा। न तो कमज़ोर पैर क़ाबू में थे और न दिमाग़ ही; रूहानी जोश से उसके पैरों में आंधियां और भूचाल बंध गये थे। गंडासा लिये हुए बेनी कुत्तों के मजमे पर झपटा। भरपूर हाथ पड़ा। एक का सिर साफ़ कट गया, दो-तीन ज़ख़्मी हुए और बाक़ी तमाम कुत्ते चिल्लाते हुए भाग गये।

अरसे से कुत्तों को इन्सान को मारने की आदत पड़ गई थी, उनसे मार खाने की नहीं। कुत्ते फिर झपटे। एक की गर्दन पर पूरा वार बैठा, पर बेनी अपने ही जोम में मुंह के बल लाश पर गिरा। किसी आदमी की अधखाई लाश थी। होठों पर कच्चे मांस के एक लोथड़े ने बेनी को नया ज़ायक़ा महसूस कराया। वह अभी ठीक तरह से इस नये अनुभव को पहचान भी नहीं पाया था कि कुत्तों ने उसकी टांग पर हमला बोल दिया। बेनी बड़ी ज़ोर से चीख़ उठा। उसकी चीख़ में जो शक्ति अपना परिचय दे रही थी उसी ने उसे उठने का साहस दिया। दोनों हाथ टेक कर उसने अपने को उठाने की कोशिश की। एक हाथ उस अधखाई लाश में अंदर तक घुस गया। हाथों में छीछड़े-छीछड़े ही लग गये, लेकिन बेनी को इसकी ख़बर न थी, कोई परवाह न थी। गंडासा उठा कर उसने पीछे उलट कर फेंका। कुत्ते भागे। बेनी लड़खड़ाता

हुआ उठा। उसकी आंखों से ख़ून बरस रहा था। उसका हाथ ख़ून और छीछड़ों से सना हुआ था। उसके होंठों पर आदमी का ख़ून लिपटा हुआ था।

बेनी किसी तरह अपने घर की तरफ़ चला।

बेनी का घर अभी भी बाकी था। सर पर छप्पर न था, न सही, मगर चार दीवारें तो बाकी थीं। घर के दरवाजे और बांस-बल्लियां निकाल कर वह बहुत पहले बेच चुका था, फिर भी उस घर के लिए उसे प्यार था। लोगों ने घरों में रहना छोड़ दिया था, मगर बेनी ने न छोड़ा। अपनी नवविवाहिता पत्नी के साथ वह वहीं रहा।

अकाल शुरू होने के दो महीने पहले बेनी का विवाह हुआ था। वह अपनी पत्नी के सौन्दर्य पर मुग्ध था। उनकी पत्नी भी जी-जान से उसे चाहती थी। गांव भर में बेनी बंसी बजाने में अपना सानी नहीं रखता था। नवोढ़ा को इस पर अभिमान था। ब्याह की मेंहदी का रंग भी फीका नहीं पड़ा था कि दुनिया का रंग बदल गया। गांव उजड़ने लगा। मृत्यु की विभीषिका सारे गांव को निगलने लगी। शरीर की शक्ति क्रमशः क्षीण होने लगी। एक दूसरे के प्रति अपने प्रगाढ़ प्रेम से अकाल-पीड़ित नवदम्पत्ति ने जीवन के लिए एक नई प्रेरणा प्राप्त की। संसार से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर वे दोनों सब से दूर अपने घर में ही रहने लगे। एक क्षण के लिए भी एक दूसरे से अलग न होते थे। लेकिन आज चार रोज से बेनी की पत्नी का बोल बंद हो गया था। हड्डियों के ढांचे में एक धुकधुकी-सी चला करती है जिसे देख-देख कर बेनी की व्यग्रता बढ़ती जाती है। कल तो उसकी पत्नी ने आंखें भी नहीं खोलीं। पत्नी के बिछोह की कल्पना बेनी को जीने नहीं देती। कल से वह घर से भागा-भागा फिर रहा है। घर आता है तो पत्नी की मृत्यु को निकट आते देख कर भय से पागल होने लगता है। बाहर की दुनिया उसे और भी डरावनी नजर आने लगती है।

इस वक्त वह परेशानी की हालत में घर से बाहर चला आया था। उसके हाथ-पैरों में जरा भी दम नहीं था। मगर एक दर्द, जो भूख की पीड़ा से

भी ज़्यादा तेज़ और तीखा था, उसे अपनी शक्ति दे कर चला रहा था। बेहोशी की हालत में लड़खड़ा कर चलते हुए शराबी की तरह वह निरुद्देश्य-सा बहका चला जा रहा था। मोनाई का मंदिर सामने था। मंदिर के पास ही एक ताज़ी कटी हुई गाय पड़ी थी। ख़ून से धरती लाल थी। सिर अलग, धड़ अलग। ज़रा दूर, मंदिर की दीवाल के निकट ही एक गंडासा पड़ा था। ख़ून देख कर बहके हुए बेनी की निगाहें जमीं। वह ज़रा देर तक खड़ा-खड़ा देखता रहा। पैर इतनी देर तक खड़े रहने के कारण जवाब देने लगे। बेनी का ध्यान फिर बंटा। उसकी घर चलने की इच्छा हुई। चलते-चलते उसने यों ही गंडासा उठा लिया था और उसमें लगे हुए ख़ून पर अपनी आंखें जमा कर वह चलने लगा था, तभी उसकी कुत्तों से मुठभेड़ हुई।

बेनी घर पहुंचा। उसकी पत्नी की सांस अभी भी मांस की झिल्ली में धड़कती हुई दिखाई दे रही थी। बेनी उसके सिराहने बैठ गया। वह पथरा गया था। चुपचाप बैठा-बैठा अपनी पत्नी की तरफ़ देखता रहा। दिमाग़ बड़ी तेज़ी से दौड़ रहा था--"यह मर जायगी, मुझसे छूट जायगी, सदा के लिए बिछड़ जायगी, फिर कुत्ते खा जायेंगे। नहीं, मैं इसे ऐसी जगह छिपा कर रखूंगा, जहां कुत्ते देख भी न पायेंगे। मैं इसे अपने कलेजे में छिपा कर रखूंगा।"

बेनी की आंखें चमकने लगीं। नई स्फूर्ति जागने लगी। उत्साह मानुषिकता की सीमाओं को लांघ कर प्रबल होने लगा। उसे इस ख़याल से ख़ुशी होने लगी कि यह अगर मुझमें समा जाय तो फिर कभी दूर न हो। यह अगर कलेजे में समा जाय तो फिर कुत्ते नहीं खा सकेंगे। मगर यों तो कलेजे में समा नहीं सकती। और अगर नहीं समा सकती तो ज़रूर मर जायगी और कुत्ते खा जायेंगे।

बेनी के मस्तिष्क पर यह समस्या सवार हो गई कि कैसे वह अपनी पत्नी को मरने और कुत्तों द्वारा खाये जाने से बचाये। फ़ौरन ही उसका हल भी सूझ गया। इसके टुकड़े-टुकड़े कर के इसे कलेजे में छिपा लिया जाय,

बस यह बच जायगी। मौत इसे देख नहीं पायेगी, कुत्ते इसे खा नहीं सकेंगे। यह ख़याल बेनी को स्फूर्ति और प्रसन्नता देने लगा। वह तेज़ी से उठा। उसने अपना गंडासा लिया। सांस उसकी पत्नी की छाती में बड़ी धीमी चल रही थी। बेनी ने सोचा, जल्दी करना चाहिए। मरने से पहले ही इसे काट कर कलेजे में रख लूं, नहीं तो यह मर जायगी।

गंडासे का पूरा वार गले पर पड़ा। अपने अंधाधुंध जोश में वह लाश को बराबर काटता ही गया, यहां तक कि थक कर गिर पड़ा। मांस के टुकड़े उसकी मुट्ठी में आये। बेनी ने धीरे से हाथ उठा कर उन्हें देखा। आंखों में फिर नई चमक आई। थोड़ी देर पहले बाहर कुत्तों को मारते वक्त मांस के छीछड़े उसके होठों से लगे थे। उसे एक नया अनुभव मिला था। अपने हाथ में पत्नी के शरीर के टुकड़े देख कर बेनी को नया उत्साह आया। वह अपने हाथ को मुंह के करीब लाता गया। आंखों की चमक बराबर बढ़ रही थी। बेनी ने उन टुकड़ों को अपने मुंह में भर लिया और चबाने लगा।

भूख का पागल इन्सान अपने को मार कर भी जीवन की भूल-भुलैया में भटकने की इच्छा करता था। भूख से लड़ते-लड़ते वह क्रमशः भूख, पीड़ा शरीर, बुद्धि और मृत्यु की चेतना से परे जा कर जीवन से लड़ रहा था। मनुष्य का यह संघर्ष स्वयं उसके लिए अर्थहीन हो चला था। उन्माद से भरे हुए कृत्य निरंतर बढ़ते चले जा रहे थे।

मोनाई के मंदिर में पुजारी जी रहते हैं। उनके चार बच्चे हैं, विधवा बहिन है, पत्नी है, और ब्राह्मण देवता अपने इतने बड़े परिवार को लेकर भूख से लड़ रहे हैं।

ब्रह्मभोज के बाद से मोनाई ने मंदिर के भोग आदि की व्यवस्था में कोई भाग नहीं लिया। मोनाई तो उसी रात बाहर चला गया था। उसके तीसरे रोज़ मोनाई की पत्नी ने तीस हज़ार रुपए खोये। उसके बाद जब पुजारी जी गये तो उसने लाखों गालियां भगवान को सुनाईं; देवी, देवता और बामन-ठाकुर को जी भर कोसा; और फूटी कौड़ी देने से भी इनकार कर दिया।

भगवान भूखे मरने लगे। उनके पुजारी का परिवार भी भूखा मरने लगा। पहले अपने बर्तन भांडे बेचे, फिर ठाकुर जी की पूजा के बर्तन भी बेच दिये। पीतल के ठाकुरों का कुनबा भी दूकानदार के घर पहुंच गया। मंदिर में बेचने लायक अब कोई सामान न था। घर के सात प्राणी, पत्थर के राधा-कृष्ण और मंदिर की गाय तथा उसका बछड़ा भूख से छटपटा कर दिन और रातें गुज़ार रहे थे। मोनाई आ भी गया, मगर भोग का इंतज़ाम फिर भी न हुआ। मोनाई अज़ीम और अनाथालय के चक्कर में पड़ गया। पुजारी एक बार उसके पास जाकर गिड़गिड़ाया। मोनाई ने प्रस्ताव किया—"औरतों को अनाथालय में भेज दो। और भगवान को भोग की क्या जरूरत है। वो तो भाव के भूखे हैं। उनके लाखों भगत यों रोज ही इस तरह भूखों मर रहे हैं। वे भला भोजन करेंगे!"

सब की भूख सहन हो जाती थी, मगर अपने चारों बच्चों और गाय के बछड़े को भूख से तड़पता देख कर पुजारी त्रस्त हो उठता था। दिन पर दिन बच्चे सूखते जाते थे। गांव के दूसरे बच्चों की तरह उसके बच्चे भी दिन पर दिन मौत के निवाले बनते चले जा रहे थे। हार कर एक दिन उसने मोनाई के प्रस्ताव को स्वीकार करना चाहा। अपनी बहिन और पत्नी को मोनाई के अनाथालय में भेज कर चार मुट्ठी चावल पाने की इच्छा की। उस दिन पति-पत्नी में भयंकर कहा-सुनी हुई। पुजारी हठ कर के मोनाई के आदमियों को लाने गया। लौट कर देखा, कोठरी में दो नंगी लाशें टंगी थीं। पुजारी की पत्नी और बहिन ने अनाथालय के भय से अपने तन की फटी धोतियां उतार कर फांसी लगा ली थी। अबोध बच्चे आश्चर्य से यह तमाशा देख रहे थे।

पुजारी ने लौट-कर इस दृश्य को देखा। जीने की समस्या हल होने के बजाय और भी उलझ गई। पत्नी और बहिन को खोकर पुजारी पश्चाताप की अग्नि में जलने लगा। बच्चों को बचाने के लिए वह प्रतिक्षण चिंता से पीड़ित रहने लगा। समस्या कहीं भी हल होती न दिखाई देती थी और बच्चे दिन पर दिन मृत्यु के निकट पहुंचते जा रहे थे। अपनी भूख की पीड़ा

को पुजारी बच्चों की भूख में मिला कर खो देता था; और इस खो देने के कारण उसकी पीड़ा प्रति पल, प्रति क्षण दुगनी होती जा रही थी।

पुजारी त्रस्त हो उठा। एक दिन उसे विचार आया, अपने बचाव के लिए हत्या करना पाप नहीं। विचार की क्रिया और प्रतिक्रिया जल्दी-जल्दी उसके मस्तिष्क को उलझाने लगी। उसकी नजर सामने बंधी गऊ और उसके बछड़े पर गई। युगों से बंधे मन को, ब्राह्मणत्व और हिंदुत्व की चेतना को पुजारी की भूख झटका देकर तोड़ देना चाहती थी। संस्कारों के मोह को वह भूख की तलवार से काट देना चाहता था, परंतु संस्कार भी कुछ कम प्रबल न थे। पत्नी और बहिन की मृत्यु, उसके हिंदू हृदय में गोमाता का स्थान और उसके पूजा करने के पेशे ने इस भूख से लड़ते हुए इन्सान को बुरी तरह जकड़ रखा था। उसे किसी करवट भी चैन न मिलता था। पुजारी हार-हार जाता था। पाप की भावना से उसका मन बर-बार थपेड़े खाकर तड़प उठा। राधा-कृष्ण की मूर्ति के सामने खड़े होकर वह अपने को एकाग्र करना चाहता था, वह इस पाप की भावना को अपने मन से निकाल देना चाहता था—"तुम्हीं बतलाओ, गोपाल, क्या यह पाप है ? बच्चे फिर खायेंगे क्या ?"

गोपाल चुप थे। उनका मुस्कराता हुआ चेहरा वैसा का वैसा था।

पुजारी खीझ उठा—"तुम पत्थर के हो। पीतल के मोल भी तो नहीं बिक सकते। किसी काम के नहीं, किसी अर्थ के नहीं।"

भगवान का पुजारी अपना सम्बंध विच्छेद करने के लिये भगवान से ही विद्रोह करना चाहता था। वह अपने साथ जबर्दस्ती कर रहा था। हत्या के लिए वह अपने विचारों का समर्थन चाहता था—न्याय चाहता था, जो उसे स्वयं अपने से ही नहीं मिल रहा था।

विद्रोह की भावना प्रति पल जोर पकड़ रही थी, क्योंकि संस्कारों की चेतना एक क्षण के लिए भी लुप्त नहीं हो रही थी। दिन भर इसी संघर्ष बीत गया। क्षण में गऊ वाले दालान की तरफ़ बढ़ता, फिर बाहर चला आता। कभी बच्चों को जोर से छाती से चिपटा लेता, फिर गुस्सा चढ़ता। कभी भग-

वान को कोठरी में जाता, हाथ जोड़ता, प्रार्थना करता, रोता-गिड़गिड़ाता, और फिर गालियां देने लगता और आंगन में आ कर टहलने लगता। सारा दिन चक्कर काटते बीता। पुजारी के ब्राह्मणत्व, और हिंदुत्व के संस्कारों ने हार न मानी, न मानी। उसका क्रोध बढ़ता गया। ठाकुर की कोठरी में जा कर उसने पहले तो भगवान के चरणों में अपना सिर फोड़ना शुरू किया और फिर भगवान को खींच कर पीटना शुरू किया।

इस बार उसने ज़बर्दस्त विद्रोह किया। अटूट हठ के साथ वह गाय के दालान में गया। भूख से दुबली गाय रस्सी से बंधी बैठी थी। भूख से बिल-बिलाता हुआ बेज़बान बछड़ा आंखें बंद किये हुए पड़ा था। कुट्टी काटने का गंडासा ताक पर रखा था। पुजारी गाय की तरफ़ गया। उधर से हिम्मत टूटी। फिर बछड़े की तरफ़ आया। बछड़े की तरफ़ जाते ही उसे अपने बच्चों का ध्यान आया। पुजारी का हठ फिर टूटने लगा। लेकिन वह नहीं चाहता था कि उसका हठ टूट जाय, उसके बच्चे भूखे मर जायं। उसने तेज़ी के साथ गंडासा उतारा, बछड़े को खोलने की हिम्मत फिर भी न हुई। उसने गाय की रस्सी को खोला और उसे घसीटने लगा। गाय रंभाती हुई उठी। गाय बारबार रंभाने लगी। वह दयनीय आंखों से पुजारी को देख रही थी। शारीरिक कमज़ोरी, मन की निर्बलता और हठ पुजारी को तोड़ डाल रहा था। और इसी हार पर विजय पाने के लिए वह ज़बर्दस्ती गाय को घसीटता हुआ मंदिर के बाहर ले चला। मंदिर में गो वध करने की हिम्मत उसे नहीं हो रही थी।

उन्माद में पुजारी गाय को घसीटता हुआ ले जा रहा था। गाय कम-ज़ोर थी। मृत्यु का भय जानवर के दिल को दबोच कर उसके पैरों को और भी कमज़ोर बना रहा था। किसी तरह दस क़दम चल कर गाय ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। वह गिर पड़ी। पुजारी उसे गांव से बाहर ले जाना चाहता था। गाय को मार कर उसके मांस से अपने बच्चों का पेट भरने का निश्चय यद्यपि वह कर चुका था, फिर भी मन की गहराई में सब कुछ अनि-

श्चित था। केवल संस्कार अपनी निश्चल गति से जागरूक थे। गाय ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। इस इनकार में पुजारी की हार थी। यह हार पुजारी को क़तई नापसंद थी। उसे इससे घृणा थी। उसे गाय से घृणा हो गई। क्रोध आया। उन्माद जागा। उसने अपनी पूरी शक्ति लगा कर ज़मीन पर बैठी हुई गाय की गर्दन पर गंडासे से वार किया। गाय ज़ोर से चीख़ पड़ी। ख़ून के फौवारे छूट निकले। वह ख़ून, मरती हुई गाय की छटपटाहट, दर्द भरी आखें, पुजारी पर जादू का-सा असर करने लगी। ख़ून बहते-बहते ज़मीन पर जमने लगा। गाय की छटपटाहट बंद हो गई। ब्राह्मण पुजारी के संस्कार उग्र रूप से मन को तोड़ने लगे। पुजारी ने गंडासा छोड़ दिया। उसकी इच्छा ज़ोर से चीख़ पड़ने की हुई, परंतु वह चीख न सका। उन्माद चला गया, ज्ञान फिर जागा। पुजारी की आंखों से आंसुओं की अविरल धारा बह निकली। ज्ञान की यह चेतना उन्माद से अधिक पीड़ा देने वाली थी—"माता, मुझे क्षमा कर। भगवान मुझे क्षमा कर।" फिर उसके मन में विचार आया—"नहीं, पाप क्षमा नहीं किया जाता। उसका प्रायश्चित करना पड़ता है। मैं प्रायश्चित करूंगा। इसी गंडासे से अपनी गर्दन काटूंगा।" पुजारी ने फिर गंडासा उठा लिया। सहसा उसके मन में विचार आया—"बच्चों का क्या होगा?" और उसने निश्चय किया कि वह बच्चों को मार कर स्वयं अपना अंत कर देगा। मरी हुई गोमाता के चरण छू कर वह गंडासा लेकर मंदिर की ओर चला। प्रायश्चित की 'पवित्र' भावना उसके मन को शांति दे रही थी, उसे दृढ़ बना रही थी।

कैसे वह अपने हाथ से अपने बच्चों को मारेगा? कैसे गंडासा उठेगा? मन कमज़ोर पड़ने के पहले ही पुजारी का निश्चय दृढ़तर होता जा रहा था। मंदिर के दरवाजे पर पहुच कर पुजारी के पैर फिर ठिठके। वह फिर कमज़ोर पड़ने लगे। गंडासा ले कर वह मंदिर के बाहर ही टहलने लगा—"यदि मैं स्वयं प्रायश्चित न करूंगा तो ईश्वर दंड दे कर मुझसे प्रायश्चित करायेंगे।'

संस्कारी, आत्माभिमानी ब्राह्मण को दंड भयानक और साथ ही अपमानजनक प्रतीत हो रहा था। पेट के लिए उसकी पत्नी और बहिन को वेश्या

बनाने का प्रस्ताव ही उन दोनों के आत्मघात का कारण बना। ब्राह्मण पुजारी का रोम-रोम इस महादंड की भयंकर ज्वाला में जल रहा था। प्रायश्चित करना ही उचित है। किंतु अपने बच्चों को गंडासे से वह कैसे मार सकेगा? गाय की हत्या का दृश्य उसे कायर बना रहा था। और वह कायर नहीं बनना चाहता था।

सहसा उसका ध्यान कनेर की झाड़ी की तरफ़ गया। ठाकुर के पूजा के लिए मंदिर के बाहर कुछ फूलों के झाड़ लगा रखे थे। इधर अर्से से देख-भाल छूट जाने के कारण क्यारियां सूख चुकी थीं। कनेर को देखते ही सहसा पुजारी को ध्यान आया कि इसकी जड़ों में विष होता है। विष द्वारा अपने बच्चों तथा अपने आपको मारना उसे सरल प्रतीत हुआ। पुजारी प्रसन्न हुआ। उसने भगवान को धन्यवाद दिया। उसमें नया उत्साह पैदा हुआ। गंडासे से वह कनेर की छोटी-सी झाड़ी को काट कर उनकी जड़ें खोदने लगा। हाथों की शक्ति जवाब देने लगी थी, परंतु प्रायश्चित का उत्साह उसे बल दे रहा था। उसने सारी जड़ें बटोर लीं। क्यारियां की सूखी हुई टहनियां भी बटोर कर वह मंदिर में गया। गंडासा बाहर ही पड़ा रहा।

चूल्हा बहुत दिनों से ठंडा पड़ा था। पेड़ की टहनियां पुजारी ने चूल्हे में रख दीं। ताक से दियासलाई की पेटी उतारी। आठ-दस तीलियां अभी भी बची थीं। पुजारी ने चूल्हा सुलगाया। मिट्टी का छोटा-सा घड़ा पानी से आधा भरा था। पुजारी ने उसे चूल्हे पर रख दिया। जड़ें उसी में डाल कर पुजारी अति शांत भाव से पकते हुए काढ़े की तरफ़ देखने लगा। सूखी टहनियां जल्दी-जल्दी जल रही थीं। पुजारी चूल्हे में बराबर नई टहनियां झोंकता जाता था।

काढ़ा पक कर तैयार हो गया। पुजारी पहले से भी अधिक शांत हो गया। उसकी दृढ़ता और भी बढ़ गई थी। उसने घड़ा उठाया। ठाकुर जी की कोठरी की तरफ़ बढ़ा। ठाकुर जी के सामने घड़ा रख कर उसने हाथ जोड़े—
"गोपाल, बहुत दिनों से तुम्हारा भोग नहीं लगाया मैंने। आज सब दिन की कसर पूरी हो जायगी।"

उसने राधा-कृष्ण के चरणों पर वह घड़ा रख दिया और उनके होठों पर थोड़ा-सा ज़हर लगा दिया।

फिर बच्चों को जगा कर लाया। सब से छोटे को गोद में उठाया। खाने पीने के नाम पर कोई चीज़ आज उन्हें बहुत दिनों के बाद मिल रही थी। बच्चे बहुत ख़ुश हो रहे थे, बेताब हो रहे थे।

बाप का दिल फिर डगमगाने लगा। पुजारी ने अपने को साधा। घड़े पर ढके हुए मिट्टी के सकोरे में कनेर का काढ़ा भर कर, अपनी गोद में बैठे हुए बच्चे को उसने अपने हाथ से ज़हर पिलाना शुरू किया। बच्चा बड़े संतोष से ज़हर पी रहा था। बाप की आंखों में आंसू छलछला आये। पेट भर चारों बच्चों ने ज़हर पिया। काढ़ा ख़त्म होने लगा। वह ख़ुद अपने लिए भी तो चाहता था। उसका अपना भी स्वार्थ तो था। उसने ज़बर्दस्ती बच्चों को पीने से रोक दिया।

इतने में छोटा बच्चा पेट पकड़ कर रोने लगा। ज़हर धीरे-धीरे सब बच्चों पर असर कर रहा था। बाप चुपचाप सब देखता रहा। बेटे उसकी आंखों के आगे मर रहे थे। वे सदा के लिए सो गये। पुजारी भी सदा के लिए सो जाना चाहता था। पुजारी ने घड़े का मुंह तोड़ा, जिससे पीने में आसानी हो। टूटा घड़ा हाथ में उठ आया। भगवान के चरणों में प्रणाम कर पीना ही चाहता था कि गाय का बछड़ा कांपती हुई आवाज़ में रंभा उठा।

पुजारी ठिठक गया। उसे चिंता होने लगी। तड़प-तड़प कर मरेगा बिचारा। काढ़ा बहुत थोड़ा है, नहीं तो उसे भी पिला देता। फिर उसे ध्यान आया। अपने स्वार्थ के लिए एक निरीह प्राणी को कष्ट देना बहुत बड़ा पाप है। जिसकी मां को मार कर वह इस समय प्रायश्चित करने बैठा है उस को इस तरह संसार मे सिसक-सिसक कर मरने के लिए छोड़ जाने का क्या अधिकार है। अपने बच्चों के लिए उसे चिंता थी। क्या यह बच्चा नहीं है?

स्वार्थ और परमार्थ का संघर्ष पुजारी को अपार कष्ट दे रहा था। वह मरना चाहता था। उसे मारने की प्रबल इच्छा थी। ज़हर इस समय

उसके लिए अमृत था। जीवन विष से भी अधिक बुरा था। वह जीवन नहीं चाहता। पत्नी, बहिन, अपने बच्चों और गऊ का हत्यारा ब्राह्मण पुजारी ज़िन्दा नहीं रहना चाहता।

गाय का बछड़ा अपनी कांपती हुई आवाज़ में रंभा रहा था।

स्वार्थ और परमार्थ में घोर संघर्ष चला। पुजारी कठोर बना—"इस बच्चे को सिसक-सिसक कर मरने के लिए छोड़ने का मुझे क्या अधिकार है? पाप मैंने किया है। सिसक-सिसक कर जियूं तो मैं! इतने दिन जियूं कि मेरा जीवन पहाड़ हो जाय? मेरे ऐसे हत्यारे के लिये यही सब से बड़ा प्रायश्चित होगा!"

गाय के बछड़े को कष्टमय जीवन से मुक्त करने के लिए पुजारी आगे बढ़ा।

पुजारी ने अपना प्रायश्चित पूरा किया। परन्तु पत्नी और बहिन का आत्मघात, गोहत्या, बच्चों की लाश और गाय के बछड़े का तड़पना पुजारी के प्रायश्चित को उन्माद से न बचा सका। अपने-आप से भयभीत होकर, चीख़ कर वह भागा—बेतहाशा भागा।

८

कनक को लकड़ियों में अच्छी तरह सुला भी न पाये थे कि गिद्धों के झुंड ने लाश पर धावा बोल दिया। शिबू और पांचू को अपनी जान के लिए दौड़कर अलग होना पड़ा।

आज घर में मौत का पहला दिन था। सबेरे शिबू की गोदवाली मुर्दा-दम लड़की चुन्नी ने भूख की तड़प में आख़िरी ज़ोर लगा कर मां की छाती पर मुंह मारा। उसी में दांती बैठ गई। मा की छाती से दूध के बजाय ख़ून निकल आया और चुन्नी का दम निकल गया।

पन्द्रह रोज़ से घर में भूख का राज था। सब से छोटी बहन कनक को छः रोज़ से जूड़ी आ गई थी। चुन्नी की मौत देख कर वह रोते-रोते बेहोश हो गई थी।

चिर प्रत्याशित मृत्यु इस घर से भी अपना हक़ लेने के लिए आ पहुँची थी।

शिबू और पांचू चुन्नी को दफ़नाने के लिए गए। लौट कर आए तब तक कनक को उठाने की बारी आ गई थी।

शिबू आज सबेरे से गम्भीर हो गया है। चुन्नी मरी, घर में सभी की आंखें पिघलने लगीं। बाबा तो जनम के कठोर हैं, मगर शिबू अपने जीवन में पहली ही बार आज मौन हुआ है और उसकी आंखें ख़ुश्क रही हैं।

रास्ते भर शिबू पांचू चुप रहे। बच्ची की लाश को अपने हाथों में लिये हुए शिबू मृत्यु को अति निकट से अनुभव कर रहा था।

बचपन से उसकी इच्छाओं की बेल सदा सहारा लेकर बढ़ी है। अपनी अकर्मण्यता की पालकी दूसरों के कंधों पर रख कर उसका दर्प आगे बढ़ना चाहता था। हठ से वह अपने दर्प की रक्षा करता था। उम्र बढ़ती गई,

बुद्धि न बढ़ी। ब्राह्मणत्व, कुलीनता, पिता और छोटे भाई की प्रतिष्ठा का सहारा लेकर वह बड़ा बन नहीं सकता, इसे वह अच्छी तरह समझ गया। जुआ खेल कर या लोडर बन कर एक ही दांव में प्रतिष्ठा को जीत लेने की कोशिश में वह बराबर लगा रहा, मगर कामयाबी हासिल न हुई। हठ चिढ़ में बदलती थी, चिढ़ ग़ुस्से का रूप लेती थी और ग़ुस्सा उसे उच्छृंखल बनाता था। उच्छृंखलता के आचरण में वह अपनी लघुता को ढंक लेना चाहता था। स्वयं अपने से भी वह अपनी लघुता को छिपा लेना चाहता था; वह कठोर बन गया था।

अकाल ने पर्दाफ़ाश कर दिया। अकाल उसकी इच्छा के खि़लाफ़ था। हठ, चिढ़, ग़ुस्सा और उच्छृंखलता कुछ भी काम न आ सकी। बच्ची की मृत्यु ने आज उसे पूरी तौर से हरा दिया था। अधिकाधिक कठोर बन कर शिबू अपनी इस पराजय को भी जीत रहा था। वह पत्थर हो गया था।

बच्ची को दफ़ना कर शिबू और पांचू घर लौटे। दोनों भाई मौन थे। घर के पास आये, रोने की आवाज़ें सुनाई दीं। अन्दर गये, देखा, कनक की लाश पड़ी थी। पांचू हिल गया। शिबू वैसा ही कठोर बना रहा।

पार्वती मां सब से ज़्यादा रो रही थीं; उनका रोना देख कर आंखों में आंसू आता था।

सास-ससुर—बड़ों की मौजूदगी में अपनी बच्ची के लिए रोना कुलीनों के अदब के खि़लाफ़ माना जाता है। शिबू की बहू अपनी बच्ची से बिछड़ने का दर्द भी ननद की मौत पर उंडेल देना चाहती थी। मगर किसी में खुल कर रोने की शक्ति नहीं थी। शारीरिक कमज़ोरी और क्रमशः निकट आते हुए अपने अन्त का भय, आंसुओं को दबोच लेता था।

पास-पड़ोसी कोई नहीं आया। आबरू के ध्वस्त कि़ले में कुलीनता मौत से छिप कर बैठ रही थी।

टिकटी के लिये चार बांस नहीं जुड़ते थे। बेबसी पर शर्म को कुर्बान कर फटी झोली में कनक की लाश को डाल कर दोनों भाई उसे फूंकने ले चले।

बोझ सम्हाले न सम्हलता था। दोनों भाई उजड़ी हुई आबादी से परे जाकर एक टूटे और उजड़े हुए घर से थोड़ा-सा फूंस और दो बांस पाकर किसी तरह कनक को जलाने की सोच रहे थे। इतनी लकड़ियों में लाश का जलना असम्भव था। लेकिन असम्भव को सम्भव बनाने की बेबसो से भरी हुई जि़द से अपनी बहन की अन्तिम धार्मिक प्रेतक्रिया करना चाहते थे। दो चार लग्गे लकड़ियां और बटोरे मिल गईं।

गिद्ध आसमान में मंडरा रहे थे। शिबू चिथड़े से ढंकी हुई लाश के पास पड़ा था और पांचू उन दस-पांच लकड़ियों से चिता बनाने का प्रयत्न कर रहा था।

चिथड़े से निकाल कर लाश को लकड़ियों पर रखा। हाथों में दम न था। मन बेहद भारी हो रहा था। दोनों भाई चुप थे। लाश रखकर पांचू उस पर फूस डाल रहा था; शिबू ने दियासलाई की डिबिया निकाली। गिद्धों का झुंड मंडराते हुए नीचे उतरने लगा। पांचू भयभीत हो उठा। आग लगाने की को जल्दी थी। लेकिन दियासलाई सुलग भी न पाई कि बड़े-बड़े पंखों की हवा सिर पर लगी। गिद्धों का झुंड झपट्टा मार कर नीचे उतरा। शिबू पांचू उनके वार से बचने के लिए तेजी से पीछे हट गये।

पांचू ने फिर मुड़ कर भी न देखा। उसको हिम्मत न हुई। अनेक शवों की तरह उसकी बहन का शव भी थोड़ी देर में अपरिचित कंकाल बन कर शेष रह जायगा, यह वह सोचना भी नहीं चाहता था। सत्य मजबूरी बनकर उसे पीड़ा दे रहा था। पांचू अत्यधिक विचलित हो उठा।

शिबू ने एक बार पीछे घूम कर देखा, गिद्धों के झुंड के सिवाय उसे कुछ और न दिखाई दिया। बड़े-बड़े पांव फैला कर गिद्ध चारों ओर बैठे थे और चोचें चल रही थीं। कुछ गिद्ध आसमान में भी उड़ रहे थे। अपनी बहन की लाश को इस तरह पक्षिराज के आहार का साधन बनते देख कर भी शिबू की आंखों से एक बूंद जल न टपका। शिबू सिर झुकाकर चुपचाप आगे की ओर बढ़ा।

गोहत्या की बात, धीरे-धीरे, बचे हुए गांव की बात हो गई थी। मृत्यु से लड़ता हुआ उन्मादी मनुष्य एक क्षण के लिए इस ख़बर से उलझा भी था। अब तक इस गांव के प्राणी हर तरह से तो मरे थे, किन्तु हथियार की मदद से किसी का ख़ून किया गया हो, ऐसी कोई घटना नहीं हुई थी। गऊ का मारा जाना मनुष्य के लिए उस समय विशेष महत्व की घटना न थी, खाली मोनाई ही इस कांड को लेकर ज़रूरत से ज़्यादा शोर मचा रहा था। बचे-खुचे गांव के आबरूदार भद्र लोग भी (अपने ऊपर पर्दा डालने के लिए) इस गऊ के मारे जाने की घटना को ज़्यादा अहमियत दे रहे थे।

आबरूदारों का बुरा हाल था। आबरू नाम की कोई चीज़ इस वक्त तक उनके साथ नहीं रह गई थी। उनकी बहू-बेटियां भी खुले आम धर्मशालाओं और अनाथालयों में भेजी जाने लगी थीं। हर एक हर एक के घर का राज अच्छी तरह से जानता था; फिर भी आबरू शब्द की रक्षा ज़बान से बराबर की जा रही थी। हर एक के घर में ही एक-आध-दो मौतें भी हो चुकी थीं। श्राद्धादि-प्रेत-कर्म करना हर एक के लिए असम्भव हो चुका था, इसलिए जो घर में मर जाता उसके लिए यह कह दिया जाता था कि वह 'परदेस' गया है। 'परदेस' और 'धर्मशाले' का मतलब हर एक आबरूदार जानता था। अपनी औरतों-बेटियों को अजीम और मोनाई के हाथों बेच कर जो चावल पाते थे उसे वे सौ रुपए मन के हिसाब से ख़रीदा हुआ बताते। आबरू जाय तो जाय, मगर आबरू का ख़्याल दिल से न जाता था। मन्दिर के सामने ही कटी हुई गाय को देख कर आबरूदार हिन्दू धर्म को याद करने लगा। मोनाई के साथ-साथ मंदिर के अंदर जा कर पुजारी के चारों बच्चों और गाय के बछड़े को मरा हुआ देखा। सब के मुंह से निकले हुए नीले झाग देख कर लोगों ने घटना को समझ लिया। हर आबरूदार को यह मौत बहुत अच्छी लगी। ज़हर खा कर आबरू बचा लेना लोगों को महान आदर्श का सार जंचा। उनकी निगाह में ज़हर की इज़्ज़त बढ़ गई। गोहत्या का तज़किरा दबने लगा था। ज़हर की ख़्वाहिश हर एक को होने लगी थी।

आज मृत्यु से अधिक आत्मीयता हो जाने के कारण पांचू विचलित हो उठा था। मृत्यु पर वह झुंझला रहा था। क्या इस देश में एक भी आदमी ज़िंदा न बचेगा? क्या पृथ्वी से मनुष्य जाति ही उठ जायगी? आज गांवों में है, कल शहरों में मौत फैलेगी। एक दिन सारा देश मानव-विहीन हो जायगा।

पांचू की कल्पना क्रमशः सजीव होने लगी। उजड़े हुए गांव, उजड़े हुए नगर, उजड़ी हुई दुनिया उसकी कल्पना के रंगों से भरी जाने लगी। थोड़े-से लोग, जो कि अमीर कहलाते हैं, बच जायेंगे। मगर वे भी कब तक बचे रहेंगे? जब अन्न पैदा करने वाला ही न बचेगा तो खाने वाला क्या खाकर जीवित रहेगा? रुपया, सोना, चांदी और जवाहरात को क्या दांतों से चबाया जा सकेगा? मोटरों और ऊंचे-ऊंचे महलों से क्या पेट का कभी न भरने वाला गड्ढा भर पायेगा? नहीं। वे भी एक दिन मरेंगे। उन्हें भी एक दिन मरना ही होगा। बड़े समाज को अपने स्वार्थ के लिए मार कर छोटा समाज भी जीवित नहीं रह सकता। स्वार्थ की व्यक्तिगत संज्ञा ही ग़लत है। हर आदमी स्वार्थी होना चाहता है। लेकिन असलियत यह है कि वह अपने स्वार्थ को पहचानता नहीं। व्यक्ति का स्वार्थ समाज का ही स्वार्थ है। जब समाज ही न रहेगा तो व्यक्ति कैसे जीवित बचेगा?

पांचू की कल्पना अपने गांव से लेकर कलकत्ते तक के विनाश का दृश्य देख रही थी। और कलकत्ते तक ही नहीं, उसकी कल्पना सारे विश्व को मानव-शून्य देख रही थी। यह बम, तोपें, टैंक, हवाई जहाज़, बड़ी-बड़ी राजधानियां, ऊंचे-ऊंचे महल, मोटरें, ट्रेनें, रेडियो, टेलिफ़ोन और ज्ञान-विज्ञान की सब चीजें मानव की असफलता का चिन्ह बन कर शेष रह जायंगी, घरों में कुत्ते लोटेंगे। दुनिया में जानवर ही बच जायेंगे। आदमियों की ठठरियां ही उनकी याद दिलाने के लिए बच रहेंगी।

मानव का एकमात्र प्रतिनिधि बन कर अपने कल्पना-लोक में घूमता हुआ पांचू दुनिया को इसी तरह से देख रहा था। घर की दो मौतों ने उसके

विचारों की गति और भी तीव्र कर दी थी। उसे एक-एक कर के सब मौतें देखनी होंगी, यह बात वह अपने ऊपर बड़ा संयम कर के सोच रहा था। मा, बाबा, भाई, पत्नी, भावज, तुलसी, दीनू, परेश--दुनिया की हर चीज़ वह इसी तरह से जी भर कर देखने लगा, जैसे अब वे सदा के लिए उसकी आंखों से ओझल हो जायंगी।

शिबू को सबेरे से इतना गंभीर और मौन देख कर पांचू का दिल घबरा रहा था। वह जानता है कि उसके भाई का अंतर बड़ा कोमल है। शिबू की बड़ी से बड़ी ज़्यादतियों के बावजूद भी वह उसे बहुत प्यार करता था। शिबू हमेशा ज़रूरत से ज़्यादा बोलता, शेखी बघारता, चीखता-चिल्लाता, और जल्दी ही हंसने या रो पड़ने का आदी था। पांचू उस रूप में शिबू को देखने का आदी था। शिबू की यह गंभीरता उसे उसके स्वभाव के विपरीत लग रही थी। उसे डर था, दादा के दिल को ज़बर्दस्त चोट पहुंची है। कहीं कुछ हो न जाय।

मृत्यु आज घर से दो प्राणी कम कर गई। दीनू और परेश भी किसी वक्त जा सकते हैं, उन दोनों के हाथ पैरों में सूजन आ गई थी। बौ-दीदी (शिबू की बहू) पहले से ही दुबली थी, अब तो कंकाल मात्र ही रह गई थी। मंगला कितनी फीकी पड़ गई है बेचारी। परंतु उसकी बड़ी-बड़ी मदभरी आंखों में अब भी चमक है। आज भी उसके होठों पर मुस्कराहट बार-बार आती है, बल्कि पहले से ज्यादा आती है। पांचू ने अक्सर ग़ौर किया है, मंगला आजकल ज़बर्दस्ती हंसने और हंसाने की कोशिश भी करती है। बौ-दीदी की मुस्कराहट बड़ी डरावनी होती है। दांतों की पंक्तियां खुलते ही अपनी विकरालता का परिचय देती हैं। तुलसी बिलकुल नहीं हंसती। उसका ध्यान उड़ा-उड़ा सा रहता है। वह ज़्यादातर चलती-फिरती भी नहीं, बैठी रहती है या लेटी रहती है। कमज़ोरी के बावजूद भी वह करवटें ज़्यादा बदलती है।

मा आजकल ज़रूरत से ज़्यादा चिड़चिड़ी हो गई है। मगर वह चिड़चिड़ापन निहायत ऊपरी है। उस चिड़चिड़ेपन के बीच उनकी गंभीरता

छिपी हुई है। सबेरे से शाम तक वही सब से ज़्यादा बोलतीं, चिल्लाती और चलती-फिरती हैं। बिना बात की आड़ ले कर घर के सब लोगों पर चीखा-चिल्लाया करती हैं, सब को गालियां दिया करती हैं--'मरो, मरो' किया करती हैं।

पांचू को मा का यह स्वभाव भी बड़ा अस्वाभाविक-सा लगता था। आज सबेरे चुन्नी की मौत पर उन्होंने बड़ा तूफ़ान मचाया। जब बड़ी बहू की छाती में ही चुन्नी की दांती बैठ गई थी, और छाती से ख़ून निकलने लगा था, बड़ी बहू चीख कर आंखें उलटने लगी थीं। मा ने एकदम से सब को गालियां देना शुरू कर दिया। एक सिरे से सब को 'मरो, मरो' कर डाला; लेकिन उस बीच में मंगला से उन्होंने पानी मंगाया; तुलसी को बुलाकर भावज को पकड़ने के लिए कहा; ज़बर्दस्ती चुन्नी के जबड़ों में अंगूठे डाल कर उसका मुंह खोला और उसकी लाश को कूड़े की तरह आंगन में पटक कर घर में सब को चौंका दिया। झटके के साथ सम्हल कर बड़ी बहू भी उधर देखने लगीं। पांचू निश्चयपूर्वक जानता है कि उसकी मा पागल नहीं हुई है। उस अमानुषिक-सी लगने वाली कठोरता में मा की बुद्धि बहुत गहरे जा कर काम कर रही है। घर में अपने वाली मृत्यु को बिलकुल तुच्छ कर के, घर भर के दिलों में समाए हुए मौत के डर को झटका देने के लिए वह बहुत कठोर हो गई थीं। मा के इस कृत्य ने इस समय बड़ी बहू को मरने से बचा लिया था, हर एक के जीवन में कुछ दिन और बढ़ा दिये थे।

पांचू ग़ौर कर रहा था, जब दोनों भाई चुन्नी को दफ़ना कर घर लौटे थे तब घर के बाहर तक रोने की आवाज़ें आ रही थीं। सब से ऊंची और सब से ज़्यादा दर्दनाक मा की आवाज़ थी। कनक की मौत पर मा का इस तरह से रोना और रुलाना भी पांचू को बड़ा ही अस्वाभाविक-सा लगा था। जब यह लोग घर पहुंचे तो एक बार वह दर्द नए जोश के साथ बढ़ा। पांचू भी रो पड़ा; मगर शिबू नहीं रोया था। कनक की लाश को झोली में डाल कर बाहर ले जाने से पहले मा ने पांचू को एक ओर बुलाया और गंभीर

आवाज में कहा--"रास्ते में अपने दादा का ध्यान रखना, बेटा !" पांचू को ताज्जुब हुआ था। मा की आवाज़ में ज़रा भी कंपकंपी न थी। पांचू ने ताज्जुब के साथ इसे महसूस किया था और उसे इससे बल मिला था। आप धैर्य धर कर मा को धैर्य देने की इच्छा उसके मन में सहज ही जाग्रत हुई। वह मा को धैर्य बंधाने लगा। मा ने उत्तर दिया--"धरती माता अपना धीरज आप ही धरती है, बेटा। छिन-छिन टूट रही है, पर दुनिया अब तक बची भी उन्हीं के कारन है। तू मेरी फिकर मत कर। मैं टूट जाऊंगी, पर हारूंगी नहीं।"

इसके बाद से वह मा को एक नये रूप में देखने लगा था। इतने दिनों की महातपस्या का तेज उनके कृशगात को प्रतिक्षण नवजीवन दे रहा था। उसी जीवन की ज्योति से वे अपने बच्चों को जिला रही हैं। पांचू धरती के रूप में अपनी माता को देखता था--धरती, जिसे मनुष्य प्रतिक्षण अपने पैरों तले कुचलता है परंतु उसी के सहारे खड़ा भी है। लेकिन पांचू सोचता है, इस तरह से मा और कितने दिन जी सकेगी ? कब तक, पांचू सोचता, धरती भी इन अत्याचारों को सह सकेगी ?

पांचू की पूर्व कल्पना फिर जाग उठी। आदमी से ख़ाली दुनिया, अपनी ही छाती पर धरती अपने महान बेटे का स्मारक ले कर, शोक करेगी। उसे अपने दूसरे बच्चों का ख्याल भी तो है। आदमी की बुद्धि, ज्ञान-विज्ञान की अनगिनत निशानियां भी एक दिन खंडहर हो कर मिट्टी में मिल जायेंगी, धरती फिर टीलों, पहाड़ों और हरियाली से ढंक जायगी। मानव के चिन्ह का अस्तित्व लोप हो जाने के बाद धरती फिर अपने दूसरे बेटों--पशुओं और पक्षियों के लिए जीवनदायिनी और सुखद बन जायगी।

इस विचार से पांचू के अहम् को बल मिला। फ़ौरन ही शिबू की याद आ गई।

कनक को गिद्धों के हवाले छोड़ आने के बाद, थोड़ी दूर आगे चल कर शिबू और पांचू, दोनों दो अलग-अलग रास्तों पर चलने लगे थे। शिबू घर

की ओर चलने के बजाय ब्राह्मण पाड़े के उत्तर की ओर चल दिया। वहां शिबू की मित्र-मंडली के तीन सदस्य रहते हैं। शिबू को उधर जाते देख पांचू कुछ न बोला। सोचा, अच्छा है, वहां जाकर उनका यह मौन टूटेगा। दिल का ग़म कुछ कम होगा। पांचू घर की ओर चला आया। घर में दोनों बहुओं और तुलसी से घिरी हुई मा बुख़ार से तपते हुए परेश को गोदी में लिटा कर सब को अपने पांच बेटों की मौत के बारे में अपनी आप-बीती सुना रही थीं। और उस वर्णन में, घबराहट में की गई अपनी बेवकूफ़ियों का ज़िक्र करते हुए वह हंसती जाती थी। उस हंसी के पीछे, पांचू ने देखा, बड़ी ज़बर्दस्त थकान छिपी हुई थी। मा के चेहरे पर चमकते हुए तेज में भी उस थकान को छिपा लेने की शक्ति नहीं थी। पांचू को इस अनुभव से पीड़ा हुई। परंतु उसने धैर्य बंधाने वाले मा के कठोर संयम को ग्रहण करने का प्रयत्न किया। वह बाबा की कोठरी में चला गया।

बाबा की चारपाई के पायताने को छुआ। कोठरी में काफ़ी उजाला नहीं था। चारो तरफ़ टांड़ों पर किताबों के बस्ते मद्धिम-से दिखाई देते थे। बाबा की चारपाई पर सामने के दरवाजे से हलका-हलका प्रकाश आता था। एक गौर वर्ण अस्थि-पंजर आंखें बंद किये पड़ा था। दाढ़ी और सिर के बढ़े हुए अस्त-व्यस्त बाल मुख की श्री को बढ़ा ही रहे थे। बाबा एक दम निश्चेष्ट से पड़े थे। पायताने किसी को महसूस कर के बाबा चेतन हुए। पांचू ने देखा, बाबा सुनने के लिए तैयार हैं। पांचू फ़ौरन ही बैठ कर, उनका एक पैर अपनी जांघ पर रख कर मलते हुए कहने लगा--"कब इसका अंत आएगा, बाबा?"

आवाज़ में गहराई लिए हुए, निर्विकार और शांत रह कर बाबा ने उत्तर दिया--"जब इस अंत में से आदि का फिर से उदय होगा। बदलते हुए युग के झकोले तो लगेंगे ही पांचू। अपने बड़े समाज को जगाने के लिए यदि मनुष्यों का यह छोटा-सा समाज तपस्या करता है तो करने दो। परंतु इस तपस्या को कामना-रहित और निरुद्देश्य न बनाओ। उद्देश्य रहित की

हुई तपस्या संसार में घृणा उत्पन्न करेगी। घृणा मत उत्पन्न करो, पांचू। कामना करो कि तुम्हारी बलि मानव में प्रेम की भावना उत्पन्न करे।"

बाबा का यह उत्तर उसके लिए संतोषजनक न था। उलझ कर वह बोला --"घृणा निरर्थक और निरुद्देश्य नहीं है, बाबा। वह मानव की स्वाभाविक प्रतिक्रिया है।"

बाबा की दाढ़ी-मूछों में हंसी आई। बोले--"घृणा की गति है कहां? विनाश ही में न? तुम्हारा यह अकाल क्या है? मनुष्य की घृणा ही न? यह महायुद्ध क्या है? कौन-सा आदर्श है इसमें? सत्य एक असत्य के साथ संधि कर के दूसरे असत्य का सर्वनाश करने के लिए युद्ध कर रहा है। मनुष्य इसे राजनीति कह कर अर्द्ध-सत्य का पोषण करता है। अर्द्धसत्य अज्ञान का कारण है। ज्ञान प्रेम का मूल है। और प्रेम की गति है निर्माण तक--निर्माता तक।"

हथेली से ठोड़ी को पकड़े हुए पांचू कोठरी की छत की तरफ देख रहा था। अंधेरा उसकी आंखों में जम गया था। धीरे धीरे आंखों की ज्योति ने उस अंधकार को वश में किया और छत की कड़ियां दिखाई पड़ने लगीं।

अपनी खिड़की के बाहर छिटकी हुई चांदनी और तारों को पांचू देख रहा था। मंगला उसकी छाती में मुंह छिपा कर सो गई थी। वह आज बहुत बहुत थक गई थी। आज उसकी हंसी भी सहम गई थी।

सिर को टेके हुए पांचू का दाहिना हाथ थकान महसूस कर रहा था। लेकिन मंगला के जाग उठने के भय से वह ज़रा भी न हिला डुला, चुपचाप खिड़की के बाहर छिटकी हुई चांदनी और आसमान के तारों को वह देखता रहा। अपनी छाती से चिपकी हुई मंगला के स्पर्श को वह अपनी थकान से अधिक मूल्यवान समझता था। वह यह महसूस करता था कि मंगला दिन-पर-दिन कमज़ोर होती जा रही है। उसे यह डर था कि यह स्पर्श-सुख न जाने कब सपना हो जाय।

सहसा चीख़ सुनाई दी। मंगला चौंक कर जाग पड़ी। पांचू उठ कर बैठ गया। बौ-दीदी क्यों चीखी? दादा के कमरे के किवाड़ भी ज़ोर से खुले। पीछे से दादा की आवाज़ भी आई—"शाली चरका दे कर भाग गई। घर-वाले जैसे तुझे बचा ही तो लेंगे। हारामजादी, तू मेरी वस्तू है। यू आर माई थिंग, शाली!"

दिन भर के बाद दादा की आवाज़ सुनी थी। मंगला और पांचू दोनों सहम कर एक दूसरे की ओर देखने लगे। पांचू उठ कर तेज़ी से नीचे की ओर चला। पीछे-पीछे मंगला भी चली। आंगन में शिबू अपनी पत्नी को नंगा कर के उस पर बलात्कार करने पर तुला हुआ था।

बाबा तक अपनी कोठरी से बाहर आ गये थे। मा, तुलसी, दीनू, परेश, पांचू और मंगला सकते में खड़े रह गये।

शिबू की बहू अपनी शक्ति भर लड़ रही थी। सारे घर के सामने—सास-ससुर, ननद, देवर, देवरानी और अपने छोटे-छोटे बच्चों के सामने नारी की लाज लूटी जा रही थी। और लाज का लुटेरा था स्वयं उसकी लाज का रक्षक—उसका पति।

शिबू को अपनी पत्नी के प्रति बेहद ग़ुस्सा था। उसके पास सीधा तर्क था कि पत्नी पति की मिल्कियत है और इसी लिए कुदरतन उसे सर्वाधिकार प्राप्त है। बच्चा अपने खिलौने को जैसे जी चाहे खेले, उसे तोड़ भी डाले—इससे खिलौने को शिकायत क्यों हो? पांचू की ज़िद ठीक इसी क़िस्म की थी।

दिन भर मृत्यु की विभीषिका ने उसे मन ही मन बहुत तड़पाया था। मृत्यु का भय पत्थर की शिला बन कर उसके कलेजे पर रखा था। वह दिल ही दिल में दर्द से घुट रहा था। उसे उससे बचने का कोई मार्ग नहीं मिलता था।

रात आई, पत्नी कमरे में आई। भय को जीतने की भावना क्रमशः शिबू को उत्तेजित करने लगी। अपनी पत्नी के भूखे-सूखे शरीर और टूटे हुए मन पर वह बलात्कार करने लगा। पत्नी को जितनी ही पीड़ा होती थी, शिबू

का आनंद उतना ही बढ़ता था। शिबू की पत्नी के लिए पति के अत्याचार असह्य हो उठे।

आज सबेरे ही घर में दो मौतें हुई थीं। अपनी बच्ची मरी थी; दोनों बच्चे भी अब-तब हो रहे थे। ननद की मौत का ग़म था। और सब से ऊपर अपनी शारीरिक निर्बलता के कारण बड़ी बहू बिलकुल टूट गई थी। उस पर शिबू का यह हिंसक उन्माद! सहनशीलता की सीमा से परे, इस अमानुषिक अत्याचार से घबरा कर बड़ी बहू ज़ोर से चीख़ उठी--प्राणों के भय से उसमें उस समय बेहद बल आ गया था।

अपनी पत्नी के सहसा यों चीख़ पड़ने से शिबू चौंक पड़ा। वह ज़रा अलग हटा। मौक़ा पाकर अपने प्राण बचाने के लिए बड़ी बहू फुर्ती से दरवाज़े खोल कर नीचे भागी। पहले तो शिबू सहम गया, बाद में अपनी असफलता पर भयंकर क्रोध जागा। वह दबने वाला नहीं है। वह किसी से भी नहीं डरता। वह अपनी इच्छा ज़रूर पूरी करेगा। उसकी पत्नी उसकी मिलकियत है। अपनी मर्जी के मुताबिक वह उसका उपभोग कर सकता है। यह विचार शिबू को क्रोध में पागल बना कर अपनी पत्नी के पीछे-पीछे नीचे दौड़ा ले गया। घर भर की परवाह न कर के वह अपना अधिकार और बड़प्पन सिद्ध करना चाहता था। शिबू अपनी पत्नी को काबू में ला कर उस पर बलात्कार करने लगा। पांचू और मंगला ने अपने मुंह फिरा लिये। तुलसी मा की नजरें बचा कर चुपके से उधर देख लेती थी।

मा ने अपने मन को तुरंत ही सम्हाल लिया। वह आगे बढ़ी और जबर्दस्ती शिबू को पीछे ढकेलने लगी। मा को आगे बढ़ते देख पांचू की चेतना लौटी। झूठी लाज छोड़ कर भावज को इस राक्षसी अत्याचार से बचाने के लिए वह आगे बढ़ा। मा ने बेटे को घसीटते हुए कहा--"पापी, मा बाप की तो शर्म कर।"

शिबू तैश खा रहा था। पांचू उसे कस कर पीछे से पकड़े हुए था। अपने को पांचू के हाथों से छुड़ाने का प्रयत्न करते हुए वह गरज कर मा से बोला--

"यह बाबा को सिखाओ जा कर। उनका अब बखत भी है शरम करने का। छोड़ो मुझे।"

शिबू के इस उत्तर से अपनी चिरशंकित आशंका के साथ साक्षात्कार कर, मा का मन अंदर ही अंदर लज्जा और पीड़ा लिये हुए जमीन में तेज छुरी की तरह गड़ गया। मा ने तुरंत अपने मन को सम्हाल लिया और शिबू को दोनों हाथों से ढकेलते हुए, पांचू से चिल्ला कर कहा--"घर से बाहर निकाल दो इस चांडाल को। यह हत्यारा मेरे पाप की संतान है। मेरे पाप का फल है।" उनकी आंखों में आंसू आ गये थे, उनकी आवाज उखड़ गई थी।

बाबा के तन की आंखें बन्द थीं, परंतु मन की आंखें अपने चरित्र की सब से बड़ी दुर्बलता को आज आमने-सामने देख रही थीं। स्त्री-विषय में बाबा के असंयम और अधैर्य ने उनके हर एक बच्चे को गलत तरीके से काम की चेतना दी। पांडित्य के दीपक के नीचे इस तरह सदा अंधकार बना रहा। इस समय उन्हें ऐसे अनेक दृश्य याद आ रहे थे जब कि उनकी लापरवाही ने उनकी अबोध संतानों के मस्तिष्क को विकृत करने में सब से अधिक सहायता पहुंचाई थी। मा और बाप, दोनों ही अपनी कमजोरियों से हार कर अपने बच्चों के शत्रु बन गये।

बाबा चरित्रवान थे। जीवन में कभी किसी दूसरी स्त्री की ओर उन्होंने आंख उठा कर भी न देखा था। पत्नी को वह पति की कामेच्छा तृप्त करने का साधन मानते थे। और इस नाते वह पत्नी को सदा पति की मिल्कियत ही समझते रहे। पार्वती मा में भी स्वाभिमान की मात्रा कम न थी। दोनों ने एक दूसरे से अपने स्वाभिमान की रक्षा करने के लिए संधि-सी कर ली थी। पति के इच्छा करते ही वह अपना शरीर समर्पित कर देती और इसके मूल्य में वह अपने हठ पूरे किया करती थीं।

बाबा शहर के कालेज में संस्कृत के प्रोफेसर थे। पार्वती मा को शहर अच्छा नहीं लगता था। वह गांव में ही रहती थीं। बाबा हर शनिश्चर की शाम को घर आया करते थे। पार्वती मा ने पांच बच्चों को खो कर शिबू को

पाया था। वह उसे एक पल के लिए भी अपनी आंखों से ओझल न होने देती थीं। उनके लाड़-प्यार ने ही शिबू को जिद्दी और चिड़चिड़ा बनाया था। बाबा हर बार इसे बड़े दुख के साथ अनुभव करते थे और पार्वती मा से शिबू को पढ़ाने लिखाने और समझदार बनाने की बात मौके-मौके पर निकाला करते थे। शिबू की किसी भी कमज़ोरी के बारे में किसी का कुछ भी कहना पार्वती मा को बहुत अखरता था। वे चिढ़ कर कहतीं—"बचपन में सभी के लड़के जिद्दी होते हैं। रही पढ़ने की बात, सो बख़्त आने पर सब आप सीख लेगा। अभी उसकी उमर ही क्या है। क्या पढ़े बिना काम नहीं चलता। और धन तो जो किस्मत में होता है तो बिना पढ़े भी मिल जाता है। पढ़ लिख के नौकरी करने से ही सब के महल नहीं चुना करते।"

बाबा चेतावनी देते; कहते—"तुम बड़ी भूल कर रही हो। बच्चे को एक उम्र से ज़्यादा अगर बच्चे की तरह ही रखोगी तो उसकी गैर-जिम्मेदारियों का सारा दोष भी तुम्हारे जिम्मे आयेगा। पढ़ाना सिर्फ नौकरी कराने के लिए ही जरूरी नहीं है। विद्या से चरित्र का विकास होता है।"

पार्वती मा पर बाबा की इन बातों का कभी भी कोई अच्छा असर नहीं पड़ा। वे और चिढ़ जातीं। और बाबा शनीचर की रात खराब करना नहीं चाहते थे।

बाबा ज्ञानी और चैतन्य थे। परंतु अपनी इस कमजोरी के प्रति वह सदा अंधकार में रहे। धर्मपत्नी के साथ संभोग करने को उन्होंने कभी व्यभिचार नहीं समझा और इसी नासमझी में वे अपनी धर्मपत्नी को सदैव के लिए अपनी वेश्या बना कर उसके साथ व्यभिचार करते हुए गृहस्थ धर्म का पालन करते रहे।

अंधे हो जाने के बाद जब कोई काम न रह गया तब उसकी कामवृत्ति और भी ज़ोरों में उभड़ी। पार्वती मा इस ओर से सचेत रहते हुए भी पति के हाथों का खिलौना बन कर रह गईं। शिबू की बात ने आज बाबा और पार्वती मा, दोनों की ही, आंखें खोल दीं। मगर अब इससे लाभ ही क्या?

पार्वती मा मर जाना चाहती थीं। अपने ऊपर का सारा क्रोध वह रो-रोकर शिबू पर उतार रही थीं—"घर से निकाल दो इस चांडाल को। मेरी आंखों के सामने से हटा दो इसे।"

बौ-दीदी और तुलसी को पार्वती मा अपनी कोठरी में ले गईं और अंदर से दरवाजा बंद कर दिया।

शिबू के डर से मंगला भी अपने कमरे में चली गई थी। शिबू आपे से बाहर हो कर चीख रहा था। अपनी परवशता पर बिगड़ कर वह हर एक को गालियां दे रहा था। और गालियां देकर वह आप ही घर से बाहर जाने लगा। पांचू सामने खड़ा था। जाने से पहले पांचू को मा और बहन की गालियां देते हुए उसने उसे कस-कस कर दो तमाचे मारे और घर से बाहर चला गया।

पांचू मार खाकर भी चुपचाप खड़ा रहा। उसके मन ने आज बड़ी करारी मार खाई थी। अकाल की समस्त घटनायें और यातनाएं आज की इस घटना के सामने तुच्छ हो गई थीं। बाहर की घटनाओं से पीड़ा पाने पर उसका मन घर में शांति पाया करता था। परन्तु आज के बाद उसके घर से भी शांति चली गई थी। आज की घटना के बाद वह विचलित हो उठा था। शिबू के लिए कुछ भी असंभव न था। बेनी ने अपनी बहू का खून कर डाला। गाय तक का बध किया जा चुका था। हथियार पाने पर शिबू भी अपने सारे घर का वध कर सकता है। शिबू घर में आग लगा सकता है। उससे कुछ भी बईद नहीं। लेकिन क्या पांचू उन सब दृश्यों को अपनी आंखों से देख सकेगा—क्या पांचू अपने परिवार को नष्ट होते देख सकेगा ?

पांचू घर से भाग जाना चाहता था। वह फिर सोचता, मेरे जाने के बाद घर को दादा के अत्याचारों से बचाने के लिए कोई भी नहीं बचा है। यह विचार मन में बार-बार उठकर भी पांचू का हौसला न बढ़ा सका। घर पर रहना अपना कर्त्तव्य समझ कर भी वह घर से भाग जाना चाहता

था—"मैं कोई बुरी बात अपनी आंखों से होते न देखूंगा। मेरे बाद भले ही कुछ भी हो जाय। आंखों से न देख सकूंगा तो दुख भी न होगा।"

कर्तव्य से विमुख होकर पांचू कायरता की ओर बढ़ रहा था और अपनी इस कायरता को वह बहानों में छिपा लेना चाहता था—"मैं अगर यहां रहूं, तब भी कुछ नहीं हो सकता। खूंखार पागल को कौन रोक सकता है ? कहीं बाहर जाऊंगा। कलकत्ते-वलकत्ते कहीं चला जाऊंगा। कोई नौकरी ढूंढूंगा। मिल गई तो घर वालों की भी कुछ रक्षा हो जायगी।"

पांचू ने भागने का निश्चय कर लिया। और इस निश्चय के साथ ही साथ उसके मन में एक भीषण द्वन्द्व छिड़ गया। यह घर, मा, बाबा, मंगला, सभी एक साथ उससे छूट रहे थे। शिबू, बौदीदी, तुलसी, मा, भतीजों का ध्यान मुख्य रूप से उसके मन में नहीं था। मा की याद पीड़ा देने वाली थी। बाबा से उसका सम्बंध पिता-पुत्र से अधिक गुरु-शिष्य का रहा। उसकी प्रत्येक बौद्धिक समस्या के साथ बाबा का घनिष्ठ सम्बन्ध था। लेकिन इसके साथ ही साथ उसके भीतरी मन में कहीं यह विचार भी मौजूद था कि बाबा अब केवल कुछ ही दिनों के मेहमान हैं। मा-बाप से सबका सम्बन्ध एक दिन छूटता ही है। उसके चले जाने से बाबा और मा को बड़ा कष्ट होगा, यह विचार भी पांचू को बड़ा व्यग्र कर रहा था। सब से अधिक उसे मंगला की याद आ रही थी। उसकी ओर से वह बहुत चिंतित था। उसका क्या होगा ? मंगला में उसके चित्त की सारी वृत्तियां एकाग्र हो गई थीं। एक बार उसकी इच्छा हुई कि वह मंगला को भी अपने साथ लेता चले। विचार ने उसे एक क्षण के लिए स्फूर्ति भी दी, परन्तु फौरन ही उसके मन में डर समाया, मंगला उसे जाने से रोक लेगी। मा और बौदीदी को छोड़ कर मंगला कभी भी न जायगी। घर में रुकने के लिए पांचू बिलकुल तैयार न था। सारे संसार से भाग कर उसे घर में शांति मिलती थी; और अब उसे घर ही महान अशांति का केन्द्र-स्थल दिखाई देता था। घर के प्रति उसकी विरक्ति इस

समय इतनी बढ़ गई थी कि पांचू घर छोड़ देने के विचार को अपनी आत्मा का आदेश मानता था। उसे विश्वास था कि इसी में उसका कल्याण होगा। मंगला का आकर्षण उसे अपनी ओर खींचते हुए भी निर्बल हो चला था।

पांचू के पैर धीरे-धीरे दरवाजे की तरफ बढ़ते गये। उसकी इच्छा हुई कि जाने से पहले वह एक बार सब को देख लेता। पांचू लौटा। अपने कमरे की सीढ़ियों तक पहुँच कर पैर फिर ठिठक गये—मंगला कहीं न जाग रही हो।

चोर की तरह पांचू दबे पैरों से नीचे उतर आया। मा की कोठरी का दरवाज़ा बन्द था। बाबा अपनी चारपाई पर बैठे हुए थे। घुटनों में उनका मुंह छिपा हुआ था। दूर ही से—मन ही मन—पांचू ने प्रणाम किया। स्मृति में हर एक को सामने लाकर उसने भरे मन से सबसे बिदा ली। आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी।

पांचू का निश्चय डगमगाने लगा। फौरन ही पांचू सतर्क हो गया। वह घर के दरवाजे की तरफ चला। चौखट लांघते ही पैर ठिठके। इस घर में वह अब शायद लौट कर न आयेगा। कदम घर से बाहर पड़ा। घर उसकी आंखों के सामने था। दुमंज़िले पर उसके कमरे की खिड़की खुली हुई थी।

पांचू का ध्यान उड़ कर अपने कमरे की तरफ चला गया। थोड़ी देर पहले तक वह इसी कमरे में पड़ा हुआ चांदनी रात और तारों को देख रहा था। मंगला उसकी छाती में मुंह छिपा कर बांह डाले सो रही थी। कितना सुख था उस स्पर्श में! और उस सुख का ध्यान आते ही फ़ौरन बड़ी बहू की चीख और बाद का सारा कांड उसके मन को दहलाने लगा। मंगला कहीं खिड़की से देख न रही हो। पांचू और ज़्यादा डरा। फ़ौरन ही सामने से हट कर घर की दीवाल के किनारे-किनारे से जल्दी-जल्दी कतराता हुआ वह आगे बढ़ा।

घर धीरे-धीरे दूर होता चला जा रहा था। चांदनी रात के प्रकाश में घर धुंधला होते-होते मिट गया। पेड़ों की आड़ आ गई, गांव की हद आ गई। पांचू रुक गया। वह अपनी जन्मभूमि को छोड़ रहा था। छोड़ने

से पहले एक बार आंखें भर कर वह अपने गांव को देख रहा था—वह अपना सारा जीवन देख रहा था। इन्हीं खेतों में वह खेला-कूदा है। बड़ा हुआ है। अनेक सुख दुखों के नाते इसी भूमि पर उसके साथ जुड़े हैं। मोहनपुर उसकी जन्मभूमि, कर्मभूमि, समरभूमि, रही है। अकाल के इन दिनों की सारी अनिश्चयता को लिए हुए भी उसके जीवन को एक निश्चित गति रही है। घर-गांव छूटने के साथ ही साथ पांचू का उस निश्चित जीवन के साथ भी नाता टूट रहा है। सारे संसार में घूम कर वह इस गांव में लौटता था; यहां उसका घर था। जन्म के साथ बंधा हुआ उसका आकर्षण-केन्द्र नष्ट हो रहा है। सवेरे जब मा को पता लगेगा, मंगला अनुभव करेगी, सारा घर सुनेगा...... ?

चुम्बक-शक्ति का यह आखिरी खिचाव था। अपनी निर्बलता को परास्त करने के लिए पांचू फिर आगे बढ़ा। मगर वह जायगा कहां? "कहीं भी! घर नहीं जाऊंगा।" आंखों में आंसू भर कर जिद के साथ उसने अपनी सारी समस्याओं को अंतिम निर्णय दिया।

पांचू ने पीछे मुड़ कर भी नहीं देखा। आंखों से आंसू बह रहे थे और वह आगे बढ़ रहा था। हठ के कठिन पाश में अपनी समस्त कोमल वृत्तियों को जकड़ कर वह आगे बढ़ा जा रहा था। अशांति के उद्वेग से हृदय उमड़ा चला आ रहा था; सिर में भारीपन के साथ बुद्धि की अगति थी, आंखें आंसुओं से भरी हुई थीं। अपने आसपास की किसी भी वस्तु का ध्यान उसे नहीं था। पथहीन, लक्ष्यहीन पांचू चलता ही जा रहा था, मानो चलने का कहीं अंत नहीं है।

रोने की आवाज कहीं दूर से कानों में आई। चेतना फिर भूमि पाकर लौटी। पांचू ने सिर उठाया, ध्यान स्थिर हुआ। पांचू ने अनुभव किया कि रोने की आवाज दूर नहीं, बिलकुल उसके पास ही है।

बाईं तरफ़ खंडहर में कोई पड़ा हुआ दिखाई दिया। रोने की आवाज किसी बहुत छोटे बच्चे की-सी थी। पांचू को वह आवाज अपनी तरफ़

खींचने लगी। ध्यान स्थिर हो चुका था, बुद्धि फिर काम करने लगी थी। पांचू ने अपनी इच्छा का समर्थन किया। वह उस ओर बढ़ा। ताज़ा पैदा हुआ बच्चा मा की एक टांग पर चढ़ कर पड़ा हुआ हाथ पैर पटक रहा था और रो रहा था।

पांचू के लिए जीवन में यह एक नया अनुभव था। एक क्षण के लिए वह हतबुद्धि होकर खड़ा रहा, फिर संकोच उत्पन्न हुआ। नग्न नारी उसके सामने निश्चेष्ट पड़ी थी। बच्चा उसकी नंगी टांग पर पड़ा कमज़ोर आवाज़ से रोता हुआ धीरे-धीरे हाथ-पैर पटक रहा था। नाल की लंबी डोरी मा के शरीर से जुड़ी हुई थी।

पांचू को बड़ी लज्जा मालूम हुई। घूम कर वह लौटने लगा, लेकिन पैर आगे न बढ़े। इस असहायवस्था में एक सद्यजात शिशु और मा को छोड़ कर आगे बढ़ जाने के विचार पर उसकी आत्मा ज़ोर से धिक्कारने लगी। मगर साहस न होता था; मन ही मन लज्जा से वह गड़ा जा रहा था।

सहसा शिशु को बचाने की प्रेरणा इतनी प्रबल हो उठी कि पांचू का भय और संकोच टिक न सका। पांचू दृढ़ हो कर उस ओर घूमा। वह झुका। नारी में जीवन का कोई चिन्ह नहीं मालूम होता था। अपने संदेह को मिटाने के लिए पांचू स्त्री के खुले मुंह और नाक के पास हाथ ले गया। सांस नहीं चल रही थी। साहस कर के पांचू ने स्त्री की छाती के बीच हाथ रखे— धड़कन भी नहीं थी। स्वयं उसका हृदय इतनी ज़ोर से धड़क रहा था कि तबियत होती थी, उठ कर भाग जाय। मगर वह उठ न सका। स्त्री के शरीर में गर्मी से अनुमान किया, स्त्री को मरे हुए अधिक से अधिक दस-पन्द्रह मिनट हुए होंगे। फौरन ही उसका ध्यान शिशु की ओर गया। लड़का था, अत्यंत दुर्बल, गर्भ के मल से सना हुआ, नाल जुड़ी हुई।

पांचू के हाथ-पैर फूल रहे थे। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह बच्चे को कैसे बचाये, उसकी नाल कैसे अलग करे? कभी देखा नहीं, अनु-

भव नहीं--घर से निकलते ही वह मानव-जीवन की सब से बड़ी गार्हस्थिक उलझन में पड़ गया था। इतना उसने जरूर सुन रखा था कि नाल काटी जाती है। वह कैसे काटेगा? आसपास में नजर बेकार ही घूम गई। टूटा-उजड़ा हुआ घर था। बच्चे को बचाने की तीव्र इच्छा और घबराहट के साथ साथ अपनी असहायावस्था और अनुभवहीनता पर उसे बड़ी जोर से झुंझलाहट आ रही थी। मृत शरीर के साथ बच्चे का सम्बंध अधिक देर तक नहीं रहना चाहिए, उसके मन में यह बात बार-बार अपने-आप ही उपज रही थी। जी कड़ा कर के पांचू ने दोनों हाथों से खींच कर नाल बीच से तोड़ दी। बच्चा मा के शरीर से अलग हो गया। आधी लटकती हुई नाल समेत उसने बच्चे को हाथों में उठा लिया। कमज़ोर बच्चा रोते-रोते हांफ रहा था।

पांचू के सामने एक नई समस्या थी, बच्चा बचेगा कैसे? इसका कोई उत्तर उसके पास न था। लाश से ज़रा हट कर, बच्चे को गोद में लिए हुए पांचू टूटी हुई दीवार के सहारे बैठ गया। वह थक कर चूर हो गया था। दस रोज़ से भूखा था, आज सबेरे दो-दो-लाशों का बोझ उठा चुका था, शिबू की रोक थाम में भी बड़ी मेहनत करनी पड़ी थी, फिर उसके बाद इतना चल कर आया और अब यह श्रम! दीवार से सिर टिका कर पांचू ने आंखें बंद कर लीं। उसे बड़ी शांति मिल रही थी। गोद में बच्चा हाथ पैर पटक रहा था। तन और मन से अत्यधिक थका हुआ होने पर भी पांचू इस समय सुख और शांति का अनुभव कर रहा था। अपने अंदर वह एक किस्म की ताजगी महसूस कर रहा था।

पांचू ने आंखें खोलीं। बच्चे का क्या होगा? इसे हवा लगती होगी। पांचू ने अपनी कमीज उतार कर उसे उढ़ा दी।......बड़ा कमज़ोर है, कैसे बचेगा?......मगर बच जाय। कैसे भी हो इसको बचाना चाहिए। इसे दूध मिलना चाहिए। पायेगा कहां से हतभागा? अरे अकाल में जन्म लिया है। लोग मर रहे हैं और यह पृथ्वी पर मृत्यु को देखने आया है। मा मर गई बेचारे की।

पांचू का ध्यान उस स्त्री की ओर गया। बहुत दुबली नहीं थी। जान पड़ता है, कुछ रोज पहले तक इसे खाने को मिलता रहा है। कपड़ा भी बदन पर है। इस घर की नहीं मालूम होती। सूरत-शकल से भले घर की ही जान पड़ती है। किसके घर की होगी? यहां कैसे आई होगी? सारा इतिहास इसकी मृत्यु के साथ ही लुप्त हो गया है।

कल्पना अंधेरे में भटक कर लौट आई। पिछली रात की चांदनी के उजाले में पांचू ने देखा, बच्चा गोरा है। दुबला-पतला बहुत है, कहीं मर न जाय। रो रहा है, भूखा होगा। लेकिन भूख तो समस्या है।

एक सर्द आह पांचू के दिल से निकली। दस रोज़ से भूख की पीड़ा को सहते हुए उसे उसकी आदत पड़ गई है। एक तरह से भूख अब उसे सताती नहीं। हां, शरीर की कमजोरी और भूख की याद बेहद सताया करती है। बच्चे की भूख का खयाल कर उसे पीड़ा हुई। मगर कोई चारा न था। बच्चे पर ही उसने अपना सारा ध्यान केन्द्रित कर दिया। बच्चा रो रहा था। पांचू धीरे-धीरे अपनी टांगें हिलाने लगा। जरा देर बाद बच्चा चुप हो गया। पांचू को शक हुआ, फौरन ही बच्चे की नाक के पास हाथ ले गया। बारीक सांस की हवा उसने अपनी हथेली पर महसूस की। उसे राहत हुई। किसी तरह यह बच्चा बच जाय!....अगर मैं यहां न आता तो? शायद इसकी जान बचाने के लिए ही मैं इधर से आ निकला। शायद इसकी जान बचाने के लिए ही मेरे घर में वह कांड हुआ और मुझे घर छोड़ना पड़ा।

यह खयाल पांचू को बड़ा अटपटा-सा मालूम हुआ, मगर उसके साथ ही साथ यह घटना, यह एक नया और विचित्र अनुभव भी उसे एक बड़ा चमत्कार-सा मालूम पड़ रहा था।

उसके खयाल एक नये दायरे में घूमने लगे। एक नये दृष्टिकोण से वह तमाम बातों को देखने लगा। मनुष्य के जीवन में घटनाओं का चक्र किस तरह-से चलता है? एक के बाद एक घटना इस तरह से आ जाती है, जैसे वह पहले ही से निश्चित की गई हो। यह सब है क्या? क्या जो कुछ भी

होता है, वह अपने-आप होता है, अकस्मात होता है ? क्या जीवन घटना मात्र ही है ? कभी ये घटनायें हमारे जीवन में उखड़ी हुई सी आती हैं। उनकी विशृंखलता के कारण तर्क की सीधी गति में बाधा पड़ती है। परंतु यहीं तक क्या जीवन की घटनाओं का अंत हो जाता है ? क्या यह घटना नहीं कि अकाल बंगाल में ही फैला हुआ है। सदा का रोगग्रस्त और प्रखर बुद्धिवाला यह प्रांत ही क्यों सदैव सारी पीड़ाओं और यातनाओं को भोगता है ? यों तो सारा देश ही महान संकट और विपत्ति काल से गुजर रहा है, फिर भी बंगाल के ऊपर यह कांटों का ताज और क्यों रख दिया गया। क्या कारण है इसका ? क्या यह महायुद्ध घटना मात्र है ?

यह प्रश्न पांचू के तर्क की शक्ति के निकट आ गया था। महायुद्ध के कारणों को बुद्धि जानती है। अपने बौद्धिक क्षेत्र में आकर उसे एक तरह का सुख मिला। बच्चे की तरफ देखा, उसकी नाक पर हथेली रख कर सांस की गति मालूम की। प्यार भरी आंखों से वह बच्चे की ओर देखने लगा।

यह बच्चा जी जाय ! कामनापूर्ण नेत्रों से बच्चे की ओर देखते हुए उसे सहसा यह विश्वास होने लगा कि बच्चा जी जायगा। अपने इस विश्वास के लिए वह मन में तर्क खोजने लगा। पांचू ने सोचा--"गर्भ से ही यह बच्चा अकाल की यातनाओं को सहने की कठोरता ले कर पैदा हुआ है।"

इस तर्क के आधार पर पांचू सोचने लगा--"मा के मर जाने के बाद भी यह बच्चा जीवित रहा, क्या यह घटना जीवन के सत्य को सिद्ध नहीं करती ?"

इस विचार की पृष्ठभूमि में अकाल का चल-चित्र उसे दीख रहा था। विचार उसी दिशा में आगे बढ़े—"लाखों आदमी मर जाने पर भी बंगाल आज जीवित है। क्या इससे जीवन अजेय सिद्ध नहीं होता ?"

सवाल में ही जवाब के तौर पर जोरदार 'हां' की ध्वनि छिपी थी—जो निस्पृह नहीं थी। उसमें ख़ुदी की गूंज थी, बंगाल के जीवन को वह अपने जीवित बचे रहने में देख रहा था। इसीलिए समर्थन करने के लिए इस प्रश्न

के साथ ही पीड़ा व्यग्र होकर आंखों में छलछला उठी। उसका एक हाथ बच्चे के सिर के नीचे और उसकी टांगों पर रखा था। जैसे आंखें छलछलाईं, वैसे ही हाथों ने झटका खाया—हाथों ने बच्चे को पेट के पास घसीट लिया।

बच्चा जाग पड़ा; रोने लगा। पांचू का ध्यान बंटा। वह रोते हुए बच्चे की तरफ चौंक कर देखने लगा। वह झुंझला गया। उसे अपनी पीड़ा और अपने रोने में इस समय सुख मिल रहा था; दूसरे का रोना अखरा। मगर ग़लती चूंकि अपनी थी, इसलिए झुंझलाहट खुद अपनी ग़लती से ही उलझने लगी। ग़लती क्या है, यह समझ में नहीं आता था। उलझन डबल हुई; ग़ुस्सा चढ़ा। ग़ुस्सा बुद्धि में सेंध लगा कर फिर राजनीति के क्षेत्र में कूद पड़ा। तेजी के साथ वह सोचने लगा—"अपनी सेना के साथ सुभाष बाबू के आने पर बंगाल कहीं उनके साथ मिल न जाय, इसलिए बंगाल को पहले से ही तबाह कर दिया गया। यह अकाल भारत को गुलाम बनाए रखने की राजनीति है।"

पांचू जोश में आ गया। बच्चे के रोने पर ध्यान गया, जोश के साथ उस पर तरस आ गया। प्यार उमड़ा। उसने फिर टांगे हिलाना शुरू कीं और बड़े प्यार के साथ धीरे-धीरे, बच्चे को थपथपाने लगा। बच्चा क्रमशः सिसकियां भरते-भरते फिर चुप हो गया—"छोटी-छोटी आंखें मीचे पड़ा है। कैसा प्यारा है! बच्चे कैसे प्यारे लगते हैं। बच्चा किसी का भी हो, सब पर प्यार आता है।" पांचू को फौरन ही खयाल आया—"बच्चा ही तो बड़ा हो कर आदमी होता है। आदमी होते ही भेदभाव शुरू हो जाते हैं—क्रोध, घृणा, हिंसा!"

पट से पांचू को ध्यान आया, कल शाम ही बाबा ने कहा था—"उद्देश्य रहित की हुई यह तपस्या संसार में घृणा उत्पन्न करेगी। घृणा मत उत्पन्न करो पांचू! कामना करो कि तुम्हारी बलि मानव में प्रेम की भावना उत्पन्न करे।"

कल शाम को पांचू को यह उत्तर संतोषजनक न लगा था। इस समय उसके विचार चूंकि उसी दिशा में बहने लगे थे, इसलिए बाबा का प्रवचन तुरंत ही ध्यान में आ गया। इस रूप में अपने विचारों का समर्थन पा कर वह पुलकित हो गया। बच्चे को ओर देखने लगा; बच्चा सो रहा था। प्रेम की भावना इस समय प्रबल थी। बच्चा 'बहोऽत ही' प्यारा लगा। सहसा विचार आया--"यह प्यार कहां से आया ? इतनी ही देर में मुझे इससे ममता क्यों हो गई। मैंने इसे बचाया इसीलिए न ? मैंने एक जीवन को बचाया। ठीक-ठीक, यों कहा जाय, कि जीवन के प्रति मेरे प्रेम ने जीवन को बचा लिया--सच !"

पांचू बहुत खुश हुआ--"तब फिर मैं इसे अपनी करतूत क्यों मानूं?" इस खुशी ने दिमाग़ को हलका-सा नशा दिया। वह सोचने लगा--"जीवन आप अपने को बचाता है। अनेक रूपों में, और अनेक स्वभावों में एक ही जीवन रमता है।"

पांचू भी रमने लगा। वह सोच रहा था--"अपने अस्तित्व को हर शरीर में सिद्ध कर के वह अपनी संगठित एकता का परिचय देता है। यही समाज है।"

यह पढ़े-सुने तो सदा के थे, मगर गुनने आज बैठे। गुनने बैठे तो उनको अपना बना लिया। युगों के तराजू पर पांचू गोपाल अपने वाक्यों को वेदवाक्यों से तोलने लगे। दोनों पलड़े कांटा नोक सधे हुए जंचे। जो बड़े-बड़े कह गये, वही हम भी कह रहे हैं।

बुद्धि का गुब्बारा फूलने लगा--"इकाई की चेतना मनुष्य को भ्रमवश एक ही शरीर, एक ही रूप की सीमा में देखने लगी। परंतु ज्यों-ज्यों सत्याग्रह द्वारा मनुष्य अनुभव प्राप्त करता गया, उसने अपने को इस भ्रम से मुक्त कर कुटुम्ब और समाज की स्थापना की। इकाई की चेतना ने तब सामूहिक रूप तो धारण कर लिया, मगर वह तब भी मानव-समाज के बड़े-बड़े भागों में, अलग-अलग बंटी रही। अज्ञान में सत्य का आलोक छिपाए ये बड़े-बड़े

समाज आगे बढ़े। अनेकों स्थूल-दृष्टि-सुगम-भेदभावों के कारण मनुष्य मनुष्य को अपरिचित लगा। अपरिचय से भय और भय से हिंसा। हिंसा मनुष्य के अंदर अज्ञान से उत्पन्न है....."

पांचू इस बात के प्रति चैतन्य था कि वह सोच रहा है। उसके विचार इतने ऊँचे जा रहे हैं, इसकी उसको खुशी थी। इस खुशी की चेतना से उत्साह पा कर, उसकी विचारधारा दिमाग़ की ऊपरी सतह पर बहती ही चली जा रही थी—"हिंसा, अज्ञान का नाश करने के हेतु, उत्पन्न हुई सद्प्रेरणा की ही प्रतिक्रिया है। निर्माण द्वारा सत्य को प्राप्त करने के लिए यह ज्ञान की अति तीक्ष्ण वृत्ति, अपनी ओर से चेतना विमुख होने के कारण ही हिंसा बन जाती है। हिंसा में भी उसका अलक्षित उद्देश्य अपनी इकाई को ही सिद्ध करना होता है। स्थूल अज्ञान को काट डालने की चेतना तो ठीक है, ग़लत सिर्फ़ इतना ही है कि हिंसा द्वारा वह केवल अपनी (व्यक्तिगत) इकाई को ही सत्य सिद्ध करने का भ्रमपूर्ण प्रयास करता है। उपचेतन में उसे इस भ्रम का ज्ञान अवश्य रहता है, क्योंकि हिंसा की भावना उत्पन्न होने से मनुष्य को कभी आनंद प्राप्त नहीं होता।" खयाल आया, खुद भी चौंके—"हां, ये बात है! मैंने इतनी बढ़िया बात सोच ली!"

पांचू अपने आप को महापुरुष के रूप में अनुभव कर रहा था। संसार को बचाने वाला मसीहा, संसार को जगाने वाला पैगम्बर और संसार को आलोक देने वाला अवतार एक अनजान बच्चे को बचा कर, दीवार के सहारे बैठा हुआ लोक कल्याण के लिए चिंतन कर रहा है। घमंड था तो यहां तक, मगर बहुत दबा हुआ। इसकी बहुत हलकी-सी चेतना से बुद्धि झेंप कर अपने विचारों को अपूर्व शांति के रूप में अनुभव करने लगी। और उसी अपूर्व शांति की छाया में अवतार—पैगम्बर—मसीहा ने बच्चे की ओर प्यार भरी नज़रों से देखा। बच्चा उसे इतना प्यारा लगा कि उसे जगा कर खेलने की इच्छा हुई। 'अवतार' एक अनजान बच्चे को खिला कर, प्यार जता कर, उस मानव-शिशु का महत्व बढ़ाना चाहता था। फौरन ही भूल का

ध्यान आया। जागेगा तो रोने लगेगा। अपनी भूख का ध्यान भी आया। 'अवतार' भी दस रोज से भूखा रहने को मजबूर है। 'अवतार' के साथ मजबूरी का खयाल कुछ जमता नहीं। गुस्सा आ गया। अकाल लाने वाले राक्षसों के ऊपर क्रोध 'अवतार' को ही आ रहा था, मगर बुद्धि और तर्क पांचू के ही थे। पांचू तेज होकर सोच रहा था—"हमारी आजादी की न्यायपूर्वक मांग के एवज़ में हमें अकाल दिया जाता है? सन ४२ का दमन दिया जाता है? सन ४२ का भारत-दमन सामूहिक रूप से विश्व की मानवता का शिरोच्छेदन करने का एक अति अमानुषिक प्रयास था। मनुष्य की सहज उठी हुई स्वतंत्रता की प्रेरणा को बर्बरतापूर्वक कुचल कर उसके मन में सत्य और जीवन के प्रति अनास्था उत्पन्न करने का राक्षसी कृत्य था वह दमन। इतना नहीं सोचता मनुष्य कि जो अत्याचार वह दूसरों पर करता है, वही उलट कर यदि उसके ऊपर किये जायं तो?"

दुनिया उसके सामने कितनी नादान है, इतनी सी बात भी नहीं समझती! नादानों की लिस्ट में बड़े-बड़े नाम अंतर्चेतन में थे, हिटलर, मुसोलिनी, चर्चिल, तोजो, रूजवेल्ट, स्टालिन—ये दुनिया के सूत्रधार कितने अहमक हैं जो हेडमास्टर पांचू गोपाल मुकर्जी से सबक नहीं लेते! इस खयाल की वजह से खुशी थी; साथ ही साथ अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों को, ख्याल के बहाने, अंगरेज़ों पर लागू कर उन्हें अकाल-पीड़ित देख कर, खुशी हुई। ख़याल की आड़ में यह ख़याली तसवीर इतनी तेज़ और तीखी थी कि उसने गुज़रते-गुजरते में अपनी आड़ को भी काट दिया। असलियत खुल गई। हिंसा की जिस वृत्ति का वैज्ञानिक रूप से विश्लेषण करते हुए कुछ देर पहले उसने अपने को समझाया था, इस वक्त वह ख़ुद ही उस चक्कर में पड़ गया। ख़ुदी का गुब्बारा फूलते-फूलते फट गया। ख़ुद अपने आपके सामने ही बड़ी झेंप मालूम पड़ने लगी। अवतार का भूत उड़न-छू हो गया। उसे बड़ी तकलीफ होने लगी:—"समझते हुए भी फिर वही भूल कर बैठा।" क्षुब्ध अहं ने अपने मार खा जाने का कारण बुद्धि की गैर-जिम्मेदारी में देखना चाहा, जिसका नतीजा उलटा ही हुआ। अपनी परेशानी के जवाब

में उसे ख़याल आया।––"मैं जो कुछ सोचता हूं, सही मानता हूं, उसे करता नहीं।"

बच्चा हिला; रोने लगा। पांचू का ध्यान उचटा। बच्चे को उठा कर अपने सीने से लगा लिया––"इसे बचाना चाहिए। इस वक्त इसकी चिंता करना ही मेरा सब से बड़ा काम है।"

पांचू उठ खड़ा हुआ। रोते हुए बच्चे को कंधे से चिपका कर 'आ-आ' कर के चुप कराने लगा। बच्चे का गर्म स्पर्श उसके हृदय को करुणार्द्र करने लगा। प्रेम ने उसके वाह्यांतर को रोमांचित कर दिया। मन अपनी असीम-सी लगने वाली सीमाओं के साथ शांतिमय हो गया। इतना गहरा संतोष, अहम रहित चेतना की यह शांति, अंतर के गहन छोर से उदय हो कर कुछ पल के लिए उसे आत्म-विस्मृति और आनंद की लहर में बहा ले गई।

पांचू इस नवीन अनुभव के प्रति चेतन हुआ। अपूर्व अनुभव था, कितना आनंद था। चेतना उत्पन्न होते ही वह आनंद सत्य न रह कर उसकी छाया-मात्र रह गया। कुछ भी हो, पांचू का मन इस समय छक गया था। अकाल की सारी पीड़ाओं की थकावट और चिंताओं का बोझ उतर गया था। वह बहुत निर्मल, शांत, और हल्का अनुभव कर रहा था। बच्चे की पीठ पर हाथ फेरते हुए प्रसन्न हो कर उसने सोचा––"यह अनुभव मुझे इस बच्चे से मिला है।....और मेरा यह अनुभव भी इस बच्चे की ही तरह अंकुरमात्र है। दोनों साथ-साथ बढ़ेंगे। मैं इसे इसी रूप में देखूंगा। मेरा ध्यान बराबर जमा रहेगा, फिर कभी ग़लती न होगी।"

बच्चे के कंधे से चिपका कर पांचू टहलने लगा। एक गुदगुदी-सी अनुभव करते हुए उसने सोचा––"इसका नाम? नाम क्या रखूं इसका? कैसा नाम रखूं? इसकी जाति क्या है?"

पांचू ने उसकी माता की तरफ देखा। वह धरती की तरह शांत पड़ी थी। पांचू ने आगे सोचा––"इसकी जाति भला क्या हो सकती है? इसकी मां कौन है? अपने को इसकी मां कहने वाला जीव तो चला गया। आदमी

का बेटा है, मैं इसे आदमी ही कहूंगा। यह जाति वर्ग वगैरा से पाक है।.... यह सब तो है, मगर अब इसके पालने की फिक्र करनी चाहिए। कहां ले जाऊँ इसे?"

रास्ता सूझता नहीं। मन अकुलाया। घर की याद आई; मंगला की याद आई। वह इसे पालेगी।

मन में संकोच हुआ—"जिसे छोड़ कर चला आया, उस घर में क्या लौट कर जाऊँ? इस खयाल से जो पीड़ा हुई, उसे दूर करने के लिए संतोष आया। खयाल आया—"मुझे अब यह बड़ा घर मिल गया है। सारी दुनिया मेरा घर है।"

पैगम्बरपन से बचने के लिए फिर हल्का-सा झटका खाया—"यह सब होते हुए भी आदमी के लिए एक घर तो चाहिए ही। और क्या मेरे घर वाले इस दुनिया से अलग हैं? फिर उन्हें क्यों छोड़ दूं?....मगर वहां तो आप ही बुरा हाल है, इस बच्चे की परवरिश क्या होगी। सब लोग सोचेंगे, मंगला कहेगी, यह क्या नई बला ले आये?"

पांचू नहीं चाहता था कि उसके 'आदमी' को बला समझा जाय। उसे तकलीफ हुई। मगर, फिर सोचा, मंगला ऐसा नहीं सोचेगी। उसका हृदय बड़ा कोमल है। स्त्री का हृदय बड़ा कोमल होता है, उसमें मा की ममता सहज ही उत्पन्न होती है। मंगला के अंदर सोई हुई मा इसे जरूर छाती से लगा लेगी।

मंगला की याद आई। उसे सुख हुआ। मंगला के प्रति फिर नया आकर्षण जागा। घर लौट चलने की इच्छा हुई। वह सोचने लगा—"घर से भाग आना मेरी कायरता थी। मैं अपने कर्त्तव्य से भाग आया। हां, और नहीं तो क्या? मैंने अकाल से लड़ने की कोशिश ही नहीं की। सिर्फ़ तकलीफ़ ही सहता रहा। अपने लिए मांगने में शर्म आती थी। शर्म क्यों आती थी? आबरू जाने के डर से! मगर वह तो फिजूल है। भूख शर्म की बात नहीं; सब को लगती

है। मैं सब की भूख के लिए मागूंगा। सब की भूख में मेरी भूख भी तो शामिल है, मेरा घर और ये 'आदमी' भी तो शामिल है।"

पांचू के मन में नई आस्था जागी—"हां, मैं लड़ूंगा। मोनाई से, दयाल से—उन सब लोगों से जिनके पास सब की भूख के साधन छीन कर जमा हैं।"

दिमाग़ में ग़ुस्से की हल्की लहर सी उठी। उसके विरोध में फिर फ़ौरन ही ख़याल आया, उनका अपराध नहीं। सारे अत्याचार नासमझी की वजह से करते हैं। और यह नासमझी युगों से हमारे साथ है। क्या मुझ में नहीं है? किसमें नहीं है? लेकिन यह नासमझी दूर कैसे हो? जिस पाशविक शक्ति के बल पर मानव समाज का सत्तावादी वर्ग इस नासमझी का पोषण कर रहा है, क्या उसके आगे सिर झुका देना ठीक होगा? क्या यह सत्य के प्रति अन्याय न होगा? अवश्य होगा? इस अन्याय की जड़ उखाड़ फेंकना ही हमारा धर्म है। यही सत्य है।

अन्न मनुष्य के खाने के लिए है। अन्न की क़ीमत पैसा नहीं, मनुष्य की भूख है। व्यक्ति का स्वार्थ समाज की भूख को नहीं खा सकता! मनुष्य के जन्म-सिद्ध अधिकारों का अपहरण नहीं कर सकता।

पांचू अपने में एक नई स्फूर्ति का अनुभव करने लगा। खोया हुआ भविष्य और अकर्मण्य वर्तमान जीवन की नई आशा और विश्वास से शक्तिशील हुआ।

उसने सोचा—"हम लड़ेंगे। हम अन्न के हर गोदाम पर कब्जा करेंगे। हम जियेंगे।"

लेकिन इससे अत्याचार और बढ़ेंगे, घृणा उत्पन्न होगी। और न लड़ने से? क्या घृणा उत्पन्न नहीं होगी? आत्मपीड़ा पहुंचा कर तो शर्तिया होगी। सत्ता की बलिवेदी पर लाखों नर-नारियों का जो यह अमानुषिक बलिदान हुआ है उसका परिणाम दिन के उजाले की तरह स्पष्ट है। घृणा एक ओर सत्य को आड़ लेकर लड़ेगी, दूसरी ओर स्वार्थ की। सत्य स्वार्थ पर विजय पायगा, परंतु, घृणा साथ रहेगी। विजय-लिप्सा प्रतिक्रियावश पाशविक बनेगी। और

आदिमयुग के मानव की परम्परा से प्राप्त पशुवृत्ति का अपने अंदर से नाश करना ही सच्ची क्रांति है। यही नये जीवन को गतिशील करेगा।

बच्चा कुनमुनाया। पांचू का ध्यान उधर गया। उसे प्यार से थपथपा कर उसी तेजी से वह सोचने लगा—"हमारा बलिदान, हमारी कर्मण्यता और हमारी क्रांति इस बच्चे की दुनिया को इन्सान के रहने योग्य बनायेगी, जिसमें अमीर गरीब न होंगे, रंगभेद न होगा, धर्मभेद न होगा, जातीयता और राष्ट्रीयता न होगी—एक दुनिया होगी, एक मानव समाज होगा।"

एक सुखद कल्पना पूरी हुई। उससे मन आनंद से भर उठा। मगर उसके साथ ही उसने सोचा—"लेकिन इस सपने को साकार करना है। विचारों के चौराहे पर खड़े हो कर अकर्मण्यता का तमाशा देखना फिजूल है। वे आदर्श और सिद्धांत झूठे हैं, जिन पर अमल न हो सके? तब? मुझे क्या करना है?"

पूर्व निश्चय के साथ एक-एक विचार उतरने लगे; घर चलना है। इस बच्चे की जान बचानी है। मानव हृदय में जिस स्वार्थ रहित प्रेम और कर्त्तव्य का आभास मुझे इस बच्चे द्वारा मिला है, उसे कर्म में बदलना है—रोटी लेनी है; अपना जीने का अधिकार सुरक्षित करना है। दयाल और मोनाई वर्ग हमारा वह अधिकार अब अपने तावे में नहीं रख सकता। यह वर्ग हमारे ऊपर अत्याचार करता किस बल पर है? हमारे ही कुछ आदमियों को अपनी पूंजी और स्वार्थ में हिस्सेदार बना कर बहका लेता है। छेदासिंह, दयाल के पछाहीं लठैत, पुलिस, फौज के सिपाही यह सब कौन हैं? हमारे ही आदमी हैं, पीड़ित मनुष्यता के ही अंग हैं। ये हमसे दूर नहीं रह सते। हमारा संगठन, हमारा नैतिक बल, हमारी न्याय की आवाज इन्हें बहुत दिनों तक हमसे दूर नहीं रख सकती। सत्तावादी पूंजीपतियों का वशीकरण मंत्र अब अधिक दिनों तक इन्हें अपने जादू में नहीं बांधे रह सकता। जनशक्ति, जनक्रांति सत्तावादियों के स्वार्थ के क़िले तोड़ देगी। तभी, हमारी शक्ति से हमको ही डरानेवाला मानव समाज का यह छोटा-सा वर्ग अपंगु हो कर चेतेगा। पैसा ही उसकी सर्वोपरि शक्ति है। जब वह पैसे से हमें खरीद नहीं सकेगा तो आप सही

रास्ते पर आ जायगा? उसकी घृणा का लक्ष्य भी वही होगा जो हमारा है—पूंजी और सत्ता!

सवेरा हो चला था। पूरब में लाली छा रही थी। पांचू घर का तरफ बढ़ रहा था। पांचू के कर्त्तव्य का मार्ग स्पष्ट और निश्चित था।

*   *   *   *

परेश रात ही में मर चुका था। मुंह अंधियारे उठ कर पार्वती-मा पांचू को पुकारने के लिए सीढ़ी तक गईं। दरवाजे के पास कोई सिर झुकाये बैठा था। अंधेरा था, कुछ साफ न सूझा। पूछा—"कौन?"

"मैं!"

मंगला की आवाज़ इतनी गंभीर कभी नहीं सुनी। पार्वती मा सन्न रह गईं—"छोटी बहू तुम! पांचू कहां है?"

छोटी बहू के यहां बैठे रहने का और मतलब ही क्या हो सकता है? पार्वती मा झपट कर आगे आईं। मंगला उठ कर खड़ी हो गई। बड़ी-बड़ी आंखें जबर्दस्ती खुश्क रहना चाहती थीं। मंगला की चिंता में गहरा मान समाया था—"मुझसे बिना कहे चले गये?"

रात बड़ी देर बाद भी जब पांचू ऊपर नहीं आया तब मंगला को संदेह हुआ। तब तक मंगला अपनी 'बकुल फूल' के बारे में ही सोचती रही थी; उसके दिल में इस वक्त क्या बीत रही होगी? ज्याठा मोशाई सदा के ऐसे ही हैं। बड़ी बहू बिचारी ने जाने ऐसे कौन से पाप किये हैं? जनम की दुखियारी रही है बिचारी। भगवान भला ऐसे किसी की लाज लेता है? मैं तो फिर जीती न उठती।

दांती जकड़ गई, रोंगटे खड़े हो गए, सारे शरीर में कंपकंपी सी दौड़ गई, मंगला की आंखें भर आईं। ध्यान तुरंत ही पांचू की तरफ़ दौड़ा, अभी तक नहीं आये?

मंगला का दिल धक से हो उठा। वह फिर बैठी न रह सकी। उतर कर नीचे आई। मा की कोठरी बंद थी। बाबा अपनी कोठरी में पड़े थे। कहीं नहीं। दरवाजा देखा, खुला था। मंगला के पैरों तले धरती निकल गई। फिर सोचा, भाई के पीछे गये होंगे। मगर ज्याठा मोशाई इस वक्त आपे में थोड़े ही हैं। लाख बेहया हों, मगर कोई भी समझदार आदमी ऐसा काम हरगिज नहीं करेगा। वह जरूर पागल हो गये हैं। इनके बस के नहीं हैं। कहीं कुछ उलटा-सीधा न हो जाय!

मंगला दरवाजे के पास पांचू के लौट आने की आस में बैठी रही। ज्यों-ज्यों रात बीतती जाती, अपने आंसुओं को रोकने के लिए वह पत्थर होती जाती। वह मान किये बैठी रही: "मुझसे बिना कहे गये क्यों?" जब बड़ी देर हो गई तो उसके मन में अनायास शंका जागी: "ज्याठा मोशाई के पीछे नहीं गये। वे चले गये हैं—सदा के लिए घर छोड़ कर चले गये हैं। अब नहीं आयेंगे। उनको बड़ा सदमा पहुँचा है। पर मुझसे कह कर क्यों नहीं गये? साथ नहीं रखना चाहते थे, न सही! मुझसे बता कर तो जाते।"

पार्वती मा के पूछने पर मंगला जब्त न कर सकी। लाख न चाहने पर भी मंगला का गला भर आया; आंखें छलछला उठीं। वह बोली—"ज्याठा मोशाई के जाने के बाद ही कहीं...."

इससे अधिक वह न बोल सकी। सुन कर मा चुपचाप खड़ी रहीं। वह पत्थर हो गई थीं। एक बार राह पाकर मंगला के आंसू फिर न रुके।

सहसा बाहर की कुंडी खटकी। पार्वती मा दरवाजे की ओर देखने लगीं। मंगला ने बड़ी आशा के साथ झपट कर दरवाजे की कुंडी खोल दी। मंगला और मां सहम कर पीछे हट गई। शिबू ने नूरुद्दीन के साथ घर में प्रवेश किया।

मंगला दरवाजे के पीछे हो रही थी। मा से शिबू की आंखें मिलीं। मा ने फौरन ही मुंह फेर लिया। भारी आवाज़ में शिबू नुरुद्दीन से बोला—"चले आओ भीतर।" कह कर शिबू अन्दर की ओर बढ़ा। नूरुद्दीन पीछे-पीछे चला।

पार्वती मा ने उन्हें अंदर जाते हुए देखा। मंगला दरवाज़े के पास ही सहमी हुई खड़ी थी।

शिबू ने दालान में प्रवेश किया। मा की कोठरी सामने थी। बड़ी बहू बुत की तरह बैठी थी। परेश की लाश पास ही पड़ी थी। दीनू और तुलसी पास ही लेटे हुए थे।

शिबू सीधा कोठरी में पहुंचा। तुलसी सहम कर उठ बैठी। बड़ी बहू ने आंखें ऊपर की ओर उठाईं। वह शिबू को देखने लगी। वह भावना और विचार शून्य हो चुकी थी। शिबू को देख कर वह न तो चौंकी, न सहमी—बस देखती ही रही। शिबू ने शक्ति भर कड़क कर हुक्म दिया—"उठ !"

बड़ी बहू चुपचाप बैठी ही रही। उसकी निगाहें बराबर शिबू पर ही जमी रहीं।

मा अन्दर आ गई थीं। शिबू से तेज़ आवाज़ में बोलीं—"क्यों आया है यहां ?"

शिबू ने मा को कोई जवाब न दिया; उनकी तरफ़ देखा भी नहीं। तेजी से बड़ी बहू का हाथ पकड़ कर घसीटा और डपट कर बोला—"उठ !"

घसीटे जाने के कारण बड़ी बहू औंधी होकर ज़मीन पर गिर पड़ी।

मा ने आगे बढ़ कर बड़ी बहू का हाथ छुड़ाने की चेष्टा करते हुए शिबू से कहा—"छोड़ दे उसे। जा मेरे घर से चला जा।"

अपने दोनों हाथों से पार्वती मा शिबू को पीछे ढकेलने लगीं। शिबू ने जोर से मा को धक्का देते हुए कहा—"चल हट !"

मा गिरने लगीं। दीनू नीचे ही पड़ा था। चीख मार कर तुलसी झपटी और मा को दोनों हाथों से पकड़ लिया। दीनू तो बच गया, मगर तुलसी न सम्हल सकी। मा को लिए-दिए ही धरती पर गिर पड़ी।

मा घबरा गई थी। वह जल्दी उठ भी न सकी। बड़ी बहू पत्थर की तरह बैठी रही। तुलसी नीचे ही दबी हुई थी; उठने की कोशिश कर रही

थी। शिबू भी एक सेकेंड के लिए सहम गया था। नूरुद्दीन कोठरी के दरवाजे पर आ गया था। उसे देख कर शिबू होश में आया। बड़ी बहू का हाथ झटक कर बोला—"उठती है कि नहीं।"

बड़ी बहू ने एक बार बच्चों की तरफ़ देखा; मुंह फेर लिया और चुपचाप उठ खड़ी हुई।

मा चारों तरफ़ से घिर गई थीं। उनकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था।

शिबू जल्दी से बड़ी बहू को घसीटता हुआ कोठरी के बाहर ले आया।

"लाओ, चावल लाओ।" बड़ी बहू को नूरू की ओर ढकेलते हुए उसने कहा।

मा से इसका आशय छिपा न रहा। नूरुद्दीन को देख कर मा के मन में जो आशंका उत्पन्न हुई थी, वह ठीक निकली। नूरुद्दीन से शिबू के चावल मांगते ही मा काबू से बाहर होकर तड़प उठीं। तुलसी अभी भी उन्हें पकड़े हुए खड़ी थी। तुलसी के हाथ से छूट कर मा आगे आईं। वह हिंसक रूप से क्रुद्ध हो उठी थीं। उन्होंने उछल कर दोनों हाथों से शिबू का गला पकड़ लिया—"मैं तुझे मार डालूंगी। मैं तुझे जीता न छोड़ूंगी।"

पीछे से वार हुआ था। शिबू का गला घुट रहा था। नूरुद्दीन ने आगे बढ़ कर शिबू को पार्वती मा के हाथों से मुक्त किया। शिबू हांफते हुए पुनः शक्ति संचय कर मा की ओर झपटते हुए बोला—"साली, मुझे मारना चाहती थी। हें !"

नूरुद्दीन ने फौरन ही शिबू को पकड़ लिया—"ये क्या बचपना करते हो बड़े ठाकुर ! अरे चावल लो, खाओ पियो, मौज करो। ये भी अपने धरमशाले जायेंगी, खायेंगी, पियेंगी, मौज करेंगी। गहना है, कपड़ा है...."

"नहीं !" पार्वती मा ने झपट कर दोनों हाथों से तुलसी और बड़ी बहू को दबोच लिया—"तेरे घर में बहू-बेटियां नहीं हैं। जा, उन्हें धरमशाले में ले जा। जा, चला जा। निकल !"

पार्वती मा इतनी जोर से चीखीं कि उनकी आवाज़ उखड़ने लगी। शिबू ने बड़ी बहू को अपनी तरफ घसीट कर कहा—"ये मेरी वस्तू है। मैं इसे बेचूंगा।"

"नहीं! नहीं! हट!" मा हांफ-हांफ कर धीरे-धीरे अपना विरोध जाहिर कर गफ़लत में डूब रही थीं। वह गिरने लगीं। तुलसी के कंधे पर उनका एक हाथ था। अपनी शक्ति को एकत्रित करने के लिए वह जूझ रही थीं। तुलसी के कंधे पर दबाव पड़ा और वह भी मा के साथ लड़खड़ा कर बैठ रही।

शिबू की आंखें लाल हो रही थीं। वह तेज होकर बोला—"मैं इसे बेचूंगा। मुझे भूख लगी है--भूख! ला, चावल ला!"

बड़ी बहू पत्थर की तरह चुपचाप खड़ी थी। तुलसी मा के हाथ को अपने कंधे पर अनुभव करते हुए उसके भार को महसूस कर रही थी। उसका चेहरा तमतमा उठा था। वह अंदर ही अंदर अपने से लड़ रही थी।

नूरुद्दीन ने गठरी खोली। शिबू चावल देख कर हिंसक आह्लाद के साथ उस ओर झपटा। तुलसी ने भी चावलों को बड़ी भूखी दृष्टि से देखा।

मा अभी भी अपनी काबू में न आई थीं। सांस बड़ी जोर से चल रही थी।

नूरुद्दीन ने दो मुट्ठी चावल निकाल कर धरती पर रख दिये और पोटली बांधने लगा। शिबू ने चौंक कर देखा—"बस?"

"और क्या करूँ, क्या खज़ाना भर दूं। हड्डियों का ढांचा तो खड़ा है। हां, इसके लिए आध सेर तक दिया जा सकता है।" नूरुद्दीन ने तुलसी की तरफ देख कर कहा।

तुलसी ने उत्साहित होकर उठना चाहा। मा ने उसे दोनों हाथों से दबोच लिया और भिखारी की तरह दयनीय दृष्टि से शिबू को देख कर कहने लगीं--"बेटा, मेरी जान न ले। मेरी आबरू न ले बेटा! मैं तेरे पांव पड़ती हूं।"

पार्वती मा कहती जातीं और तुलसी को दबोचती जातीं। आंसुओं का वेग प्रबल हो रहा था।

शिबू का ध्यान इस ओर न था। बड़ी बहू के लिये इतने कम-चावल मिल सके, इसी बात पर अपने सारे गुस्से का भार रख कर वह बड़ी बहू की ओर झपटा—"साली, तेरे दाम कम लगे।"

पास आने के पहले ही सूखी हड्डियों की शक्ति का भरपूर तमाचा शिबू के मुंह पर पड़ा। बड़ी बहू के हाथ से तमाचा खा कर शिबू चौंक उठा, क्रोध आया। नूरुद्दीन फौरन ही आगे बढ़ कर बड़ी बहू के आगे आते हुए, शिबू के दोनों हाथ पकड़ते हुए जोर देकर बोला—"अब ये मेरी हो चुकी है बड़े ठाकुर।"

मजबूत हाथों में पड़ कर शिबू का गुस्सा सहम गया। बड़ी बहू का हाथ पकड़ कर नूरुद्दीन चला। मूक पशु की भांति बड़ी बहू एक मालिक से दूसरे के हाथों में चली गई।

कल रात की घटना के बाद से बड़ी बहू एक शब्द नहीं बोली थी। परेश मर गया। बड़ी बहू ने एक नज़र से उसे देख कर मुंह फेर लिया था। सारी रात घुटनों को हाथों से बांधे सिकुड़ कर वह बैठी रही थी। फटी आंखों से किसी एक तरफ देखते हुए वह वक्त गुजार रही थी। उसका ध्यान किसी ओर भी नहीं था। लाज खो कर वह भावशून्य हो गई थी। उसके चेतन मन में केवल घृणा के संस्कार शेष थे, उसके चित्त की सारी वृत्तियां उसी में लय हो गई थीं। बड़ी बहू बिक गई। उसके मन में धरमशाले का ज़रा भी भय न था। विवाह के बाद से आज तक शिबू के प्रति उसने अपने मन में घृणा को ही पाला। शिबू ने अपनी पत्नी को सदा दासी की तरह ही मान दिया था। जूते की धूल ज्यों बार-बार झाड़ी जाती है और फिर लिपट जाती है—बड़ी बहू के लिए पति के चरणों के सिवा दूसरी गति ही नहीं थी। शिबू के अत्याचारों का खिलवाड़ बड़ी बहू को अपनी परवशता के प्रति दिन रात घृणा उत्पन्न कराता रहा। शिबू का भय उस पर हरदम छाया रहता

था। दो मुट्ठी चावलों के बदले में बिक जाने के बाद वह पूर्ण रूप से भय-मुक्त हो गई थी। शिबू को तमाचा मारने का साहस इसी की प्रति-क्रिया थी। धर्मपत्नी, सहधर्मिणी अर्द्धांगी आदि विशेषणों की अधिकारिणी वेद-पुराण पूजिता नारी व्यवहार में पुरुष की तुच्छ से तुच्छ दासी बन कर, अपने स्वामी द्वारा प्रति दिन होने वाले अत्याचारों की आदी हो गई थी। अत्याचारों के प्रति नारी का भय अपनी समस्त क्रिया-प्रतिक्रिया की कड़ी आंचों को सह चुकने के बाद निस्तेज हो चुका था। एक प्रकार का जीवन बिताते-बिताते नारी जीवन का रस खो चुकी थी। फिर दासता के रूप में ही सही, लेकिन नारी के जीवन में नया परिवर्तन आ रहा था, फिर प्रगति हो रही थी। एक क्षण के लिए ही सही, किंतु दासता की घोर अगति में परिवर्तन द्वारा गति का आभास पा कर नारी ने नया बल पाया था। स्वामी (पुरुष) के रूप में भय और घृणा को तमाचा मार कर नारी ने विद्रोह किया; विद्रोह की भावना का जोश फिर नई अगति की ओर बढ़ा।

नूरुद्दीन और बड़ी बहू दालान पार कर दरवाजे की ओर बढ़ रहे थे। अपनी बेबसी में जकड़ी हुई पार्वती मा तुलसी को अपनी बाहों में पूरा बल लगा कर कसती जा रही थीं।

चलते हुए नूरुद्दीन ने इशारे से तुलसी को अपनी तरफ बुलाया। उसके इस आमंत्रण में एक विचित्र मादकता थी, लालच था।

बीबीबी का दादा को तमाचा मारना, उनका नूरुद्दीन के साथ आगे बढ़ना और नूरुद्दीन का इशारा तुलसी को खुले विद्रोह के लिए प्रेरित कर रहा था। तुलसी मा के शरीर से चिपक कर दबी जा रही थी। रो-रो कर पार्वती मा गुहार कर रही थीं—"अरे, मेरी आबरू गई! हाय! सुनते हो! तुम्हारे बेटे ने मेरी आबरू ले ली!"

"मैं भी जाऊँगी।" सहसा तुलसी चीख उठी और पूरी ताकत लगा कर मा की बाहों के बंधन को तोड़ कर, उन्हें धक्का देते हुए तुलसी नूरुद्दीन की तरफ़ धाई।

पार्वती मा का रुदन सहसा स्तम्भित हो गया। वह आंखें फाड़ कर तुलसी को देखने लगीं। तुलसी के पास जाने के लिए पार्वती मा के प्राण शरीर का मोह त्याग कर निकल आये।

शिबू चावलों के पास बैठा हुआ, पहली मुट्ठी फांकने जा रहा था, वह चौंक कर तुलसी को देखने लगा।

नूरुद्दीन बड़ी बहू का हाथ पकड़ कर खड़ा हो गया। तुलसी के लिए उसने मुस्करा कर दूसरा हाथ बढ़ा दिया।

शिबू कच्चे चावल चबाना छोड़ कर सहसा उठ कर लपका। नूरुद्दीन अपने बचाव के लिए सावधान हो गया। शिबू ने पास आकर गिड़गिड़ाते हुए कहा--"नूरुद्दीन इसके चावल?"

नूरू अकड़ा--"किसके चावल जी?"

उँगली के इशारे से तुलसी को बता कर गिड़गिड़ाते हुए शिबू चा[वल] मांगने लगा।

नूरुद्दीन दोनों औरतों के साथ दरवाजे की तरफ बढ़ते हुए बोला--"अबे कैसे चावल? ये तो अपनी खुशी से जा रही है।"

तुलसी खुशी से जा रही थी। उसने सुन रखा था कि धरमशाले में सिर्फ जवान औरतें ही भरती की जाती हैं। वहां उन्हें खाने को मिलता है, पहरने को मिलता है, बड़ा सुख मिलता है। तुलसी भी खाना चाहती है, कपड़ा चाहती है और वह सुख चाहती है, जो उसे अभी तक नहीं मिला, जिसकी वह बरसों से कल्पना करती आई है।

नूरुद्दीन उसे आगे बढ़ा कर ले चला।

शिबू रोते हुए बच्चों की तरह मचला--"मेरा चावल दो!"

चलते-चलते जरा रुक कर नूरुद्दीन ने एक बार सिर से पैर तक शिबू को देखा और हंस पड़ा। बोला--"अबे, ये टापटिप्पक दिखाता किसे है? साले

जो एक फूंक मार दूंगा तो बेटा, कन्धे पर से कट जायगा। चल बैठ घर में। उल्लू की दुम कहीं का।"

मंगला अपने कमरे की सीढ़ियों पर छिपी हुई खड़ी थी। नूरुद्दीन के दहलीज में आते ही उसने जल्दी से अपने कमरे में जा कर भीतर से किवाड़ बंद कर लिए।

मंगला खिड़की से बाहर देखने लगी। घरमशाले वाला 'बकुल फूल' और 'दीदी मनि' को लिए हुए चला जा रहा था।

मंगला जिंदगी के सूनेपन में खोई हुई खड़ी रही।

नूरुद्दीन तुलसी और बड़ी बहू को लेकर चला गया। नूरुद्दीन की डाट खा कर, अपनी असहायावस्था पर शिबू को बड़ी खिसियाहट छूटी। उसके हो... कांपने लगे, आंखें बरस पड़ीं। शिबू रोता जाता और बीच-बीच में चावल की ...की भी लगाता जाता था। मा की तरफ देखा, वह जमीन पर झुकी पड़ी थी। शिबू रोता हुआ, मा के पास आया। मा का सिर उठा कर देखा, मुंह खुला हुआ था, आंखें फटी की फटी रह गई थीं। बचपन से शिबू का यही एक सहारा था। जब उसे दुनिया की गोद में जगह न मिलती तब मा के पास आता। इस आश्रय के प्रति उसका विश्वास इतना गहरा था कि ऊपरी तौर पर वह उसकी परवाह करना छोड़ चुका था। मा को मरी हुई देख कर वह घबरा गया। उसकी आंखें उमड़ पड़ीं। वह अपनी मा की लाश से चिमट गया। सहसा मा की लाश को जमीन पर लिटा कर उसने मा का खुला हुआ मुंह देखा। फिर अपनी आंखें पोंछी और लपक कर सारा चावल मुट्ठी में उठा लिया। मा के खुले हुए मुंह में चावल डाल कर, शिबू अपनी रूठी ... मा को मना लेना चाहता था। फिर मृत्यु की चेतना हुई। शिबू का हाथ रुक गया। खोये हुए बच्चे की तरह वह चारों ओर आंखें फाड़-फाड़ कर देखने लगा। कोठरी में दीनू पड़ा था, परेश पड़ा था। पिता का प्रेम आंसुओं के साथ उमड़ रहा था। शिबू उठ कर गया। देखा, परेश मर चुका था, दीनू के दिल की धड़कन धीमी-धीमी चल रही थी, वह कुछ ही क्षणों का

मेहमान था। शिबू कुछ देर तक आंसुओं भरी आंखों से उसकी तरफ देखता रहा। अचानक उसने बच्चे के अधखुले होंठों में थोड़े-से चावल डाल दिये और उठ खड़ा हुआ। वह बाबा की कोठरी के सामने आया। बाबा कोठरी के दरवाजे का सहारा लिए खड़े थे। शिबू चुपचाप खड़ा उनकी तरफ देखता रहा। सहसा उसकी मुट्ठी खुली। थोड़े-से चावल बच रहे थे। हथेली झुका कर, बाबा की कोठरी के सामने चावल गिराने लगा——उसकी नजरें बाबा के चेहरे पर ही रहीं। देखते-देखते वह चीख मार कर रोता हुआ घर से भागा।

खिड़की से मंगला ने देखा, ज्याठा मोशाई चीख कर बड़ी ते कराने लगी। भागते चले जा रहे थे। स्मृति में केवल

मंगला की आंखें भर आईं। शिबू उसके पति का भाई रशून्य, आड़ में मंगला को अपने पति के चले जाने पर रोना आ रहा था।

मंगला अपने विश्वास को तोड़ना नहीं चाहती थी। वह रो के अमंगल नहीं करना चाहती थी। उसके मन में कोई ज़ोर दे कर कह र र है "वह आयेंगे। मुझे छोड़ कर वह कैसे रह सकते हैं।" र

आंखें पोंछ कर मंगला नीचे उतरी।

बाबा अपने दोनों हाथ फैलाए दालान में कुछ टटोलते हुए आगे रहे थे।

मंगला ने आगे बढ़ कर बाबा का हाथ पकड़ लिया।

बाबा झिझके। स्त्री का हाथ पहचाना——"छोटी बहू!"

ब्याह कर आई तब से आज तक कभी बाबा से बात नहीं की थी; मंगला ने केवल छोटी-सी 'हूँ' कह दी।

कठोर संयम करते हुए भी बाबा का गला भर आया। गद्गद हो कर बोले——"मा मंगला! जब तू है तो जगत का कल्याण अवश्य होगा।"

मंगला चुपचाप आंसू बहाती रही। मंगला के सिर पर हाथ फेरते हुए बाबा बोले——"पांचू का कोई अमंगल नहीं होगा, बेटी। वह एक दिन

अवश्य आयगा। अवश्य आयगा। इसी विश्वास के बल पर ही मेरे प्राण मुक्ति पा रहे हैं।''

मंगला ने फौरन ही गले में आंचल डाल कर बाबा के चरण छुए। उसके आंसू उनके चरणों पर टपक रहे थे। बाबा रुंधे हुए कंठ से बोले—''पगली न हो मा। चल उठ तो, मुझे अपनी मा के पास ले चल।''

मंगला बाबा को सहारा दे कर पार्वती मा की लाश के पास ले गई। मंगला का हृदय फटा जा रहा था। बाबा बैठ गये। पार्वती मा के सिर पर ए बाबा ध्यान मग्न हो गये। अंधी आंखें छलछला उठीं। आवेश कंठ से बाबा ने पाठ करना आरंभ किया:

तव कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः।
कस्यं त्वं वा कुत आयातस्तत्वं चितय तदिदं भ्रातः॥
भज गोविन्दं, भज गोपालं, गोविंद! गोपाल!! गोपाल!!!

ा पाठ कर रहे थे, मंगला का हृदय फटा जा रहा था। बाबा जब रते थे, मंगला और उसकी बकुल फूल मुस्कराया करती थीं, और मा को चिढ़ कर, झुंझला कर अंत में बाबा की कोठरी में जाना ड़ता था। बाबा का वह संन्यास आज सत्य को चरितार्थ कर रहा था। र उखड़ने लगा, क्रमशः क्षीण होने लगा और अंत में होठों का कंपन भी रुक गया। मृत्यु को देखते-देखते मंगला यद्यपि कठोर हो गई थी, फिर भी उसे इस समय भय लग रहा था। संसार में वह अकेली रह जायगी। बाबा को आखिरी सांस तक घर में एक से दो का सहारा है। मंगला एक टक लगाए बाबा के शरीर में प्राणों की धुकधुकी को देख रही थी। सांसें जल्दी-जल्दी चल रही थीं—वेग क्रमशः शिथिल पड़ने लगा—सांसें टूट-टूट कर चलने लगीं। हर सांस की गति के बाद इति का भ्रम होने लगा—और फिर अंत भी आ गया।

मंगला अकेली रह गई। घर में चार लाशें पड़ी थीं। घर खाली था। हर तरफ उसकी नजर जाती—ईंट-ईंट मुर्दा मालूम पड़ रही थी। इस

घर का विगत जोवन इस समय उसके ध्यान में नहीं था, भविष्य को वह देखना चाहती थी और वहीं वह निरुपाय थी, निस्सहाय थी। जी घुट कर रह जाता था।

जीवन के लिए मंगला को कहीं से भी प्रेरणा नहीं मिल रही थी; फिर भी वह मरना नहीं चाहती थी। एक बार 'उनको' देखे बिना उसे मर कर भी चैन नहीं आयेगा। मन घबराता भी था। कब तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, कब आयेंगे? परंतु मन अपनी एकमात्र आशा और विश्वास के साथ जीवित रहना चाहता था—जब भी आयें, वह आयेंगे। विकलता अति तीव्र गति से अपनी चरम सीमा पर पहुंच कर सांसों से टकराने लगी। जीवन की इच्छा कठोर हो कर अपनी रक्षा करने लगी। स्मृति में केवल 'उनकी' प्रतीक्षा का संस्कार मात्र शेष था। मंगला विचारशून्य, थी। मंगला स्तब्ध थी.......

उसका शरीर हिला। चेतना ऊपर उठने लगी। अंतर के 'उनका' अति प्रिय स्वर गूंज उठा, क्रमशः सुनाई पड़ने लगा। अंदर मंगला को भ्रम की चेतना हुई और उससे विकलता जागी। स्वर स्पष्ट हुआ।

"मंगला! मंगला!!"

आंखें यद्यपि खुली थीं, किंतु पथरा-सी गई थीं। देखने का तीव्र से तीव्रतम हुआ। आकृति धुंधली से स्पष्ट हुई। मंगला ने 'वह' सामने खड़े थे; उनकी गोद में बच्चा था जो रो रहा था। देखते ही, संतोष के अतिरेक से मंगला की आंखों में आंसू छलक अवरुद्ध कंठ से स्वर लड़खड़ा कर फूटा—"आ गये!"

पांचू ने देखा, मंगला फिर झकोला खा रही है। पांचू को उसने जल्दी से मंगला की गोद में बच्चे को डाल दिया औ बैठ गया।

मंगला अपने से लड़ कर सावधान हुई। उसने गोद फैला कर बच्चे को ठीक तरह से सम्हाला, फिर उसे गौर से देखा। पांचू कहने लगा—"इसे बचाना होगा, मंगला! इसे बचाने के लिए ही मैं तुम्हारे पास लाया हूँ।"

मंगला ने बच्चे को गोद में चिपका लिया। बच्चे के सम्बंध में कोई प्रश्न पूछने के पहले उसके मन में पांचू को घर की बात बताने की इच्छा हो रही थी। आंखों में आंसू भर कर मंगला ने बाबा और मा की लाशों की तरफ़ देखा।

पांचू ने पहले ही सब कुछ देख लिया था। घर में प्रवेश करते ही, पहली नजर डालने के साथ ही साथ उसे अपने को मजबूत बनाना पड़ा था। मंगला बैठी थी। उसने मंगला को आवाज़ दी। मंगला न बोली। वह पास आया, हो ... दीं। मंगला की आंखें खुली हुई थीं। पांचू को विश्वास हुआ, वह किय... नाक के पास हाथ ले जाकर सांस को महसूस किया। उसे आश्चर्य ... गला उसे देख क्यों नहीं पाती; उसकी आवाज़ क्यों नहीं सुन पाती? ... ंगला को हिलाना शुरू किया, कई आवाजें दीं। तब मंगला को होश ... तब उसने पांचू को देखा, उसकी आंखों में आंसू आये और वह बोली। ... ने तब संतोष की एक गहरी सांस ली थी। बच्चे को उसकी गोद में डाल ... के बाद जब मंगला ने अपने को सम्हाल कर बच्चे को सम्हाल लिया तब ... विश्वास के साथ-साथ प्रसन्नता भी हुई। फिर जब वह बाबा और मा की ... को देखने लगी तो पांचू घबराया—दुःख का दौरा कहीं जीती बाजी ... हरा दे! उसने मंगला के दिल से मृत्यु का बोझ हटाना चाहा। ... के साथ उसने कहा—"जो होना था, वह हो गया। अब इसे ... इसे बचाओ। इसे बचाने के लिए ही हम तुम जियेंगे।"

... के वातावरण में जीवन के प्रति विश्वास की इस दृढ़ता ने ..., दोनों को ही, अपूर्व धैर्य और बल दिया। स्वयं पांचू को भी ... द्वारा अपने अन्दर की अदमनीय, चिर विजयी, विकासमयी ... मिला। प्रलय में सृष्टि के बीजांकुर फूटने लगे।

पांचू बोला—"मैं सब प्रबंध करने जाता हूं। बच्चे की जीवन रक्षा.. और...जीवन का मृत्यु के प्रति ऋण भी उतारना है।" उसने सशंकित स्वर में पूछा—"तुम घबराओगी तो नहीं?"

पति को आश्वासन देते हुए मंगला ने गर्दन हिलाई; कहा—"अब नहीं।" फिर ममताभरी दृष्टि से वह अपनी गोद में सोते हुए बच्चे को देखने लगी।

—